ओझा निबन्ध-संग्रह

प्रथम भाग

[साहित्य-संस्थान, रा० वि० विद्यापीठ के इतिहास और पुरातत्व-विभाग के तत्वावधान में सम्पादित]

लेखक

स्व० डॉ० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा



१९५४ ई०
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ
उदयपुर (राजस्थान)

प्रकाशक:—
अध्यक्ष, साहित्य संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ
उदयपुर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण, मार्च १९५४
मूल्य ५)

मुद्रक—
ज० ना० भिडे
राजस्थान टाइम्स, लिमिटेड
अजमेर

प्रकाशकीय निवेदन

राजस्थान के प्राचीन साहित्य, लोकसाहित्य, इतिहास एव कला-विषयक शोध कार्य को राजस्थान के सास्कृतिक पुनरूत्थान के लिये अत्यावश्यक और सर्वथा-अनिवार्य समझ कर राजस्थान विश्व विद्यापीठ (तत्कालीन हिन्दी विद्यापीठ) उदयपुर ने वि० स० १९९९ मे "साहित्य सस्थान" की स्थापना की थी। सस्था की योजनानुसार साहित्य-सस्थान के अन्तर्गत कई महत्वपूर्ण प्रवृतिया आरम्भ की गई थीं, जो अब बहुत कुछ विकसित और विस्तृत हो चुकी है, जैसे —

१ राजस्थान मे हिन्दी के हस्त लिखित ग्रन्थो की खोज, २ राजस्थान मे सस्कृत के हस्त लिखित ग्रन्थो की खोज, ३ चारण-साहित्य-सग्रह, ४ लोक साहित्य-सग्रह, ५ राजस्थानी कहावत माला, ६ महाकवि सूर्यमल आसन, ७. स्व० डॉक्टर गौरीशकर हीराचन्द ओझा आसन, ८. पृथ्वीराज रासो सम्पादन कार्य, ९ अध्ययन गृह तथा सग्रहालय, १०. इतिहास एव पुरातत्व कार्य, ११ शोध-पत्रिका, एव १२ राजस्थान साहित्य आदि।

साहित्य-सस्थान की उपर्युक्त विभिन्न प्रवत्तियो मे 'इतिहास एव पुरातत्व कार्य' भी एक मुख्य और महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। इस प्रवत्ति विशेष के द्वारा राजस्थान और भारत की पुरातन इतिहास-सामग्री की शोध-खोज करना, तथा इतिहास का कार्य करने वालो को यथा-सम्भव साधन-सुविधाये देकर आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहित करने का नम्र किन्तु अत्यावश्यक प्रयत्न किया जाता है। स्व० डॉक्टर गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने राजस्थान विश्व-विद्यापीठ, साहित्य-सस्थान के काम को तथा उसके उज्वल भविष्य को देखकर अपने समस्त प्रकाशित और अप्रकाशित निबन्ध सम्पादन और प्रकाशन के लिए प्रदान कर दिये थे। स्व० डॉक्टर ओझाजी भारतीय इतिहासकारो और पुरातत्व-वेत्ताओ मे प्रमुख और अग्रणी विद्वान् थे। राजस्थान की अन्धकाराच्छन्न ऐतिहासिक सामग्री को सर्व प्रथम व्यापक रूप से प्रकाश मे लाने का श्रेय स्व० डॉ० ओझाजी को ही प्राप्त है। इसी प्रकार भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र मे भी स्व० डाक्टर ओझा जी ने जो महत्वपूर्ण देन दी है, वह कभी भुलाई नही जा सकती।

स्व० डॉक्टर ओझाजी ने वर्षों के परिश्रम से तैयार किये गये अपने ये निबन्ध जिस आशा और विश्वास के साथ 'साहित्य सस्थान' को दे दिये थे, उसके अनुकूल-सस्थान कितना साबित होगा, यह तो भविष्य ही बता सकेगा, लेकिन इतना अवश्य हम यहाँ कह सकते हैं कि साहित्य सस्थान की जो

योजना और कल्पना है यदि साधन-सुविधाओ के साथ विद्वानो का सहयोग जैसा आज मिल रहा है, आगे भी मिलता रहा तो निश्चय ही हम बहुत कुछ कर गुजरने की स्थिति मे होगे। स्व० डॉक्टर ओझा जी के इन निबन्धो के सम्पादन कार्य मे प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉक्टर रमाशकरजी, अध्यक्ष इतिहास विभाग काशी विश्वविद्यालय ने हमारे विभागीय सम्पादक का मार्ग प्रदर्शन कर जो उपयोगी और महत्वपूर्ण सुझाव दिये, उसके लिए सस्थान की ओर से मै उनके प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, इसी प्रकार-- महाराजकुमार डॉक्टर रघुवीरसिह सीतामऊ और डॉक्टर दशरथ शर्मा दिल्ली ने समय समय पर जो महत्वपूर्ण सहायता दी है, उसके लिये मै उनका भी अत्यन्त आभारी हूँ। यद्यपि केवल आभार प्रदर्शित कर—उक्त दोनो विद्वान् महोदयों की साहित्य सस्थान के विकास कार्य मे की गई–और की जा रही सेवा के मूल्य को नही आका जा सकता है, और सच तो यह है कि श्री महाराजकुमार और श्री दशरथजी शर्मा साहित्य-सस्थान, राजस्थान विश्व-विद्यापीठ के उन प्रमुख विद्वान्–स्तम्भो मे से प्रमुख हैं, जिनके बिना 'सस्थान' का काम चल ही नही सकता है। इसलिये इन दोनो विद्वान महोदयों के प्रति आभार प्रदर्शित करना केवल रस्म अदायगी मात्र ही है।

"ओझा निबन्ध-सग्रह" के सम्पादन और प्रकाशन कार्य मे 'साहित्य-सस्थान के इतिहास एव पुरातत्व कार्य के सयोजक श्री नाथूलालजी व्यास को जितना परिश्रम करना पडा है, उतना अन्य किसी को नही। श्री व्यास ने वर्षों तक स्व० डॉक्टर गौरीशकर जी ओझा के पास रहकर उनके काम मे हाथ बटाया है इसलिये ये श्री ओझाजी की दृष्टि और मति को जितनी सही रूप मे समझ सकते हैं उतनी शायद ही अन्य कोई समझता हो। 'साहित्य-सस्थान' के इतिहास और पुरातत्व के काम को जमाने का प्रयत्न श्री व्यासजी का ही है। अत उनको उनके परिश्रम के लिये धन्यवाद देकर या आभार प्रदर्शित कर उनकी सेवा के मूल्य को कम करने की मेरी इच्छा नही है। श्री व्यासजी का तो यह अपना कार्य ही है।

प्रस्तुत निबन्ध-सग्रह का प्रकाशन काफी समय पूर्व कर दिया जाना चाहिये था, परन्तु सस्था की अपनी कठिनाइयो के कारण आज से पूर्व नही हो सका, और यदि अभी भी राजस्थान विश्व-विद्यापीठ, के पीठ मन्त्री श्री भगवतीलाल भट्ट ने राजस्थान-सरकार से आवेदन-निवेदन और दौड़ धूप कर प्रकाशन सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न नही किया होता तो न जाने कब प्रस्तुत 'निबन्ध-संग्रह' प्रकाशित होता ? श्री भट्टजी के परिश्रम से ही इसका प्रकाशन सम्भव हो सका है।

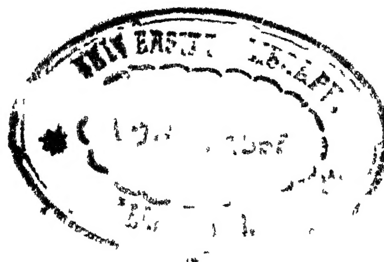
अन्त मे मै राजस्थान सरकार, उसके मन्त्रीगण तथा शिक्षा-विभाग के अधिकारियो के प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना आवश्यक कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने "ओझा निबन्ध-सग्रह" के प्रकाशन कार्य के लिये आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहन पूर्ण सहयोग दिया है। राजस्थान और भारत मे ऐतिहासिक अनुसधान के लिये काफी गुजायश और अनिवार्य आवश्यकता है। यदि प्रान्तीय सरकारो का प्रोत्साहन पूर्ण उदार सहयोग निरन्तर मिलता रहे तो इतिहास की महत्वपूर्ण कमी आसानी से दूर की जा सकती है। ऐतिहासिक अनुसधान के काम गम्भीर और गवेषणापूर्ण तो है ही, परन्तु अधिक व्यय और श्रमसाध्य भी है, इस कारण बिना सरकारी सहायता के ऐसे काम अधिक परिणाम कारी नही हो सकते हैं। आशा है, राजस्थान-सरकार और उसका शिक्षा सचिवालय ऐसी ऐतिहासिक सामग्री की शोध-खोज और प्रकाशन के लिये आवश्यक सहयोग और सहायता देते रहने मे किसी प्रकार के सकोच का अनुभव नही करेगे।

साहित्य-सस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ के सभी शोध-खोज के विद्वानो और विचारको का मैं उनके सहयोग के लिये अत्यन्त आभारी हूँ। यह तो उन्ही का काम है, उन्ही के लिये है। अत उन्हे ही करना है।

साहित्य-सस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ
उदयपुर (राजस्थान)

गिरिधारीलाल शर्मा
अध्यक्ष—
साहित्य-सस्थान

———



प्राक्कथन

स्वर्गीय विद्या-वाचस्पति श्री गौरीशकर हीराचन्द ओझा के महत्वपूर्ण निबन्धो का यह विस्तृत "ओझा-निबन्ध-सग्रह" राजस्थान विश्व विद्यापीठ, साहित्य-संस्थान, उदयपुर का एक महत्वपूर्ण एव अनूठा प्रकाशन साहस है, स्वर्गीय ओझाजी ने अपने स्वर्गवास के पूर्व अपने समस्त निबन्ध साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर को भेंट दे दिये थे, और तभी से इस सग्रह के प्रकाशन की आतुर कामना बनी हुई थी, ओझाजी ने अपने समस्त निबन्ध राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर को इसलिये दिये थे कि वे इस सस्था को अपने ज्ञान की इस विरासत के लिए जहा पात्र मानते थे, वहाँ इनको इस बात की खुशी थी—कि उदयपुर मे एक जन प्रयत्न साध्य विश्व-विद्यापीठ की स्थापना तथा विकास किया जा रहा है।

निस्सन्देह "ओझा निबन्ध-सग्रह" के प्रकाशन मे आवश्यकता से अधिक देर हुई है। इसके कई कारण है, सबसे बडा कारण इसके सम्पादन क्रम का है, यह उचित ही था कि ओझाजी के समस्त लेखों के सम्पादन मे भारत-प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ताओ का सहयोग प्राप्त किया जाय, यही अभिलाषा और प्रयत्न इस-ग्रन्थ रत्न के प्रकाशन की देरी का भी कारण बनी, यह आभार मानना होगा कि ओझाजी के सुपुत्र प्रोफेसर श्री रामेश्वरजी ने हमारी इस, समीचीन कठिनाइयो का अनुभव किया, और आज दिन तक धैर्य रखा।

ओझाजी राजपूताना के इतिहास के एक भीमकाय अग्रणी थे, धुरन्धर तो वे थे ही, परन्तु राजपूताना की ऐतिहासिक सघर्ष—जर्जर मानवता के शताब्दियो तक के घटना, क्रम के एक व्यासकार थे, राजपूताने के अनेक ख्यात राज्य-वशो-उसकी बिखरी एव अनेक रण भूमियो के ओझाजी विशिष्ठ ज्ञाता थे, अद्वितीय इतिहास क्षेत्रज्ञ ओझाजी थे—इसमे किसे सन्देह हो सकता है? इन सबके उपरान्त ओझाजी पनघटो, मन्दिरो, धर्मशालाओं, खण्डहरो, गढो, किलो, और विजन स्थानो के मौन पाषाण-शिलालेखों के महान् विद्यार्थी थे, भारत की प्राचीन लिपियाँ अपने सहज ही अनजान अर्थ उनके सामने मानो स्वयं खोलकर रख देती थी, ताम्रपत्र, पट्टे, परवाने और रेकार्ड ओझाजी के लिये सहज पाठ्य थे, सच तो यह है इतिहास की प्रत्येक प्रकार की सामग्री ओझाजी की शिष्य थी, आचार्य गौरीशकर ओझा अपने इसी विशाल ज्ञान के कारण इतिहास के एक मानव-पर्यायवाची हो गये हैं।

यह सही है कि ओझाजी ने एक अग्रदूत की भाँति इतिहास का प्रणयन किया हैं, वंशावलियो, घटना-क्रमो और अन्य ऐतिहासिक सामग्रियो के आधार पर राजपूताना के राज्यवंशो को सामने रखकर उस मतिमान ने राजपूताने के इतिहास का शिवाला खडा किया है, परन्तु यह ओझा-निबन्ध-संग्रह प्रमाणित कर देगा कि ओझाजी ने भारतीय-इतिहास की प्राचीन पगडंण्डियो, खण्डहरो, ताम्र-पत्रो, और उनके विवादास्पद इतिहास-प्रसगो एव व्यक्तियो को अछूता नही छोडा है, परोक्षत ओझा ने भारतीय प्राचीन—एव मध्यकालीन इतिहास की कई मार्ग दिशाये खोली हैं, तथा कई प्रश्नों का उत्तर दिया है, एव कई कसौटियाँ और प्रसग-कायम किये है। "ओझा निबन्ध-सग्रह" के विषयो पर दृष्टिपात करते ही ऐसा प्रतीत होता हैं कि सूक्ष्म किन्तु विशाल इतिहास-नयन प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय-अतीत को एकाग्र होकर देख रहा है, रोमाञ्च और प्रेरणा इन लेखो से मिलती है, और भारतवर्ष की अतीत शताब्दियाँ अपने अनूठे, और अचूक व्यक्तियो को हमे आज वर्तमान जीवन के चित्रो की भाँति भेंट देती है।

ओझा हमारे इतिहास का महान् ब्रह्मचारी है, और यही "ओझा-निबन्ध-सग्रह" का महत्व है।

राजस्थान विश्व विद्यापीठ
पीठ-स्थविर अधिकरण
उदयपुर (राजस्थान)

जनार्दनराय नागर
पीठ-स्थविर.

विषय-सूची

स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का संक्षिप्त परिचय

स्व० डॉ० गौरीशकर हीराचन्द ओझा का जन्म वि० स० १९२० भाद्रपद शुक्ला २, को सिरोही प्रान्त के रोहेडा गांव मे सहस्त्र औदिच्य जाति के हीराचन्दजी के घर मे हुआ था, इनके चार पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुए, इनकी पत्नी की गृह कुशलता ने इनके प्रारम्भिक आर्थिक सकट मय जीवन को व्यवस्थित कर दिया, प्रारम्भिक शिक्षा घर पर-और बादमे बम्बई मे शिक्षा प्राप्त की, वही इन्होने इतिहास, पुरातत्व तथा लिपि आदि का परिज्ञान प्राप्त किया। प्रचुरज्ञान उपलब्ध कर ये उदयपुर की ओर आये, और म० फतहसिंहजी ने अपने राजकीय पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया। इस समय तक इन्होने काफी शोध पूर्ण लेख लिखे। ई० स० १८९५ मे विश्व की सर्व श्रेष्ठ भारतीय प्राचीन लिपिमाला का प्रथम सस्करण जब प्रकट हुआ, ओझाजी प्रथम कोटि के साहित्यिक गिने जाने लगे। ई० स० १९०८ मे अजमेर के राजपूताना म्युजियम की स्थापना हुई, उसके ये अध्यक्ष बनाये गये और सन् ३८ तक कार्य करते रहे, इन्होने राजस्थान के तथा भारत के सभी प्राचीन स्थानो का भ्रमण किया। ई० स० १९०२ मे कर्नल टॉड के इतिहास का सम्पादन किया। १९०८ में सोलकियों का इतिहास लिखा, इसके बाद पृथ्वीराज विजय तथा कर्मचन्द वश सम्बन्धी पुस्तक का सम्पादन किया और ई० स० १९१८ मे प्राचीन लिपिमाला का बृहद् सस्करण भारतीय प्राचीन लिपिमाला का परिवर्धित सस्करण निकाला, उस पर अ० भा० हि० सा० सम्मेलन से मगलाप्रसाद पुरस्कार मिला। १९२० मे ना० प्र० पत्रिका के सम्पादक बनाये गये, सन् १९२३ से राजपूताना का इतिहास लिखने का कार्य शुरु किया, इन्होने उदयपुर, डूगरपुर, बासवाडा, प्रतापगढ, जोधपुर और बीकानेर राज्यो के इतिहास लिखे, मुहणोत नेणसी की ख्यात का सम्पादन किया और लगभग १५० पृष्ठो में शोध पूर्ण लेख लिखे, जो विद्यापीठ की ओर से पुस्तकाकार प्रकाशित किये जा रहे हैं।

सम्मान—ई० स० १९१४ मे राय बहादुर का खिताब

„ १९२८ में महा महोपाध्याय की उपाधि

„ १९११ में दिल्ली दरबार मे निमन्त्रित

„ १९२७ मे हि० सा० स० भरतपुर अधिवेशन तथा नडियाद मे हुई गुजरात साहित्य सभा के सभापति

,, १९२८ मे हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद मे मध्यकालीन भारतीय सास्कृतियाँ पर तीन भाषण

,, १९३३ मे भारतीय अनुशीलन ग्रन्थ से अभिनदित

,, १९३३ में ओरियन्टल कॉन्फ्रेंस बडौदा मे इतिहास विभाग के अध्यक्ष

,, १९३७ मे साहित्य वाचस्पति और वाचस्पति की पदवी

ई० स० १९३७ मे काशी विश्वविद्यालय मे डी० लिट् तथा आन्ध्र विश्व विद्यालय से पुरातत्व वेत्ता की मान्यता।

भारत के कई महात्माओ, राजाओ, नेताओ तथा विद्वानों के सम्पर्क मे रहे।

निधन वि० स० २००४ वैशाख वदि १? को स्वग्राम रोहेडा।



स्व० महामहोपाध्याय डॉ० श्री गौरीशङ्कर ओझा

ओझा निबंध संग्रह

पहला भाग

भूगोल सम्बन्धी वर्णन

१–भिन्न-भिन्न प्रदेशों के प्राचीन नाम आदि

वंश-भास्कर तृतीय भाग की मध्य पीठिका से उद्धृत

(१) अङ्ग–

शक्ति संगम नामक तंत्र में लिखा है—

॥ श्लोक ॥ वैद्यनाथं समारभ्य भुवनेशान्तगशिवे ।
तावदङ्गाभिधो देशो यात्रायां नहि दुष्यति ॥१॥

अर्थ—वैद्यनाथ से लेकर भुवनेश्वर तक है अंत—जिसका, वहाँ तक, हे पार्वती ! वह अंग नाम का देश यात्रा में दूषित नहीं है ॥१॥

सम्पादकीय टिप्पण

बूंदी के महाकवि मिश्रण चारण सूर्यमल रचित 'वंशभास्कर' नामक ग्रंथ को शाहपुरा के सोदा-चारण-कवि बारहट कृष्णसिंह ने सम्पादित किया । उस समय वंशभास्कर में उल्लिखित भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशो तथा अन्य देशो के प्राचीन नामो को पढ कर उनका परिचय देने की आवश्यकता जान पडी । बारहटजी ने श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा से जब कि वे उदयपुर मे विक्टोरिया म्युजिअम के अध्यक्ष थे, आग्रह किया कि वे परिचयात्मक वर्णन तैयार करदे । तदनुसार ओझाजी ने विविध ग्रन्थों के आधार पर वशभास्कर मे उल्लिखित भिन्न-भिन्न प्रदेशो के प्राचीन नामो आदि का परिचयात्मक उपरोक्त वर्णन तैयार कर बारहटजी के पास जोधपुर मे भेज दिया, जहाँ पर वे वंशभास्कर का सम्पादन कार्य कर रहे थे । बारहटजी ने उसको वंशभास्कर की तृतीय भाग की मध्यपीठिका में सधन्यवाद स्थान दिया और उक्त तृतीय भाग वि० स० १९५६ = ई० स० १८९९ मे प्रताप प्रेस जोधपुर मे मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ है, जो अप्राप्य है । इतिहास के विद्यार्थियो के लिये यह विवरण उपयोगी है अतएव उसको अविकल रूप मे उद्धृत किया गया है ।

यह देश पूर्व दिशा में बगाल के पश्चिमी भाग भागलपुर के पास था, जिसकी राजधानी चम्पापुरी थी। अङ्ग वश के क्षत्रियो के निवास से देश का नाम अङ्ग हुआ।

(२) अटक –

पजाब की पश्चिमी सीमा पर अटक नाम का शहर है, जिसके नाम से अथवा अटक नदी के नाम से उसके समीप के प्रदेश का नाम पाया जाता है। [जाके (की) मन में अटक है, सो ही अटक रहा।]

(३) अनूप –

॥ श्लोक ॥ बव्हम्बुर्बहुवृक्षश्च वातश्लेष्माऽऽमयान्विता ।
देशोऽनूप इतिख्यात शास्त्रेषु च मनीषिभि ॥१॥

अर्थ—बहुत पानी, बहुत वृक्ष, वात-पित्त के रोगो से सहित होवे, उस देश को शास्त्र में बुद्धिमान् लोग अनूप देश कहते हैं।

पुराणो के अनुसार यह देश विंध्य-पर्वत के निकट और रघुवश के अनुसार नर्मदा नदी के उत्तरी तट के एक देश का नाम होना चाहिये जिसकी राजधानी माहिष्मती नगरी थी। †

(४) अन्ध्र –

॥ श्लोक ॥ जगन्नाथा दूर्द्धभाग मर्वाक् श्रीभ्रमरात्मिकात् ।
तावधन्ध्राभिधोदेश.प्रोक्त श्रीशक्ति सगमे ॥१॥

अर्थ—जगन्नाथ से दक्षिण में और भ्रमरात्मिका से इस ओर अध्र नामक देश शक्ति सगम नामक तन्त्र में कहा है ॥१॥

यह तिलगाने ‡ का प्राचीन नाम है, जिसको आध्र वश के क्षत्रियो

सम्पादकीय टिप्पण

† माहिष्मति—महेश्वर का सूचक है, जो नीमाड प्रदेश मे है और इन्दौर राज्य के अन्तर्गत है। रघुवश के काल से लगा कर दसवी शताब्दि तक इसका बडा ऐतिहासिक महत्व रहा। विद्यादेवी की उपासना का यह केन्द्र था और यहाँ की महिलाएँ भी विदुषी होती थी। भगवान् आद्य शङ्कराचार्य को माहिष्मती के मण्डन मिश्र की स्त्री से शास्त्रार्थ करना पडा था। ऐसा शङ्कर दिग्विजय मे उल्लेख है। शास्त्रज्ञ और बुद्धिमान लोगो का निवास होने से ही इस देश का नाम अनूप पडा हो तो कोई आश्चर्य की बात नही है।

‡ तिलंगाना यह तैलङ्ग का सूचक है और रामेश्वर के आस-पास होकर मद्रास प्रान्त में मिला हुआ है।

के राज्य रहने से 'आंध्र' भी कहते हैं ।

(५) अर्बुद –

आबू पर्वत के आस–पास का प्रदेश, जिसमें सिरोही का राज्य और कुछ दाता, पालनपुर और गोडवाड का हिस्सा शामिल है ।

(६) आटव्य –

यह जगल से भरे हुए देश का साधारण नाम है, जो विंध्यपर्वत के अरण्य प्रदेश के लिये होना सम्भव है ।

(७) आनर्त –

काठियावाड, जिसमें कच्छ और द्वारका शामिल था ।

(८) आभीर –

।।श्लोक।। श्री कोङ्कणादधोभागे तापीतः पश्चिमे परे ।
आभीर देशो देवेशि विंध्य शैले व्यवस्थित ।।१।।
।। इति शक्तिसगमतन्त्रम् ।।

अर्थ—कोकण देश से उत्तर और ताप्ती नदी से पश्चिम विंध्य पर्वत में, हे देवेशि ! (पार्वती) आभीर¶ देश है ।

यह शक्ति सगमतन्त्रमे लिखा है, जो बम्बई से सूरत तक था ।

(९) आरब –

यह अरब स्थान का नाम मालूम होता है ।

(१०) आवन्त्य –

मालवे का एक भाग जिसकी राजधानी उज्जैन थी ।

(११) उत्कल –

।।श्लोक।। जगन्नाथ. प्रान्तदेश श्चोत्कल. परिकीर्तितः ।।

अर्थ—जिसमें जगन्नाथपुरी है, उसको 'उत्कल' देश कहते हैं, जो इस समय उडीसा के नाम से प्रसिद्ध है ।

सम्पादकीय टिप्पण

¶ समुद्र के तटवर्ती बसनेवाली जातियों मे एक जाति आभीर थी, जो पशु-पालन करती थी । उसके नाम से यह प्रदेश 'आभीर' कहलाया । अपभ्रंश की उत्पत्ति आभीर जाति से ही मानी जाती है । आभीर का रूपांतर अहीर है, जो पशु-पालन और खेती करते है । मुगलकाल मे अहीरो के नाम से एक भूभाग 'अहीरवाडा' कहलाता था । पिछले युग मे जबकि मुगलो की सत्ता ढीली पड गई, यह लोग मालवा में लूट-मार कर अराजकता उत्पन्न करने लग गये थे ।

(१२) ऊर्ण –

यह किसी देश का नाम हो, ऐसा प्रमाण नही मिल सका, परन्तु 'उरण' नामका एक नगर बम्बई अहाते के थाणा जिले में था, जो शिलारा वंश के राजाओं के राजप्रतिष्ठित नगरो में से एक गिना जाता था ।

(१३) ऊपर-क्षेत्र –

क्षारभूमि वाला देश तथा रेणुका आदि नवतीर्थ–*

॥श्लोक॥ रेणुका सूकरः काशि कालीकाल बटेश्वरौ ॥
कालिञ्जरो महाकाल ऊपरा नवमुक्तिदाः ॥१॥
॥इति बराहपुराणम ॥

(१४) कम्बोज –

॥श्लोक॥ पञ्चनद समारभ्य म्लेच्छाद्दक्षिण पूर्वत' ॥
कम्बोज देशो देवेशि ! वाजिराशि परायण: ॥१॥

अर्थ—पञ्जाब से लेकर अफगानिस्तान तक, हे पार्वती ! कम्बोज देश है, जो घोड़ो की गणना में श्रेष्ठ है ।

(१५) कर्णाटः–

॥श्लोक॥ रामनाथं समारभ्य श्री रंगान्तं विलेश्वरिः ॥
कर्णाट देशो देवेशि ! साम्राज्य भोगदायकः ॥१॥

अर्थ—रामनाथ † से लेकर श्रीरग तक कर्णाट देश है, वह राज्य-भोग-दायक है और दस लाख की आय को साम्राज्य कहते है । यथाः—

॥श्लोक॥ लक्षाधिपत्यं राज्यंस्यात् साम्राज्यं दश लक्षके ।
शतलक्षे महेशानि ! महा साम्राज्यमुच्यते ॥१॥
॥ इति वरदा तन्त्रे ॥‡

यह देश दक्षिण में इसी नाम से प्रसिद्ध है ।

सम्पादकीय टिप्पण

* यह गगा-यमुना के तटवर्ती तथा उससे मिले हुए प्रदेश का सूचक है, जिसमे उपर्युक्त नौ तीर्थ थे । उपर्युक्त श्लोक से यह बडा विस्तारवाला देश था । बैसवशी महाराज हर्षवर्द्धन, रघुवशी प्रतिहारो तथा गाहड-वालो की राजधानी कन्नौज (कान्यकुब्ज) का भी ऊपर-क्षेत्र मे ही समावेश हो जाता है ।

† रामनाथ—रामेश्वर शिव ।

‡ एत्रेय ब्राह्मण मे इस विषय का विशद् वर्णन है और स्पष्ट रूप से

(१६) कलिग –

॥श्लोक॥ जगन्नाथात्पूर्व भागे कृष्णा तीरान्तगं शिवे ।
कलिग देशः संप्रोक्तो वाममार्ग परायणः ॥१॥

अर्थ—जगन्नाथ से पूर्व दिशा में कृष्णा नदी के तीर तक को कलिग देश कहते हैं ।

यहां जगन्नाथ से पूर्व भाग में होना सभव नही, क्योकि वहां पर समुद्र है । इसके लिये जॉन डानसन अपनी किताब 'हिंदू माइथोलॉजी' में कारोमण्डल कोस्ट के समीप का प्रात लिखते हैं, जो उडीसा के दक्षिण का गोदावरी नदी तक का देश हो सकता है, जिसको उत्तरी सरकार भी कहते हैं। इस देश को कलिग देश के क्षत्रियो के निवास से कलिग देश कहते थे ।

(१७) कश्मीर –

अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है, जिसको काश्मीर कहते हैं ।

(१८) कामरूप –

इस देश को इस समय कांगरू देश कहते हैं, जिसकी राजधानी प्राग्-ज्योतिष थी । अब यह देश आसाम मे गिना जाता है ।

(१९) कालवन –

(२०) कुन्तल –

॥श्लोक॥ कामगिरिं समारभ्य द्वारकान्तं महेश्वरि ।
श्री कुन्तलाभिधो देशे वर्णित शक्ति संगमे ॥१॥

अर्थ—कामगिरि से लेकर द्वारिका तक, हे पार्वती ! कुन्तल नामका देश शक्ति सगम तन्त्र में कहा है ॥१॥

अग्रेजी पुस्तको में महाराष्ट्र को दक्षिणी हिस्सा लिखा है, जिसकी राजधानी प्रतिष्ठानपुरी (पैठण) थी । पीछे से कल्याणी (कल्याण) में राज्य करने वाले चौलुक्य अपने को कुन्तल देश के राजा मानते थे ।*

सम्पादकीय टिप्पण

बतलाया गया है, कितनी आय वाला 'राजा' कहलाता था और कितनी आय वाला 'सामन्त' आदि । वरदा तन्त्र की रचना के समय सम्भव है, राज्यों की गणना इस प्रकार से करते हो, परन्तु अधिकाशत: इसके अनुसार राज्यो की गणना रहना प्रतीत नही होता है ।

* वर्तमान निजाम हैदराबाद राज्य का कुछ हिस्सा 'कुन्तल देश' का एक भाग हो सकता है । एव बम्बई का सारा इलाका 'कल्याण' कहलाता था ।

(२१) कुरु –

।।श्लोक।। हस्तिनापुरमारभ्य कुरुक्षेत्राञ्च दक्षिणे ।।
पान्चाल पूर्व भागेतु कुरुदेश प्रकीत्तित· ।।१।।

अर्थ—हस्तिनापुर से लेकर कुरुक्षेत्र के दक्षिण और पान्चाल देश के पूर्व भाग को कुरुक्षेत्र कहते हैं । यह थानेश्वर के आस-पास है, जिसमें कुरुदेश प्रसिद्ध है । ¶

(२२) कुलात –

यवन देश विशेष, जो किलात के नाम से प्रसिद्ध है ।

(२३) केतुक –

(२४) केरल –

इसी देश को 'उग्र' भी कहते थे, 'उग्रा केरल पर्याया' इति हेमचन्द्र वर्तमान कनाड़ा (कानड़ा, कन्नड प्रदेश) और उससे मिले हुए कुछ अश मलावार का नाम केरल देश था (कावेरी से पश्चिमी घाट ओर समुद्र के बीच का प्रदेश) ।‡

(२५) कौशल –

यह उत्तार कौशल और दक्षिण कौशल नाम के दो देश थे, जिनमें उत्तर कौशल अयोध्या के राज्य को कहते थे और दक्षिण कौशल उड़ीसा से दक्षिण-पश्चिम में विध्य के निकट था ।

(२६) खुरासान –

यवन देश विशेष, एक सूबे का नाम है और अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है ।

(२७) ख्वारजम –

यवन देश विशेष, एक सूबे का नाम है और अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है ।

(२८) गक्खर –

सम्पादकीय टिप्पण

¶ भारत की वर्तमान राजधानी दिल्ली और उसका समीपवर्ती भूभाग भी कुरु प्रदेश के अन्तर्गत माना जाता था ।

‡ इस प्रदेश के नाम से वहा के निवासियो की भाषा कन्नडी कहलाती है, जो अब भी प्रयोग मे आती है । वर्तमान समय मे यह प्रदेश मद्रास सूबे मे है ।

यवन देश विशेष, जो इसी नाम से प्रसिद्ध है और वहां के रहनेवाले 'गक्खरी' कहलाते है ।†

(२९) गान्धार –

पञ्जाब का कुछ पश्चिमी हिस्सा और अफगानिस्तान का पूर्वी हिस्सा मिलकर पहले गान्धार देश कहलाता था, जिसकी सीमा पश्चिम मे लमगान और जलालाबाद, उत्तर मे स्वात और बुनेर की पहाडियां, पूर्व में सिन्धु नदी और दक्षिण मे काला बाग के पहाड होने चाहिये । शब्दार्थ चिन्तामणि कोष मे कन्दहार को गान्धार लिखा है, परन्तु अग्रेज विद्वानो के मत से यह विरुद्ध है ।

(३०) गोनर्द –

वराहमिहर के अनुसार गोनर्द दक्षिण के किसी देश का नाम होना चाहिये, परन्तु इसका ठीक पता नही लगता । गोनर्द एक वश का भी नाम था, जिसने कश्मीर पर राज्य किया था--तथा दक्षिण मे गोनर्द नाम का एक पर्वत भी है, उसके नाम से देश का नाम भी होना सम्भव है ।

(३१) चीन –

प्रसिद्ध चीन देश, जो इसी नाम से प्रसिद्ध है ।

(३२) चौल –

।।श्लोक।। द्रविड तैलगयोर्मध्ये चौलदेश प्रकीर्तित. ।।

अर्थ--द्रविड और तिलगाना के बीच के देश को चोल कहते थे। जॉन डासन् अपनी पुस्तक 'हिद्रू मॉइथालोजी' में इस देश को हिदुस्थान के दक्षिण में तन्जोर के निकट होना लिखते है, जहा से कारोमण्डल शुरू होता ह ।

(३३) जगल –

बीकानेर राज्य में जगल* नामक नगर था, जिससे बीकानेर के

सम्पादकीय टिप्पण

† जेलम आर चिनाब नदियो के बीच के प्रदेश को मध्यकाल मे गक्खर देश कहते थे ।

* महाभारत में भी उसका उल्लेख है आर कुरुदेश मे मिला हुआ बतलाया है । वतमान बीकानेर राज्य की स्थापना के पूर्व यह प्रदेश 'जागल' कहलाता था, उसके भी पूव यह भप्रदेश अजमेर के चाहमाना के आधीन था आर इसीलिये उनकी एक उपाधि गागलेश की भी थी । जहा परमारो

राजा अबतक 'जंगलधरा के बादशाह' कहलाते हैं । अथवा वन प्रदेश में बीकानेर का राज्य जमाया गया, जिससे 'जगलधरा के बादशाह' कहलाते हों ।

(३४) जालधर –

व्यास और सतलज नदियों के बीच का प्रदेश ।

(३५) टक –

पञ्जाब का एक हिस्सा जो कश्मीर से दक्षिण-पश्चिम को है । राजा अलखान ने यह देश कश्मीर के राजा को दिया था ।

(३६) डाहल –

चेदि देश का यह दूसरा नाम है । जबलपुर के आस-पास को चेदि कहते थे, जिसकी राजधानी (त्रिपुर) तेवर थी ।

(३७) तंगण –

वराहमिहर ने हिन्दुस्तान के उत्तरी-पूर्वी विभाग में रहने वाली तंगण नाम की जाति लिखी है । यदि यह शब्द तंगण के लिये होवे तो दक्षिण में वह एक देश का नाम है ।

(३८) तर्जिक –

जिसको तापिक भी लिखा है और इसका आधुनिक नाम ताज़िक है । प्राचीन काल में अरबो को ताजिक कहते थे, इस कारण से अरब स्थान का नाम 'तर्जिक' होना सम्भव है । आर्यावर्त में इस नाम का देश होना पाया नहीं जाता ।

(३९) ताम्रलिप्त –

वर्तमान 'तमलक' प्रदेश, जो सेलाई नदी और हुगली नदी के संगम के पास है ।

(४०) तुषार –

तुखार नामक म्लेच्छदेश । वराहमिहिर के अनुसार 'तुषार' हिन्दुस्तान के उत्तर पश्चिमी हिस्से के एक देश का नाम था । इस देश के राज्यकर्ता 'तुषार' जाति के थे, इससे यह नाम प्रसिद्ध हुआ ।

(४१) तूर्ण –

की एक शाखा साखला वश का अधिकार था और उन्ही की सहायता से विक्रम की सौलहवी शताब्दी के प्रारंभिक भाग मे जोधपुर के राठोड़ वंशी राव जोधा के एक पुत्र बीका ने उधर का भूभाग प्राप्त कर अपने नाम से बीकानेर के नवीन राज्य की स्थापना की थी ।

(४२) तैलग:—

।।श्लोक।। श्रीशैलंतुसमारभ्य चोलेशान मध्यभागतः ।
तैलंग देशो देवेशि ! ध्यानाऽध्ययन तत्परः ।। १ ।।

अर्थ—श्री शैल से लेकर चोल देश के मध्यभाग तक, हे पार्वती ! तैलंग देश है, जहाँ के निवासी ध्यान और पढ़ने में तत्पर रहते है ।।१।।

इसका प्राचीन नाम आन्ध्र देश था ।

(४३) त्रिगर्त.—

सुशर्मा राजा का देश, जिसको इस समय जालन्धर कहते है। पजाब का पूर्वी हिस्सा, जिसमें अधिकतर सतलज और सरस्वती नदियो के बीच का प्रदेश होना चाहिये । इस देश में तीन नदियों और तीन शहर (जालन्धर, धोब और कांगड़ा) होने के कारण इसको 'त्रिगर्त' कहते है ।

(४४) दशेरक·—

वराहमिहर के अनुसार तो 'दशेरक' या 'दाशेरक' हिन्दुस्तान के उत्तर में रहने वाली एक जाति का नाम था । यदि देश का नाम हो तो जिस देश में वह जाति निवास करती थी, उसी देश का नाम 'दशेरक' होना चाहिये; परन्तु शब्दार्थ चिन्तामणि कोष में मरू देश का नाम 'दशेरक' लिखा है ।

(४५) दार्व·—

वराहमिहर हिन्दुस्तान के उत्तर-पूर्वी विभाग में रहने वाली एक जाति का नाम 'दार्व' लिखते है, जिनके निवास से यदि यह कोई देश का नाम होवे तो वह देश हिन्दुस्तान के ईशान कोण में चीन के पूर्व भाग में होना चाहिये ।

(४६) द्रविड —

।।श्लोक।। कर्णाटाश्चैव तैलङ्गा गुर्ज्जरा राष्ट्रवासिनः ।।
आन्ध्राश्च द्राविडाः पञ्च विन्ध्यदक्षिण वासिनः ।। १ ।।
इति स्कन्दपुराणम् ।।

अर्थ—'कर्णाट,' 'तैलङ्ग,' 'गुर्ज्जर,' † 'राष्ट्र' (महाराष्ट्र) और 'आन्ध्र' विंध्याचल से दक्षिण दिशा में इन पाँच देशो में निवास करनेवालोको 'पञ्चद्राविड' कहते है । इससे तो उन पाँचो देशो की द्रविड सज्ञा पाई जाती है, जो मद्रास से लेकर कन्या कुमारी तक फैला हुआ है ।

(४७) धाटि —

इसका अपभ्रश 'धाट्' मालूम होता है, जो भारतवर्ष के पश्चिमी भाग में

सम्पादकीय टिप्पण

† गर्ज्जर—गुजरात ।

बाढमेर से आगे पाया जाता है, जहाँ के घोड़ों का उत्तम होना प्रसिद्ध है।

(४८) नेपाल –

अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है।

(४९) पञ्चनद.–

पञ्जाब।

(५०) पञ्चाल –

पञ्चालक्षत्रियो के निवास से इस देश का नाम पञ्चाल प्रसिद्ध है और विष्णुपुराण के चौथे अंश में १९वें अध्याय के मत से राजा हर्यश्व के-मुद्गल, सृन्जय, वृहदिषु, प्रवीर और काम्पील नामक पाँच पुत्र हुए। पिता ने कहा कि मेरे आधीन पाँचों देशो की रक्षा करेंगे। इसी से उन पाँचों का नाम 'पाञ्चाल' हुआ, जिससे यह पाञ्चाल देश प्रसिद्ध है। इसकी सीमा तंत्रशास्त्र मे इस प्रकार लिखी है।

कुरुक्षेत्रात् पश्चिमेतु तथा चोत्तरभागतः ॥
इन्द्रप्रस्थान्महेशानि! दशयोजन जनकद्वये ॥१॥
पञ्चालदेशोदेवेशि! सौन्दर्य गर्वभूषितः ॥२॥

अर्थ—कुरुक्षेत्र से पश्चिम तथा उत्तर के भाग में हे पार्वती! दिल्ली से १२ योजन पर सुन्दरता के गर्व से भूषित ऐसा पाञ्चाल देश है और राजशेखर के कथनानुसार गङ्गा और यमुना के बीच का देश 'दुआब'* का नाम पाञ्चाल होना चाहिये।

(५१) पाड्य –

॥श्लोक॥ कम्बोजाद्दक्षभागेतु इन्द्रप्रस्थांच पश्चिमे।
पाण्ड्यदेशो महेशानि! महाशूरत्व कारकः ॥१॥

सम्पादकीय टिप्पण

* गङ्गा और यमुना के बीच का देश 'दुआब,' 'पाञ्चाल' कहलाता हो, ऐसा पाया नही जाता। दुआब का नाम अन्तर वेद तो लिखा हुआ मिलता है। राजशेखर कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहार नरेश महेन्द्रपाल का समकालीन था। यही नही, वह महेन्द्रपाल का शिक्षागुरू था। उसने काव्यमीमासा, कर्पूरमंजरी, बाल रामायण, बालमहाभारत विद्धशालभंजिका नाटिका आदि ग्रंथो की रचना की थी। महेन्द्रपाल का राज्य समय वि० सं० ९५०–९६४-ई० सं० ८९३–९०७ निश्चित है। अनुमान से राजशेखर का भी यही समय स्थिर होता है। सभव है कि उसके समय (वि० स० की दसवी शताब्दी) में दुआब पाञ्चाल कहलाता हो।

अर्थ—कम्बोज से दक्षिण भाग में और दिल्ली से पश्चिम में हे पार्वती ! बहुत शूरवीरों वाला पांड्य देश है।

जॉन डॉनसन् का मत इससे विरुद्ध है, क्योकि वह इस देश को हिन्दुस्तान के दक्षिण में लिखता है जिसकी राजधानी 'मदुरा' थी।

(५२) पेशोर.—

यह पिशावर शहर का नाम है, जो भारतवर्ष के उत्तारी भाग में विद्यमान है।

(५३) प्रस्थल —

(५४) प्राग्ज्योतिष.—

एक शहर का नाम है, जो काँगरू देश में नरकासुर की राजधानी थी, जिस (नरकासुर) को श्रीकृष्ण ने मारा था।

।।श्लोक।। तत्रैवहिस्थितो ब्रह्मा प्राङ् नक्षत्रससर्जह ।।
ततः प्राक्ज्योतिषाख्येयं पुरी शक्रपुरीसमा ।।१।।

अर्थ—वहाँ स्थित होकर ब्रह्मा ने पहले नक्षत्र बनाये थे, इस कारण से उस नगर का नाम प्राग्ज्योतिष हुआ, जो इन्द्र की पुरी अमरावती के समान है।

(५५) प्राच्य —

शरावती नदी की सीमा से पूर्व और दक्षिण का देश।

(५६) फारस —

पारस देश, जिसको इस समय 'परशिया' कहते है। वहाँ घोड़े बहुत अच्छे होते है।

(५६) बग्गड.—

यह प्रान्त इस समय 'डूगरपुर-बासवाडा' के राज्यो में बटा हुआ है; जिसको इस समय 'बागड' कहते है।

(५८) बङ्ग —

।।श्लोक।। रत्नाकरंसमारभ्य ब्रह्मपुत्रान्दागं शिवे ।।
बङ्गदेशोमया प्रोक्तः सर्व सिद्धि प्रदर्शक ।।१।।

अर्थ—समुद्र से लेकर ब्रह्मपुत्र नदी तक हे पार्वती ! मैने बंग देश कहा है, वह सर्वसिद्धियो को दिखाने वाला है (बङ्गालका पूर्वी हिस्सा)।

(५९) बदक्शा.—

यवन देश विशेष, जो अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है।

(६०) बल्क:—

यह 'बलख' का नाम मालूम होता है, जो अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है।

(६१) बुलगान—

यवन देश विशेष।

(६२) ब्रह्मा.—

भारतवर्ष के पूर्व में अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है।

(६३) मगध—

।।श्लोक।। व्यासेश्वरं समारभ्य तप्तकुण्डान्तगं शिवे ! ।।
मगधाख्यो महादेशो यात्राया नहि दुष्यति ।।१।।

अर्थ—व्यासेश्वर से लेकर तप्तकुण्ड पर्यन्त हे पार्वती ! यात्रा में दूषित नहीं है, ऐसा मगध देश है ।।१।। जिसकी राजधानी पटना है।

(६४) मद्र—

।।श्लोक।। वैराटपाण्ड्योर्मध्ये पूर्वं दक्षिण क्रमेणतु।
मद्रदेशः समाख्यातो माद्रीहातत्र तिष्ठति ।।१।।

अर्थ—वैराट् से पूर्व और पाण्ड्य से दक्षिण इनके बीच में जहाँ अहो ! माद्री स्थित है ।।१।।

अंग्रेजी पुस्तको में व्यास और झेलम नदियो के बीच के देश को 'मद्र' लिखा है।

(६५) मरू—

मारवाड़, जहाँ के ऊँट उत्तम होते है।

(६६) महाराष्ट्र:—

नर्मदा और कृष्णा नदी के बीच का प्रदेश, जहाँ मराठी बोली जाती है।

(६७) मालव—‡

सम्पादकीय टिप्पण

‡ मालवेका सूचक है। 'मालव' नामक जाति का वहाँ निवास होने से इस प्रदेश का नाम 'मालव' पडा। वि० सं० की प्रथम शताब्दी के आस-पास वहाँ प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य था, ऐसा मालव गणो के सिक्को से जो जयपुर राज्य के उणियाटा ठिकाने के कर्कोटक नगर से मिले हैं, पाया जाता है।

(६८) मिथिला:—

॥श्लोक॥ गण्डकीतीरमारभ्य चम्पाख्यानकंशिवे ! ॥
विदेहभू:समाख्याता तैरभिक्ता भिषः सतुं ॥१॥

अर्थ—गण्डकी नदी की तीर से चम्पारण्य तक, हे पार्वती ! जनकभूमि है जिस को तिरहुत भी कहते है ।

(६९) मुर्गाब –

रूसी तुर्किस्तान की एक नदी जो अफगानिस्तान के सफेद कोह नामक एक पहाड़ में से निकलती है ।

(७०) मुल्तान –

॥श्लोक॥ करतोयांसमारभ्य हिंगुलाजान्तकं शिवे ? ॥
मुल्तान देशोदेवेशि ! महाम्लेच्छ परायण ॥१॥

अर्थ—अटक नदी से लेकर हिंगुलाज तक, हे पार्वती ! महाम्लेच्छ देश 'मुल्तान' है ॥१॥ यह अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है ॥

(७१) मूलिक –

पुराणो के अनुसार दक्षिण का एक देश ! आंध्रवंश के राजा गौतमी पुत्र सातकर्णी के आधीन देशो में से एक 'मुलक' देश भी था, ऐसा उसी के पुत्र मूलू भाई के लेख से पाया जाता है ।

(७२) मूशिक – †

मलावार किनारे का कोलोन और कन्याकुमारी के बीच के देश ।

(७३) मेवात:—

यह अब भी इसो नाम से प्रसिद्ध है* ।

(७४) लम्पाक.—

काबुल नदी के उत्तर का देश जो 'लम्पाक' नाम से प्रसिद्ध है ।

(७५) लमगान·—

यवन देश विशेष. जिसका संस्कृत में 'लमगान' नाम था ।

(७६) वनायु –

सम्पादकीय टिप्पण

† सिन्ध का एक प्रदेश भी मुशिक नामक जाति के नाम पर विख्यात था ऐसा यूनानी इतिहासकारो से पता चलता है ।

* मेवात-अलवर राज्य के अन्तर्गत एक भूभाग है, जहाँ के निवासी मेवात या मेवाती कहलाते है ।

देश विशेष, जहाँ के घोड़े उत्तम होते है ।

(७७) वाल्हीक.—

।।श्लोक।। कंबोजदेशमारभ्यमहाम्लेच्छात्तुपूर्वगे ।।
वाल्हीक देशोदेवेशि ! अश्वोत्पत्ति परायणः ।।१।।

अर्थ—कम्बोज देश से लेकर फारस से पूर्व में, हे पार्वती ! घोड़ो की उत्पत्ति में श्रेष्ठ वाल्हीक देश है ।। १ ।। इसको इस समय 'बलख' कहते हैं ।

(७८) वासक —

(७९) विदर्भ—

।।श्लोक।। भद्रकाली महापूर्वे रामदुर्गाच्चपश्चिमे ।।
श्री विदर्भाभिधो देशो वैदर्भीतत्रतिष्ठति ।।१।।

अर्थ—महाभद्रकाली से पूर्व, रामदुर्गा से पश्चिम मे श्रीविदर्भ नामक देश है, जहाँ वैदर्भीदेवी स्थित है ।।१।।

इसको इस समय 'बरार' कहते हैं, जो हैदराबाद के नवाब ने गवर्नमेंट को फौज खर्च में दिया है । इसकी प्राचीन राजधानी कुण्डिनपुर (कुण्डपुर) थी ।

(८०) विन्ध्यः—

विन्ध्याचल का प्रदेश ।

(८१) विराट्ः—

।।श्लोक।। वैदर्भदेशादूर्द्धञ्च इन्द्रप्रस्थाच्चदक्षिणे ।।
मरूदेशात्पूर्वभागे विराटः परिकीर्तित ! ।।

अर्थ—विदर्भ देश से ऊपर, दिल्ली से दक्षिण और मरूदेश (मारवाड़) से पूर्व में विराट्देश है ।।१।।

इसकी राजधानी विराट् नगर होने से विराट् देश प्रसिद्ध हुआ था, जिसको मत्स्य देश भी कहते थे । यह 'विराटपुर' वैराट् देश के नाम से इस समय जैपुर में है ।*

सम्पादकीय टिप्पण

* विराट् नाम के कुछ और भी स्थान है, जिसमे एक उदयपुर राज्य के अन्तर्गत विराट् नामक प्रदेश है, जो अजमेर-मेरवाडा के जिले से मिला हुआ है । यह अब भी वैराट् नाम से प्रसिद्ध है । जिसका मुख्य स्थान बधनोर है, जिसका नाम वर्द्धनपुर लिखा हुआ मिलता है । पन्द्रहवी शताब्दी मे चित्तौड के महाराणा लक्षसिंह (लाखा) ने वहाँ पर बसने वाले मेरो का जो उपद्रव और लूटमार करते थे, दमन कर वैराट् का गढ तोड दिया और उसके स्थान

(८२) शतद्रू.–

सतलज नदी अथवा उसके किनारे का देश।

(८३) शाल्व·–

महाभारत में एक देश का नाम लिखा है, परन्तु इसका पता नही लगता ।

(८४) सगर –

(८५) सचोर –

जो इस समय 'सॉचोर' के नाम से जोधपुर का एक परगना प्रसिद्ध है ।

(८६) समस्थली:–

यह अन्तर्वेद देश, जिसकी राजधानी मेनपुरी थी।

(८७) सावर –

यह देश का नाम नहीं पाया जाता, किन्तु गॉव का नाम हो सकता है अथवा 'सौवीर' का 'सावर' लिखा हो तो उत्तरी सिन्धू का नाम होना चाहिये ।

(८८) सुमील –

(८९) सूकर (क्षेत्र)

सोरम नामक गंगाघाट तथा सोरम प्रान्त का नाम सूकर है।

(९०) सूर्यारक –

(९१) सौराष्ट्र –

।।श्लोक।। कोंकणात्पश्चिमेतीर्थं समुद्र प्रान्त गोचरं ।।
हिंगुला जान्तको देवि ! दशयोजन देशकः ।।
सौराष्ट्र देशोदेवेशि ! तस्मात्तुगुर्जराभिधः ।।१।।

अर्थ—कोंकण से पश्चिम का तीर्थ जो समुद्र प्रांत तक मालूम होता है और जिसका अन्त हिंगुलाज तक है, ऐसा दस योजन में फैला हुआ, हे देवि ! सौराष्ट्र नामक देश है, उसके आगे गुर्जर नामक देश है; यह काठियावाड़ के दक्षिणी भाग का नाम ह ।

सम्पादकीय टिप्पण

मे बधनोर बसाया । बधनोर के रेवत दर्वाजे बाहर एक चट्टान पर गुप्त कालीन लेख भी खुदा हुआ है, जो अभी तक विद्वानो की दृष्टि मे नही आया है ।

(९२) स्तबकार –

(९३) स्वर्णगिरि.–

यह मारवाड़ के एक प्रान्त जालोर' के पर्वत का नाम है । इसी पर्वत के नाम से चहुवाणों की एक शाखा 'सोनिगरा' प्रसिद्ध हुई है ।

२–राजपूताने के भिन्न-भिन्न विभागों के प्राचीन नाम—

'राजपूताना' नाम अंग्रेजो का रक्खा हुआ है। जिस समय उनका सम्बन्ध इस देश के साथ हुआ, उस समय बहुधा यह सारा देश, भरतपुर राज्य को छोड़कर, राजपूत राजाओ के अधीन था, जिससे उन्होंने गोंडवाना, तिलिंगाना के ढङ्ग पर इसका नाम 'राजपूताना' अर्थात् 'राजपूतो का देश' रक्खा। राजपूताना के प्रथम और प्रसिद्ध इतिहास-लेखक कर्नल जेम्स टॉड ने इस देश का नाम 'राजस्थान' या 'रायथान' रक्खा जो राजाओ या उनके राज्यो के स्थान का सूचक है, परन्तु अंग्रेजो के पहले यह सारा देश उक्त नाम से कभी प्रसिद्ध रहा हो, ऐसा कोई उदाहरण नही मिलता। अतएव वह नाम भी कल्पित ही है क्योंकि 'राजस्थान या उसके प्राकृत (लौकिक) रूप 'रायथान' का प्रयोग प्रत्येक राज्य के लिये हो सकता है। सारे राजपूताना के लिये पहले किसी एक नाम का प्रयोग होना पाया नहीं जाता, उसके कितने एक अंशो के तो प्राचीन काल में समय-समय पर भिन्न-भिन्न नाम थे और कुछ विभाग अन्य बाहरी प्रदेशो के अन्तर्गत थे।

जांगलदेश[1]

वर्तमान सारा बीकानेर राज्य तथा मारवाड़ (जोधपुर राज्य) का उत्तरी हिस्सा, जिसमें नागोर आदि परगने हैं, प्राचीन काल में 'जांगल देश' कहलाता था।

---

1 जागल देश के लक्षण ये बतलाए जाते है कि जिस देश मे जल और घास कम होती हो, वायु और धूप की प्रबलता हो और अन्न आदि बहुत होता हो, उसको जागल देश जानना चाहिये' (स्वल्पोदकतृणो यस्तु प्रवात प्रचुरातप। सज्ञेयो जागलो देशो बहुधान्यादिसयुतः—शब्दकल्पद्रुम, काण्ड २, पृ० ५२९)। भाव प्रकाश मे लिखा है कि 'जहाँ आकाश स्वच्छ और उन्नत हो, जल और वृक्षो की कमी हो और शमी, कैर, बिल्व, आक, पीलु और बेर के वृक्ष हो उसको जांगलदेश कहते है। (आकाश शुभ्र उच्चश्च स्वल्पपानीय पादम। शमीकरीर बिल्वार्कपीलु कर्कंधुसकुल ॥ देशो वातालो जागल स्मृत' (वही पृ० ५२९)।

इन लक्षणो से राजपूताना के बालूवाले किसी प्रदेश का नाम जागलदेश होना अनुमान किया जा सकता है ।

महाभारत में कहीं देश या वहाँ के निवासियों[1] का सूचक 'जांगल' नाम अकेला (जांगल[2]) मिलता है तो कहीं 'कुरु' और 'मद्र' देशो (निवासियों) के साथ जुड़ा हुआ ('कुरूजांगला'[3] 'माद्रेयजागला'[4])मिलता है । महाभारत में बहुधा ऐसे देशो के नाम समास में दिए हुए पाये जाते है, जो परस्पर मिले हुए होते है । जैसे, 'कुरूपांचाला' आदि । अतएव माद्रेयजांगला:' और 'कुरूजांगला:' का आशय यही है कि 'मद्र[5] । और 'कुरू[6]' देशो से जुडा हुआ 'जांगल देश' । मद्र और कुरू दोनो जांगल के उत्तर में थे, इसलिये उनसे दक्षिण में जांगल देश होना चाहिये ।

बीकानेर के राजा जागल देश के स्वामी होने के कारण अपने को

---

(1) सस्कृत मे देशो के नामो के साथ जब 'देश' या उसका पर्यायसूचक कोई दूसरा शब्द नही रहता,तब वे बहुधा बहुवचन मे मिलते है जैसे कि 'पाचाला:, 'जागला': 'दशार्णा'. आदि । इसका कारण यह है कि देशो के नाम बहुधा उनके निवासियो के नाम पर रखे गए है ।

(2) कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गला: कुरूवर्णका: (महाभारत, भीष्मपर्व; अध्याय ६, श्लोक ५६—कुभकोण सस्करण । पैत्र्य राज्य महाराज कुरूवस्ते स जाङ्गला:. वही, उद्योगपर्व, अध्याय ५४, श्लो०७) ।

(3) तीर्थयात्रामनुक्रामन्प्राप्तोस्मि कुरूजागलान् (वही वनपर्व, अ०१०, श्लो०११)। ततः कुरूश्रेष्ठमुपेत्य पौरा प्रदक्षिण चक्रुरदीनसत्वा । ते ब्राह्मणा श्चाभ्यवदन्प्रसन्ना मुख्याश्च सर्वे कुरूजागलानाम् । स चापि तानभ्यवदत्प्रसन्नः सहैव तैभ्रातृभि धर्म राजः तस्थौ च तत्राधिपतिर्महात्मा दृष्ट्वा जनौघ कुरुजांगलानाम् (वही, वनपर्व, अ०२३, श्लो०५-६)

(4) तत्रेमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गलाः वही; वनपर्व, अ० ६, श्लोक० ३६ ।

(5) पजाब का वह हिस्सा जो चिनाब और सतलज नदियो के बीच में है । इडि० एटि०, जि, ४०, पृ० २८ ।

इस समय बीकानेर राज्य (जागल) का उत्तरी हिस्सा मद्र देश से नही मिलता; परन्तु सभव है कि प्राचीन काल मे या तो मद्र की सीमा दक्षिण में अधिक दूर तक हो, या जागल की उत्तरी सीमा उत्तर में मद्र से जा मिलती हो ।

(6) 'कुरू' के लिये देखो आगे पृ० ३३२ । (ना०प्र०पत्रिका, काशी; नवीन सस्करण, भाग २ सं० ३, स ६७८)

'जांगलधर (जागल देश) के बादशाह' कहते हैं जैसा कि उनके राज्यचिह्न में लिखा रहता है ।[1]

जागल देश की राजधानी 'अहिछत्रपुर'[2] थी जिसको इस समय नागौर[3] कहते हैं और जो जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग में है ।

---

(1) बीकानेर राज्य के राज्यचिह्न मे 'जय जगलधर बादशाह' लिखा रहता है।

(2) 'अहिछत्रपुर नाम के एक से अधिक नगरो का होना हिन्दुस्तान मे पाया जाता है । उत्तरी पाँचाल देश की राजधानी अहिछत्र थी जिसका वर्णन चीनी यात्री हुएन्सग ने अपनी यात्रा की पुस्तक 'सी-यु-की' मे किया है (बील, बुद्धिस्ट रेकर्ड्स ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड, जि० १, पृ०२००)। जैन लेखक जागल देश की राजधानी अहिछत्र बतलाते है (इडि० एटि०, जि०४०, पृ०२८)। कर्नल टॉड के गुरू यति ज्ञानचन्द्र के सग्रह (माडल मेवाड मे) मे मुझे एक सूची २५ देशो तथा उनकी राजधानियो की मिली, जिसमे भी जागल देश की राजधानी 'अहिछत्र' लिखी है । भैरणमत्ति के शिलालेख मे सिधुदेश मे अहिछत्रपुर नामक नगर का होना लिखा है (एपि०इडि०, जि०३,पृ० २३५) इसी तरह और भी 'अहिछत्र' नाम के नगरो का उल्लेख मिलता है (बबई गैजेटिअर; जि०१, भाग २ पृ० ५६०, टिप्पण ११)।

(3) जोधपुर राज्य के नागौर नगर को जागल देश की राजधानी अहिछत्रपुर मानने का पहला कारण यह है कि नागौर 'नागपुर' का प्राकृतरूप है । नागपुर का अर्थ 'नाग का नगर' और 'अहिछत्रपुर' का अर्थ 'नाग है छत्र जिस नगर का' है । नाग और अहि दोनो एक ही आशय (साँप) के सूचक है । सस्कृत के लेखक नामो का उल्लेख करने मे उनके पर्याय शब्दो का प्रयोग सामान्य रूप से करते हैं । पुराणो मे विशेषकर 'हस्तिनापुर' नाम मिलता है परन्तु भागवत मे उसके स्थान मे 'गजसाह्वयपुर' (भागवत, १।८।४५, ४।३१। ३०, १०।५७।८) या 'गजाह्वय' पुर (भागवत, १।६।४८;१।१५।३८) नाम भी है । महाभारत मे हस्तिनापुर के लिये नागसाह्वयपुर (७।१।८१४।६५।२०) और नागपुर (५।१४।७।५) नामो का प्रयोग भी मिलता है क्योकि हस्ती, नाग और गज तीनो एक ही के सूचक है । दूसरा कारण यह है कि चौहान राजा सोमेश्वर के समय वि०स० १२२६ फाल्गुन वदि तीज के बीजोलिया (उदयपुर राज्य मे) के चट्टान पर के लेख मे चौहान राजा सामन्त का अहिछत्रपुर मे राज करना लिखा है (विप्रश्रीवत्सगोत्रे भूदहिछत्रपुरे पुरा । सायतोनतसामत, पूर्णतल्ले

सपादलक्ष

जांगल देश की राजधानी अहिछत्रपुर (नागौर) के आसपास के छोटे से प्रदेश का प्राचीन नाम सपादलक्ष[1] था। राजपूताने में चौहानो का प्रथम अधिकार उसी प्रदेश पर रहा, जिससे वे 'सपादलक्षीयनृपति' (सपादलक्ष के राजा) कहलाए। फिर उनकी राजधानी शाकंभरी (साभर) नगर हुई, जिससे वे 'शाकभरीश्वर' (संभरी नरेश)' भी कहलाते है। उनकी तीसरी राजथानी अजमेर हुई। समय पाकर उनके राज्य का विस्तार बढ़ता गया। और विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे के समय से तो राजपूताने के बाहर के कितने एक प्रदेश (देहली, हांसी आदि) भी उनके राज्य के अधीन हो गये थे, परन्तु सामान्य रूप से जितना देश उनके अधिकार में रहा, वह सारा ही-सपादलक्ष[2] कहलाने लगा। उसके अन्तर्गत जांगल (जोधपुर राज्य के उत्तरी

नृपस्तत्त (श्लोक १२)। पृथ्वीराज विजय महाकाव्य से पाया जाता है कि वासुदेव (सामन्त का पूर्वज) शिकार को गया, जहाँ एक विद्याधर की कृपा से शाकभरी (साभर) की झील उसको नजर आई" (सर्ग ४)। इससे पाया जाता है कि साभर की झील चौहानो की मूल राजधानी 'अहिछत्रपुर' से बहुत दूर न थी, ऐसी दशा मे नागौर ही 'अहिछत्रपुर' हो सकता है।

(1) नागौर के आस पास के इलाके (नागौर पट्टी) को वहाँ के लोग अब तक 'श्वाजक' या 'सवाजक' कहते है, जो सपादलक्ष का ही अलौकिक रूप है। तीन भिन्न-भिन्न देशो के नाम सपादलक्ष मिलते है, जिनमे से एक तो गढवाल, कुमाऊँ आदि प्रदेशो का, जैसा कि गया से मिले हुए राजा अशोकचल्ल के छोटे भाई कुमार दशरथ के समय के गया के लेख से पाया जाता है (इंडि० एंटि०; जि०१०, पृ० ३४६) एपि० इडि०; जि० १२, पृ० ३०।) दूसरा साभर और अजमेर के चौहानो के अधीन के सारे देश का नाम जो उनके शिलालेखो तथा ऐतिहासिक पुस्तको में मिलता है (देखो आगे पृ० ३३१, टिप्पण १-५) और तीसरा दक्षिण मे था जिसका उल्लेख केवल कनडी भाषा के प्रसिद्ध कवि पप के रचे हुए 'विक्रमार्जुन विजय' (पंपभारत नामक कनडी काव्य में जो शक सवत् ८६३ (वि० स ९९८) के आस पास बना था; मिलता है (गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—सोलंकियो का प्राचीन इतिहास; प्रथम भाग, पृ२०६)।

(2) देवं सोमेश्वर द्रष्टु राज श्री रुदकठत। आत्मजाभ्यामिव यश· प्रतापाभ्यामिवान्वित:। सपादलक्षमानिन्ये महामात्यैर्महीपति: (पृथ्वीराज विजय; सर्ग ८, श्लो०५७५८)। सपादलक्षमामर्धं नमकृत भया (नृपा?) नक: (सोलंकी कुमारपाल का चित्तौड़ का शिलालेख, (एपि० इडि० जि० २ पृ० ४२३)।

विभाग सहित), जयपुर राज्य[1] का शेखावाटी से लगाकर रणथंभोर से कुछ दक्षिण तक का प्रदेश जिसमें कोटा रियासत का उत्तरी भाग भी है, मेवाड का मांडलगढ़[2] (मंडल कर दुर्ग) से लगाकर सारा पूर्वी हिस्सा[3], बूँदी राज्य का पश्चमी अंश, किशनगढ का राज्य तथा अजमेर का सारा प्रदेश था। गुजरात के सोलंकी (चौलुक्य) राजाओ के समय के शिलालेखो तथा ऐतिहासिक संस्कृत पुस्तकों में अजमेर के चौहानो को कही सपादलक्ष[4] और कहीं जागल देश[5] का राजा कहा है, जिससे पाया जाता है कि–प्राचीन जांगल देश चौहानो के विस्तृत राज्य के अन्तर्गत हो जाने के कारण पीछे से सपादलक्ष में गिना जाने लगा।

---

(1) सवत् १२४४ श्रावणपूर्वं सपादलक्षे (जयपुर राज्य के वीसलपुर का शिलालेख, अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज के समय का–कनिगहाम, आर्कियालाजिकल सर्वे, रिपोर्ट, जि० ६, प्लेट २१)।

(2) श्रीमानस्ति सपादलक्षविषय शाकभरीभूषणस्तत्रश्रीरतिधाममण्डल-कर नामास्ति दुर्गंमहत् ।१। म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तेक्ष-तित्रासाविन्ध्यनरेन्द्रदो॰ परिमल स्फूर्जच्त्रिवर्गोजसि। प्राप्तो मालवमडले बहुपरीवार पुरीमावसद्यो धारामपठज्जिनप्रमितिवाक् शास्त्र महावीरत. ।।५।। (जैन विद्वान् आशाधर रचित 'धर्मामृतशास्त्र।)

(3) ओ स० १२२५ ज्येष्ठ वदि १३ अद्येह श्रीसपादलक्षमडले महाराजा धिराज परमेश्वर.. . .शाकभरीभूपालश्रीप्तिथिम्विदेव विजयराज्य (मेवाड के पूर्वी हिस्से के धौड गाँव के रूठी राणी के मदिर के स्तभ्भ पर खुदा हुआ चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे (पृथ्वीदेव, पृथ्वीभट) के समय का शिलालेख)।

(4) सपादलक्षमामर्धं (ऊपर टिप्पण १)। सपादलक्ष सहभूरलक्षैराना-कभूपाय नतायदत्त (प्रबन्धचिन्तामणि, पृ० १६०)।

(5) किमङ्ग ? जागलपते सौप्तिकप्रस्तावोपश्लोकमनाकार्णतवान् भवान् प्रल्हादनदेव विरचित 'पार्थपराक्रमव्यायोग,' पृ०३)। दण्डे मण्डपिका हैमी सहमत्तैर्मतगजै॰। दत्वा पादं गले येन जाङ्गलेशादगृह्यत (कीर्ति कौमुदी, सर्ग २, श्लो०५३)। हृदिप्रविष्टयद्वाण क्लिष्टेनाघूर्णितं शिर। जागलक्षोणिपालेन व्याचक्षाणै: परैरपि—

(वही स०२, श्लो०४६)। गूर्जरेश्वरपुरोहित मोमेश्वर ने अपनी 'कीर्ति कौमुदी' मे गुजरान के सोलंकी राजा कुमारपाल और अजमेर के चौहान राजा आना (अर्णोराज, आनाक आनल्लदेव) के बीच की लडाई के प्रसग मे चौहान राजा को जागलक्षोणिपाल अर्थात् 'जागल देश का राजा' कहा है (सर्ग २, श्लो०४६)। परन्तु उसी ग्रन्थकार न अपने 'मुरथोत्सवकाव्य' मे गुजरात के चौलुक्य राजा

कुरु

महाभारत में कुरु देश का नाम कभी अकेला[1] मिलता है और कभी उसके साथ जांगल[2] और पाचाल[3] के नाम जुड़े हुए मिलते हैं। जागल दक्षिण में और पांचाल पूर्व में उससे जुडा-हुआ था और वे दोनो कभी कभी कुरुराज्य के अधीन[4] भी रहे थे। कुरु देश में पटियाला राज्य के पूर्वी (आधे, हिस्से से लगाकर यमुना के पूर्व तक के और थानेश्वर के कुछ उत्तार से लगाकर देहली से कुछ दक्षिण तक के प्रदेश का

जयसिह (सिद्धराज) के और चौहान आना के युद्ध प्रसग मे आना को सपादलक्ष का राजा कहा है (दृप्त:सोऽपि सपादलक्षनृपति: पादानति शिक्षित:—सर्ग १५, श्लोक २२) मेरूतुग ने बहुत जगह सपादलक्ष ही नाम दिया है, जागल कही नही।

(1) देखो. (पृ. टि.—) पृ० ३२८ टिप्पण २ (ना. प्र. प., नवीन सस्करण, काशी भाग २ संख्या ३, स. १९७८)।

(2) देखो (पृ टि.) पृ० ३२८ टिप्पण ३ („ „)।

(3) तत्रेमे कुरूपाञ्चाला शाल्वा माद्रेयजागला (महाभारत, भीष्मपर्व, अ० ९, श्लो० ३९)।

पाचाल अतर्वेद (गगा और यमुना के बीच के प्रदेश) के बडे हिस्से का नाम था(आर्ये? अदूरवर्त्तिनी भगवत्ययोध्या। इसे अन्तर्वेदीभूषण पाचाला:—राजशेखर बालरामायण, अंक १०)। पाचाल के दो विभाग थे, जो उत्तरी और दक्षिणी पाचाल कहलाते थे। उत्तरी पाचाल की राजधानी अहिछत्रपुर थी, जिसके खंडहर बरेली से २० मील पश्चिम मे पाए जाते हैं। दक्षिणी पाचाल की राजधानी कापिल्य नगर गगा के तट पर था, जिसको इस समय कपिल कहते है ओर जो करीब२ बदाऊँ के सामने है (देखो खङ्गविलास प्रेस का छपा टॉड राजस्थान, प्रथम खड, पृ० ४५)।

कोई-कोई पाचाल को पंजाब का प्राचीन नाम मानते है· परन्तु वह भ्रम ही है। पजाब कभी पाचाल नही कहलाया। उसका प्राचीन नाम पंचनद मिलता है। (कृत्स्नपञ्चनद चैव तथैवामरपर्वतम्—महाभा०; सभापर्व, अ०३५, श्लो० ११)। अथपञ्चनदं गत्वा नियतो नियताशन:। (वही, वन प०; अ०८० श्लो०८४)।

(4) देखो (पृ टि.) पृ० ३२८, टिप्पण २। (ना.प्र.प.; नवीन संस्करण काशी भाग२, स. १९७८)। (मैकडॉनल और कीथ, वैदिक इडेक्स, जि० १, पृ० १६६)।

समावेश होता था[1]। उसकी प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर गंगा के तट पर मेरठ जिले में (मेरठ से २२ मील उत्तर-पूर्व में) थी। यह नगर गगा के प्रवाह से नष्ट हो गया। जिससे परीक्षित के सातवें वंशधर निचक्षु ने कौशांबी को अपनी राजधानी बनाया[2] उसकी दूसरी राजधानी इंद्रप्रस्थ (पुरानी देहली) पांडवो के समय में स्थिर हुई थी। राजपूताने का केवल अलवर राज्य का उत्तरी हिस्सा जिसमें तहसील तिजारा आदि है, कुरु देश के अन्तर्गत था।

कुरु देश को कुरुक्षेत्र[3] भी कहते है। कौरव-पाडवो का प्रसिद्ध महाभारत का युद्ध इसी धर्म क्षेत्र में हुआ था।

मत्स्य

मत्स्य देश कुरुक्षेत्र से दक्षिण और शूरसेन से पश्चिम मे था। उसमें अलवर राज्य की तहसील अलवर, राजगढ, टहला आदि उक्त राज्य के पश्चिमी और दक्षिणी हिस्से तथा अलवर से मिला हुआ जयपुर राज्य का बहुत-सा अंश था। महाभारत के समय उक्त देश का राजा 'विराट्' था, जिसके नाम से उक्त देश की राजधानी विराट् या विराट् नगर कहलाई हो। विराट नगर को इस समय बैराट् कहते हैं और वह जयपुर राज्य के अंतर्गत उक्त नाम की तहसील का मुख्य स्थान है। वह राजपूताने के प्राचीन नगरों में से एक है जहा मौर्यवंशी राजा अशोक के लेख मिले हैं[4]।

शूरसेन

मत्स्य देश से पूर्व में 'शूरसेन देश' था। उसके अन्तर्गत मथुरा के आस-पास का प्रदेश (मथुरामंडल, व्रज), अलवर राज्य का पूर्वी हिस्सा जिसमें तहसील रामगढ, गोविन्दगढ़ आदि है, भरतपुर और धौलपुर के राज्य तथा करौली राज्य का बहुत सा अश (उत्तरी) था। उसकी राजधानी मथुरा (मधुपुरी) थी।

---

(1) तैत्तिरीय आरण्यक मे कुरु (कुरुक्षेत्र) की सीमा दक्षिण मे खाडव (वन), उत्तर में तूर्घ्न और पश्चिम मे परीणह् का होना लिखा है (वही, जि. १, पृ० १७०)।

(2) विष्णु पुराण, अश ४, अध्याय २१।

(3) कुरुक्षेत्र को समतपचक भी कहते थे जिसका कारण ऐसा माना जाता है कि वही परशुराम ने क्षत्रियो को मारकर उनके रुधिर मे पांच कुण्ड भरे थे (महाभारत, आदि प०, अ०२, श्लो० १-७)।

(4) कनिंगहाम, कार्पस् इन्स्क्रिपशन इंडिकेरम्, जि० १, पृ०९६-९७।

राजन्य देश

मथुरा के आस-पास के प्रदेश से कुछ सिक्के ऐसे मिले हैं जिन पर खरोष्ठी या ब्राह्मी लिपि में 'राजञाजनपदस' (राजन्यजनपदस्य–राजन्य देश का–सिक्का) लेख हैं[1]। ये सिक्के मथुरा के (उत्तरी) क्षत्रपो के सिक्कों की शैली के हैं और उन पर के खरोष्ठी लिपि के लेख से पाया जाता है कि वे विदेशी राजाओं के चलाए हुए हों। सम्भव है कि मथुरा के आस-पास के प्रदेश अर्थात् शूरसेन देश पर क्षत्रपों का अधिकार होने से पूर्व वहाँ के स्वामी राजन्य अर्थात् क्षत्रिय (राजपूत) थे जिससे उस देश का नाम राजन्य देश भी रहा हो। 'राजन्य देश' शूरसेन या उसके एक विभाग का नाम होना चाहिए।

शिवि

चित्तौड के प्रसिद्ध किले से ७ मील उत्तर मे 'मध्यमिका' नामक प्राचीन नगरी के खंडहर हैं। उसको इस समय 'नगरी' कहते हैं। वहाँ से मिले हुए कई एक ताँबे के सिक्कों पर ई० सं० पूर्व की दूसरी शताब्दी के आस–पास की ब्राह्मी लिपि में–'मझिमिकाय शिबिजनपदस, (मध्यमिकाया: शिबिजनपदस्य—शिबि देश की मध्यमिका का–सिक्का) लेख है,[2] इस पर से अनुमान होता है कि उस समय मेवाड़ या उसका चित्तौड़ के आसपास का अंश 'शिबि[3] नाम से प्रसिद्ध था। पीछे से वह देश मेवाड़ (मेदपाट) के अन्तर्गत हो गया या उस नाम से प्रख्यात हुआ और उसका मूल नाम तक लोग भूल गए।

मेदपाट

उदयपुर राज्य के शिलालेखो तथा ऐतिहासिक पुस्तकों में उस राज्य या देश का नाम 'मेदपाट'[4] मिलता है और लोग उसको 'मेवाड' कहते

---

(1) वी० ए० स्मित्थ, कैटलॉग् ऑफ दी कॉईस इन् दी इंडिअन् म्यूजिअम, कलकत्ता पृ० १६४–६५,१७६–८० ।

(2) कनिगहाम आर्किआ लॉजिकल सर्वे, रिपोर्ट जि० ६, पृ० २०३।

(3) हिन्दुस्तान मे शिबि नाम के एक से अधिक देश पाए जाते है, शिबि नाम का एक देश लाहौर और मुलतान के बीच था (वही, जि० १४, पृ० १४५)। वराहमिहिर ने भारत के दक्षिणी विभाग मे शिबिक (शिबि) नाम देश भी बतलाया है (कंकटटंकणवनवासिसि शिबि कफणिकार कौकणाभीरा:—वृहत्संहिता अध्याय १४, कूर्म विभाग, श्लो० १२)।

(4) नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण), भाग १, पृ० २६८, टिप्पण ५२ ।

है । उस देश पर पहले मेद (संस्कृत में) अर्थात् मेव या मेर जाति का अधिकार रहने से उसका नाम मेदपाट (मेवाड़) पड़ा। मेवाड़ का एक हिस्सा अब तक 'मेवल' कहलाता है तथा मेवो के राज्य का स्मरण दिलाता है । मेवाड़ के देवगढ़ की तरफ़ के इलाके में और अजमेर-मेरवाड़ा के मेरवाड़ा प्रदेश में, जिसका अधिकतर अंश मेवाड़ से ही लिया गया है, अब तक मेरो की आबादी अधिक है । कितने एक बिद्वान मेर (मेव, मेद) लोगो की गणना हूणों में करते है, परन्तु मेरलोग शाकद्वीपी ब्राह्मणो की नांई अपना निकास ईरान की तरफ से बतलाते है और मेर (मिहिर) नाम भी वही सूचित करता है, जिससे सम्भव है कि वे पश्चिमी क्षत्रपो के अनुयायी या वंशज हो ।

प्राग्वाट्

करनबेल (जबलपुर के निकट) के एक शिलालेख में प्रसंगवशात् मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा हंसपाल, वैरिसिंह और विजयसिंह का वर्णन मिलता है जिसमें उनको 'प्राग्वाट'[1] का राजा कहा है । अतएव प्राग्वाट् मेवाड़ (मेदपाट) का ही दूसरा नाम होना चाहिये । संस्कृत के शिलालेखो[2] तथा पुस्तको[3] में 'पोरवाड़' महाजनों के लिये 'प्राग्वाट' नाम का प्रयोग मिलता है । वे लोग अपना निकास मेवाड़ के 'पुर' कसबे से बतलाते है जिससे सम्भव है कि प्राग्वाट देश के नाम पर से वे अपने को प्राग्वाट् वंशी कहते रहे हो ।

वागड़[4]

डूंगरपुर और बाँसवाड़ा राज्यो से मिलने वाले शिला-लेखों में उक्त राज्यों

---

(1) प्राग्वाटेवनिपालभालतिलक श्रीहंसपालोभवत्तस्मादभूभृदसूत सत्य-समिति, श्रीवैरिसिंहाभिधः । इंडि० एंटि०, जि० १८ पृ० २१७ ।

(2) प्राग्वाटान्वयमुकुलं कुटजप्रसूनविशदयशा (एपि० इंडि०, जि० ८, पृ० २०९) श्रीमदणहिलपुरवास्तव्य श्रीप्राग्वाटज्ञातीय ड० श्रीचण्डपसुत (वही, पृ० २१९) ।

(3) प्राशु प्राग्वाटवंशो भूत्पुरे गुर्जरभूभुजाम (सोमेश्वररचित कीर्ति-कौमुदी, सर्ग ३, श्लोक १) ।

(4) वागड के स्थान पर 'वागट' और 'वार्गट' पाठ भी मिलते है (जयति श्रीवागट संघ —राजपूताना म्यूज़ियम (अजमेर) में रक्खी हुई एक जैन मूर्ति के आसन पर खुदा हुआ वि० सं० १०५१ का लेख-अप्रकाशित) वार्गटिकान्वयोद्भूतसद्विप्र कुलसंभव (हर्षनाथ का लेख, एपि० इंडि० जिल्द

का सम्मिलित नाम 'वागड़[1]' मिलता है और वहाँ के लोगों में वे दोनों राज्य अब तक 'वागड' नाम से ही प्रसिद्ध हैं । मेवाड़ का छप्पन जिला' भी जो डूंगरपुर राज्य की सीमा से मिला हुआ है, पहले 'वागड' के अन्तर्गत था[2]। 'वागड़' नाम की उत्पत्ति का ठीक पता नही मिलता । डूगरपुर और बाँसवाडा के ब्राह्मणों का कथन है कि वागड़ शब्द 'वाक्‌जड़' शब्द का अपभ्रंश है क्योंकि वहाँ की भाषा जड़ अर्थात् कठोर है परन्तु उनका यह कथन कल्पित सा प्रतीत होता है । वागड़ की भाषा गुजराती है, जिसको जड़ नहीं कह सकते । उसमें वागड़ से मिलता हुआ 'वगड़ा' शब्द जंगल के अर्थ में प्रचलित है । सम्भव है कि 'वागड़' नाम 'वगड़ा' (वग्गल–जंगल) शब्द से निकला हो। राजपूताने का वागड देश पहाड़ो तथा जंगलो से भरा हुआ है । कच्छ राज्य का एक हिस्सा तथा बीकानेर राज्य का एक अंश भी वागड़ कहलाता है । सम्भव है कि वे भी पहले वहाँ जंगल होने से ही उक्त नाम से प्रसिद्ध हुए हों ।

मरू

संस्कृत में मरू और धन्व[3] (धन्वन्) दोनो शब्द मरूस्थली अर्थात् रेगिस्तान के सूचक मिलते हैं । सामान्य रूप से मरू शब्द राजपूताना के तथा उससे मिले हुए सारे रेगिस्तान का सूचक हो सकता है ।

इस रेगिस्तान के स्थान में पहले सागर (समुद्र) था[4], परन्तु भूकम्प आदि प्राकृतिक कारणो से भूमि ऊँची हो जाने से सागर का जल दक्षिण में हटकर समुद्र में मिल गया और रेते का पुंजमात्र रह गया, जिसको 'मरूकातार' भी कहते थे । यह भी कहा जाता है कि दक्षिण सागर के सेतु बँधवाने को राजी हो जाने पर रामचंद्र ने उसे डराने के लिये खेंचा

२, पृ० १२२), राजपूताने मे बहुत से ब्राह्मण वागडिये या वागडे कहलाते हैं ।

(1) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० ३१, टिप्पण ३०–३१ ।

(2) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० २८–२६ ।

(3) समानौ मरुधन्वानौ (अमरकोश, काड २, भूमिवर्ग, श्लोक ५) । देशास्तान्धन्वशैलद्रुमस (ग) हनसरिद्वीर बाहूपगूटान (फ्लीट, गुप्त इन्सक्रिप-शंस, पृ० १४६) ।

(4) राजपूताना के रेगिस्तान में सीप, शंख, कौडी आदि परिवर्तित पाषाण रूप मे (Fossil) मिलते है, जो पहले वहा जल का होना बतलाते हैं । रेगिस्तान बन जाने के पीछे भी सिन्धु की सहायक नदी

हुआ अपना अमोघ बाण इधर फेंका, जिससे समुद्र सूख गया[1] । व्यवहारिक संकेत में 'मरू' नाम 'मारवाड़' (जोधपुर राज्य) का सूचक माना जाता है । परन्तु जयसिंह सूरि अपने हमीरमदमर्दन नाटक में आबू के परमार राजा धारावर्ष और जालौर के सोनगेंर (चौहान) उदयसिंह आदि

घग्गर की एक धारा, जिसको राजपूताने मे हाकडा कहते है, बीकानेर और जोधपुर राज्यो मे बहती हुई सिध मे जाकर सिधु नदी में मिल जाती थी । जोधपुर, मालानी आदि परगनो मे कई गावो मे ईख पेरने के पत्थर के कोल्हू अब तक पडे हुए मिलते है जिनके विषय मे यह कहा जाता है कि पहले यहा हाकडा नदी बहती थी, उसके तट पर गन्नो की खेती होती थी, जिनसे गुड बनाया जाता था । यदि उक्त नदी का प्रवाह वहाँ न होता तो उन रेतीले प्रदेशो मे ऐसे बड़े घाणो (कोल्हूओ) की सम्भावना ही कैसे होती । पीछे जमीन ऊँची हो जाने के कारण हाकडा का बहना बन्द हो गया, इतना ही नही किंतु मूल घग्गर नदी ही रेगिस्तान मे लुप्त हो गई । अब केवल उसके प्राचीन बहाव के मार्ग के चिह्न ही दृष्टिगोचर होते है और उसका थोडासा जल बीकानेर राज्य के हनुमानगढ़ इलाके तक ही आता है जिससे गेहू आदि पैदा होते है । उसको वहा वाले कग्गर नदी कहते है । इस नदी के सूख जाने के विषय मे लोकोक्ति है कि 'वे पानी मुल्तान गए' जो समय चूककर पछताने के अर्थ मे प्रयुक्त होती है । उसकी रोचक और उपदेशपूर्ण कथा यह प्रसिद्ध है कि किसी समय उस प्रदेश के किसी राजा ने एक लक्खी बणजारे (लाख बैलो पर माल ढो ले जानेवाले व्यापारी) की स्त्री हर ली और उसके पति के बहुत प्रार्थना करने पर भी न लौटाई । बणजारा इस अत्याचार का बदला लेने की प्रतिज्ञा करके गया और जहाँ नदी का मोड इधर था; वही कई वर्षो तक उसने अपने लाखो बैल इसी काम पर लगा दिए कि नदी के प्रवाह में बालू डालकर इधर की भूमि ऊँची करदी जाय । उसका परिश्रम सफल हुआ और जल का प्रवाह दक्षिण न होकर पश्चिम की तरफ हो गया ।

इस पर अपने देश को उजडता देख राजा बहुत गिडगिडाया और उसकी स्त्री को लौटाने लगा, किन्तु बणजारे ने यही उत्तर दिया कि वे "पानी मुलतान गये ।"

(1) तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सागरस्य महात्मन । मुमोच तं शरं दीप्तं परं सागरदर्शनात् ॥३२॥ तेन तन्मरूकान्तारं पृथिव्या किल विश्रुतम् ।

तीन राजाओं को 'मरूदेश' का राजा बतलाता है[1]। अतएव 'मरूदेश' की सीमा आबू के राज्य (अर्बुद देश) तक होनी चाहिये । इस समय खास 'मरू (मारवाड़)' में जोधपुर राज्य के शिव, मालाणी और पचपद्रा के परगने ही माने जाते हैं । मरू के स्थान में 'मरूस्थल,'[2] 'मरूस्थली', 'मरूमंडल'[3], तथा 'माख'[4] शब्दों का प्रयोग भी मिलता है ।

अर्बुद

यह प्राचीन मरूदेश का एक अंश था । परमारों के राज्य के समय उसमें सिरोही राज्य, जोधपुर राज्य का कितना एक अंश, दांता राज्य[5] और पालनपुर[6] राज्यों का समावेश होता था । अर्बुद देश की राजधानी चन्द्रावती आबू के नीचे थी ।

माड

राजपूताना के शिलालेखो में माड[7] नाम जेसलमेर राज्य का सूचक मिलता है और वहां वाले अबतक अपने देश को 'माड' ही कहते हैं ।

निपातित शरोयत्र वज्राशनिसमप्रभ ।।३३।। (वाल्मिकीय रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग २२)

(1) श्रीसोमसिहोदय सिहधारा वर्षैरमीभिर्मरूदेशनाथै· । दिशो्ष्ट जेतु स्फुटमष्टबाहुस्त्रिभि समेतैरभवत्प्रभुर्न्नं. (हमीरमदमर्दन, पृ० ११)

(2) मरूस्थल्या यथा वृष्टि (महाभारत) ।

(3) प्रबन्ध चिन्तामणि पृ० २७५ ।

(4) वही पृ० २४३ ।

(5) दाता राज्य इस समय गुजरात में गिना जाता है, परन्तु पहले वह आबू के राज्य का ही अश था । दाता आबू के नीचे है और उसकी सीमा सिरोही राज्य से मिली हुई है । वहा के राणा आबू के परमार राजा धारावर्ष के ही वंशज है ।

(6) पालनपुर का राज्य भी इस समय गुजरात मे गिना जाता है परन्तु पहले आबू के परमारो के राज्य के अन्तर्गत था । इतना ही नही किन्तु पालनपुर शहर आबू के राजा धारावर्ष के छोटे भाई प्रल्हादनदेव ने बसाया था । उसका प्राचीन नाम 'प्रल्हादनपुर' था जिसका अपभ्रंश 'पालनपुर' है । (प्रल्हादन क्षितिपतिर्द्युपतिर्महोभिः श्री अर्बुदाचलविभु स बभूव पूर्वम् । तेन स्वनामविदितं दितपापतापम् संस्थापितं पुरमिदं मुदित प्रजाढ्यं) (हरिसौभाग्यकाव्य, १३) ।

(7) येन प्राप्ता महख्यातिस्त्रवण्यों वल्लमाडयोः (प्रतिहारवंशी राजा कक्कुक का घटियाले का शिलालेख—एपि० इंडि०, जि० ९, पृ० २८०)

वहाँ की स्त्रियाँ विशेषकर 'माँड' राग गाती हैं जिससे सम्भव है कि उक्त राग का नाम 'माड देश' के नाम पर से पड़ा हो ।

वल्ल

'माड' के सम्बन्ध में उद्धृत किये हुए घटिआले के वि० सं० ६१८ के शिलालेख के अवतरण मे 'वल्लमाड्यो,' पद में वल्ल और माड देशो के नाम समासरूप में दिये है जिससे अनुमान होता है कि ये दोनों देश एक दूसरे से मिले हुए थे । जैसलमेर के राज्य का प्राचीन नाम 'माड' था यह ऊपर बतलाया जा चुका है । जैसलमेर के राजाओ के पूर्वज भट्टिक (भाटी) देवराज का पहले इस देश पर राज्य था, ऐसा नीचे त्रवणी देश के वृतान्त में बतलाया जायगा । इसलिये अनुमान होता है कि वल्ल देश, जैसलमेर राज्य से मिले हुए उसके दक्षिण अथवा पूर्व के जोधपुर राज्य के किसी हिस्से का नाम होना चाहिये । अबतक ऐसे साधन उपस्थित नहीं हुए, जिनसे इस देश के ठीक स्थान का सन्तोष-जनक निर्णय हो सके ।

त्रवणी

जोधपुर से मिले हुए मण्डोर के प्रतिहार [पढ़िहार, परिहार] राजा बाउक के वि० सं० ८९४ के शिलालेख में 'त्रवणीवल्लदेशयोः' समासान्त पद है जिससे पाया जाता है कि त्रवणी और वल्ल देश भी परस्पर मिले हुए थे । उस लेख में उक्त राजा के पूर्वज शिलुक के वर्णन में लिखा है कि 'उसने त्रवणी और वल्ल देशो में (अपनी) सीमा स्थिर की (अर्थात् उनको अपने राज्य में मिला लिया) और वल्ल मण्डल (देश) के राजा भट्टिक देवराज को पृथ्वी पर पछाड़कर उसका छत्र छीन लिया[1]' । काव्य-मीमासा आदि अनेक ग्रंथो का कर्ता प्रसिद्ध कवि राजशेखर, जो वि० सं० ९३७ और ९७७ के बीच विद्यमान था, अपनी काव्यमीमांसा में त्रवण

---

(1) तत श्रीशिलुको जात पुत्तो दुर्व्वारिविक्रम ।
येन सीमा कृता नित्यास्य (त्र) वणीवल्लदेशयो ॥ [१८]
भट्टिकं देवराजं यो वल्लमण्डलपालक ।
निपात्य-तत्क्षण भूमौ प्राप्तवान् छ (० वाश्छ) त्रचिह्नकं ॥ [१९]
रायल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल, ई० सं० १८९४, पृ० ६। उक्त जर्नल मे उस लेख का जो सवत् छपा है वह अशुद्ध है । ऊपर दिया हुआ सवत् राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) मे रक्खे हुए मूल लेख से दिया गया है ।

देश की गणना भारत के पश्चिमी विभाग के देशों में[1] करता है और भिन्न-भिन्न देशों के लोगो से बोली जाने वाली भिन्न-भिन्न भाषाओं का वर्णन करते हुए सुराष्ट्र और त्रवण आदि के लोगो का सुन्दरता के साथ अपभ्रंश और संस्कृत का बोलना बतलाता है[2] । इसलिये त्रवणी या त्रवण देश, वल्ल से मिला हुआ, जोधपुर राज्य के दक्षिण-पश्चिमी हिस्से में, जो सुराष्ट्र (सोरठ, काठियावाड़) से उत्तर में है, होना चाहिये । यद्यपि त्रवणी देश के स्थान का निश्चयात्मक निर्णय नहीं हो सका, तो भी सम्भव है कि जोधपुर राज्य के मालाणी जिले या उससे मिले हुए किसी विभाग का वह सूचक हो ।

गुर्जर या गुर्जरत्रा

इस समय राजपूताने के दक्षिण का देश ही, जहाँ गुजराती भाषा बोली जाती है गुजरात (गुर्जर) कहलाता है जो सस्कृत गुर्जरत्रा से मिलता है, परन्तु प्राचीन काल में गुर्जर या गुर्जरत्रा देश में केवल वर्तमान गुजरात का ही नही; किन्तु जोधपुर राज्य के उत्तर से दक्षिण तक के सारे पूर्वी हिस्से का भी समावेश होता था। गुर्जरत्रा नाम का अर्थ 'गुर्जरो (गूजरो) से रक्षित' होता है इसलिये यह नाम उक्त देश पर पहले किसी समय गुर्जर (गूजर) जाति का राज्य रहने से पड़ा होगा (जैसे मेद या मेव से मेदपाट या मेवाड) । परन्तु वहाँ पर गुर्जर जाति का राज्य कब हुआ और कब तक रहा इसका अब तक कोई पता नही लगा। प्राचीन शोध के विद्वानो ने इस विषय मे जो कुछ लिखा है, वह केवल कपोल कल्पना ही है । चीनी यात्री हुएन्सांग ने अपनी यात्रा की पुस्तक 'सि-यु-कि' में मालवे (१) के पीछे क्रमशः ओचलि (१), कच्छ, वलभी आनंदपुर, सुराष्ट्र (सोरठ) और गुर्जर देशों का वर्णन किया है । गुर्जर देश के विषय में उसने लिखा है कि 'वलभी के देश से १८०० ली(३०० मील) के करीब उत्तर में जाने पर गुर्जर राज्य में पहुँचते है। यह देश अनुमान ५००० ली (८३३ मील) के घेरे में है । उसकी राजधानी—जिसको 'भीनमाल' कहते है, ३०ली (५ मील) के घेरे में है । जमीन की पैदावार और लोगों की रीत-भात सुराष्ट्र (सोरठ) वालों से मिलती हुई

(1) देवसभाया परतः पश्चाद्देश। तत्र देवसभसुराष्ट्रदशेरकत्रवण भृगुकच्छ कच्छीयानर्तार्बुदब्राह्मणवाह यवन प्रभृतयो जनपदाः (काव्यमीमासा पृ० ९४) ।

(2) सुराष्ट्रत्रवणाद्या ये पठन्त्यर्पितसौष्ठवम् ।
अपभ्रंशावदंशानि ते संस्कृतवचांस्यपि ।। (वही, पृ० ३४) ।

है । आबादी घनी है । लोग धनाढय और सम्पन्न है । वे बहुधा नास्तिक (बौद्ध धर्म को न मानने, वैदिक धर्म को माननेवाले) है । बौद्ध धर्म के अनुयायी थोड़े ही है । यहाँ एक संघाराम (बोद्धों का मठ) है, जिसमें अनुमान १०० श्रवण (बौद्ध साधु) रहते है, जो हीनयान[1] और सर्वास्तिवाद[2] निकाय के माननेवाले है । यहाँ कई दहाई देव-मन्दिर है, जिनमें भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो के लोग रहते है । राजा क्षत्रिय जाति का है । उसकी अवस्था २० वर्ष की है । वह बुद्धिमान और साहसी है। उसकी बौद्ध धर्म पर दृढ़ आस्था है और वह बुद्धिमानो का बड़ा आदर करता है[3] ।

हुएन्सांग गुर्जर देश की परिधि ८३३ मील बतलाता है जिससे पाया जाता है कि वह देश बहुत बड़ा था और उसकी लम्बाई अनुमान ३०० मील होनी चाहिये । उसकी राजधानी भीनमाल (भिल्लमाल, श्रीमाल) जोधपुर राज्य के दक्षिण में है जो गुजरात से मिला हुआ है । हुएन्सांग वहाँ के राजा को क्षणि लिखता है परन्तु उसके नाम या जाति का परिचय नहीं देता । वह ई० सन् ६४१ (वि० स० ६९८) के आसपास भीनमाल आया था, जहाँ के रहनेवाले[4] (भिल्लमालकाचार्य) ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने शक स० ५५० (वि० स० ६८५) में अर्थात् हुएन्सांग के वहाँ आने से १३ वर्ष पूर्व ब्राह्मण (ब्रह्म) स्फुट [सिद्धान्त] नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें उसने वहाँ के राजा का नाम व्याघ्रमुख और उसका वंश

---

(1) जैनो मे जैसे दो फिर्के दिगंबरी और श्वेताबरी है, वैसे ही बोद्धो मे महायान, हीनयान और मध्यमयान नाम के तीन फिर्के थे । मध्यमयान के अनुयायी वहुत कम थे और अब तो कही कोई नही रहा ।

(2) बौद्ध धर्म मे कर्मकाड के विचार से चार सम्प्रदाय या शाखा भेद है, जिनको निकाय कहते है । ये सम्प्रदाय आर्यसंघिक, आर्यस्थविर, आर्य संमति और सर्वास्तिवाद कहलाते है इनमे से प्रत्येक के अवातर भेद कई एक है ।

(3) सेम्यूअल बील, 'बुद्धिस्ट रेकर्डज् आफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड' जि० २० पृ० २६९-७० ।

(4) इंडि. ऐंटि०, जि० १७, पृ० १९२ । शंकर बालकृष्ण दीक्षित । भारतीय ज्योतिषा चा प्राचीन आणि अर्वाचीन इतिहास (मराठी), पृ० १२७ ।

चाप[1] (चापोत्कट, चावड़ा) बतलाया गया है। हुएन्सांग के समय भीनमाल का राजा व्याघ्रमुख या उसका पत्र हो। चावड़ो का राज्य भीनमाल पर कब तक रहा, इसका ठीक-ठीक अनुसंधान अब तक नहीं हुआ, परन्तु वि० सं० ७९६[2] के आसपास तक तो वे ही वहाँ के राजा थे यह

---

(1) श्रीचापवशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणा ।
पचाशत्संयुक्तैर्वर्षशतै पंचभिरतीतै (५५०) ।।७।।
ब्राह्म स्फुटसिद्धान्त सज्जनगणितगोलविप्रीत्ये ।
त्रिशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ।।८।।
(ब्रह्म स्फुटसिद्धान्त, अध्याय २४)

(2) लाट के सोलकी सामन्त पुलकेशी (च्यवनिजनाश्रय) का एक दानपत्र कलचुरि सवत् ४९० (वि० सं० ७९६) का मिला है (विएना ओरिएंटल काग्रेस का कार्य-विवरण, आर्यन् सेक्शन, पृ० २३०) जिसमे उसके विषय मे लिखा है कि 'ताजिको' (अरबो, मुसलमानो) ने तलवार के बल से सैंधव (सिन्ध), कच्छेल्ल (कच्छ), सौराष्ट्र (सौरठ), चावोटक (चापोत्कट, चाप, चावडे), मौर्य (मोरी), गुर्जर आदि के राज्यो को नष्ट कर दक्षिण के समस्त राजाओ को जीतने की इच्छा से प्रथम नवसारिका (नवसारी) पर आक्रमण किया, उस समय घोर सग्राम कर उस (पुलकेशी) ने ताजिको को विजय किया। उस पर शौर्य के अनुरागी राजा वल्लभ (उसके स्वामी) ने उसको चार खिताब दिए। अब तक के शोध से चावडो (चावटोक, चापोत्कट चाप) का तीन जगह अधिकार होने का पता चलता है। पहला भीनमाल मे, दूसरा अनहिलवाडे (पाटण) पर और बढ़वाण (काठियावाड मे) पर। भीनमाल पर तो चावडो का अधिकार वि० स० ६८५ के पूर्व से चला आता था जैसा कि ब्रह्मगुप्त के कथन से पाया जाता है। अनहिलवाडे (पाटण) का राज्य चावडा वनराज ने वि० सं० ८२१ मे अनहिलवाडा बसाकर स्थापित किया। बढ़वाण के चाप (चावडा) वंशी सामन्त धरणीवराह का हड्डाला से मिला हुआ दानपत्र शक सवत् ८३६ (वि० सं० ९७१) का है जिसमें उक्त राजा के पूर्व के चार नाम और हैं। उनमें से सब से पहले (विक्रमार्क) का वि० सं० ८९१ के आसपास विद्यमान होना स्थिर होता है। पुलकेशी के ताम्रपत्र के चावोटक (चावडों) का संबंध इन सौराष्ट्र के चावडो से है भी नही, क्योकि उसमे सौराष्ट्र की विजय के बाद चावडो के राज्य का नष्ट करना लिखा है। मुसलमानो की ऊपर लिखी हुई चढ़ाई वि० सं० ७८८–७९६ के बीच किसी समय हुई थी क्योकि पुलकेशी अपने बडे भाई मंगलराज्य के पीछे उसकी जागीर का

निश्चित है । वि० सं० ७६६ और ८६५ के बीच किसी समय चावड़ो से रघुवन्शी प्रतिहारो (पड़िहारो, परिहारो) ने गुर्जर देश का राज्य छीन लिया । फिर उन्होने अपने बाहुबल से कन्नौज का प्रबल राज्य अपने राज्य में मिला लिया जिसके पीछे उनकी राजधानी कन्नौज हो गई । इससे उनको कन्नौज के प्रतिहार भी कहते हैं । चावड़ो के समय गुर्जर देश कहाँ से कहाँ तक था, इसका कोई उल्लेख (सिवाय हुएन्तसग के उपर्युक्त कथन के) नही मिलता । प्रतिहार राजा भोजदेव (पहले) के वि० स० ९०० के दानपत्र मे लिखा है कि 'उसने गुर्जरत्राभूमि (देश) के डेड्वानक विषय (जिले) का सिवा गाव[1] दान किया' । यह दानपत्र जोधपुर राज्य के डीडवाना जिले के सिवा गाँव के एक टूटे हुए मदिर से मिला था । इस ताम्रपत्र का डेंडवानक जिला, जोधपुर राज्य के उत्तरी-पूर्वी हिस्से का नाम डीडवाना है और सीवा गाव डीडवाना से ७ मील पर का सेवा गॉव है । कलिजर से मिले हुए नवी शताब्दी के आसपास के एक शिलालेख में गुर्जरत्रा मण्डल (देश) के मगलानक (गॉव) से निकले हुए[2] जेडुक के बेटे देद्दक की बनाई हुई मडपिका के प्रसंग में उसकी स्त्री लक्ष्मी के द्वारा उमा महेश्वर के पट्ट की प्रतिष्ठा किए जाने का उल्लेख है । मगलानक जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग का मंगलाना गॉव है जो मारोठ से १६ मील पश्चिम में और डींडवाने से कुछ ही दूरी पर है । इन दोनो लेखो से पाया जाता ह कि गुर्जरत्रा या गुर्जर देश की उत्तरी सीमा जोधपुर राज्य की उत्तरी सीमा के पास तक थी ।

जिस समय प्रतिहारो का राज्य गुर्जर देश तथा कन्नौज पर रहा

स्वामी हुआ था और मगलराज का दानपत्र शक सवत् ६५३ (वि० सं० ७८८) का मिला है (इंडि० एटि०, जि० १३, पृ० ७५) । ऐसी दशा मे मुसलमानो की उक्त चढ़ाई के समय चावडे भीनमाल के अतिरिक्त ओर कही नही थे ।

(1) गुर्ज्जरत्राभूमौ डेण्ड्वानकविषयसम्व(म्ब)द्धसिवाग्रामाग्रहारे० (एपि० इंडि०, जि० ५, पृ० २११) । मूल मे सवत् अशुद्ध छपा है । हमने राजपूताना म्यूज़िअम् (अजमेर) मे रक्खे हुए मूल ताम्रपत्र से ऊपर संवत् दिया है ।

(2) श्रीमद्गुर्ज्जरत्रामण्डलान्त पातिमगलानकविनिर्गत० (वही, पृ० २१०)

उस समय दक्षिण (कौंकन) पर राष्ट्रकूटो (राठौड़ो) का राज्य था। राठौड़ों के राज्य की उत्तरी सीमा गुर्जर देश की दक्षिणी सीमा से मिली हुई थी और ये दोनों पडोसी एक दूसरे से बराबर लडते रहे[1]।

---

(1) दक्षिण के राठौड राजा ध्रुवराज के पुत्र गोविन्दराज (तीसरे) के गाँव (नासिक जिले के डिडोरी तालुके मे) से मिले हुए शक सवत् ७३० (वि० सं० ८६५) के दानपत्र मे उसके पिता ध्रुवराज के विषय म लिखा है कि 'गौडराज्य की लक्ष्मी को सहसा अपने हाथ करने पर मत्त बने हुए वत्सराज को उस (ध्रुवराज) ने अपने अजेय सैन्य से मरू (मारवाड) के मध्य मे भगाया और गौड के राजा से जो दो श्वेत छत्र उस (वत्सराज) ने छीने थे, वे उससे छीन लिये, इतना ही नही किन्तु साथ ही उसके दिगंतव्यापी यश को भी, (हेलास्वीकृतगौडराज्यकमलामत्त-प्रवेश्याचिराद्दुर्मार्गं मरुमध्यमप्रतिव(ब)लैर्यो वत्सरो(रा)ज व(ब) लै.। गौडीयं शरदिन्दुपादधवल छत्रद्वय को(के)वल तस्माघ्राहृत तद्य-शोपि ककुभा प्राते स्थितं तत्क्षणात्-इडि० एंटि०, जि० ११, पृ० १५७। यही श्लोक उक्त गोविदराज तीसरे के राधनपुर से मिले हुए शक सं० ७३० (वि० सं० ८६५) के दानपत्र मे उसके पिता ध्रुवराज के संबंध मे मिलता है—एपि० इंडि०, जि० ६, पृ० २४३। लाट देश पर शासन करने वाले राठौड़ सामन्त कर्कराज के बडौदा से मिले हुए शक सं० ७३४ (वि० सं० ८६९) के दानपत्र मे उक्त कर्कराज के विषय मे लिखा है कि-उसका भुज पिटे हुए मालव (मालवा के राजा) की रक्षा के निमित्त गौड (बिहार) और बंग (बंगाल) के राजाओ को जीतकर दुष्ट बने हुए गुर्जरेश्वर (गुर्जर देश के राजा) के लिये अर्गल (रोक, आड) सा हो गया' अर्थात् उसने मालवा के राजा को गुर्जर देश के राजा से बचाया (गौडेन्द्रवंगपतिनिर्ज्जयदुर्व्विदग्धसद्गूर्ज्जरेश्वरदिगर्गलता च यस्य। नीत्वा-भुजं विहतमालवरक्षणार्थं स्वामी तथान्यमपि राज्यछ(फ)लानि भुवते-इंडि० एंटि०, जि० १२, पृ० १२ पृ० १६०)। ऊपर के दोनो ताम्रपत्रो मे गौडदेश की राज्यलक्ष्मी छीननेवाले राजा का नाम वत्सराज दिया है और उसका मारवाड मे भागना लिखा है, जिससे पाया जाता है कि वह मारवाड का राजा था। तीसरे ताम्रपत्र मे उसका गौड और बंग के राजाओ को जीतकर दुष्ट बनना लिखने के साथ उसको गूर्जरेश्वर अर्थात् गुर्जर देश का राजा कहा है। वत्सराज प्रतिहार वंश का राजा और गुर्जर देश का स्वामी था और सभव है कि उसीने चावडो से भीनमाल का राज्य छीना हो। ग्वालियर से मिले हुए प्रतिहार राजा भोज के समय के शिलालेख

राठौड़ो का राज्य लाट देश तक ही था,इसलिये गुर्जर देश के प्रतिहारो के राज्य की दक्षिणी सीमा लाट[1] की उत्तरी सीमा अर्थात् सेढ़ी नदी तक होनी चाहिये । ऐसी दशा मे जोधपुर राज्य की उत्तरी सीमा से लगाकर दक्षिणी सीमा तक का सारा पूर्वी हिस्सा तथा उसके दक्षिण का सेढी नदी तक का वर्तमान गुजरात का हिस्सा गुर्जर देश कहलाता था, परन्तु अब जोधपुर का कोई भी अश गुजरात में नहीं गिना जाता । अब तो राजपूताने के दक्षिण के पालनपुर राज्य की उत्तरी सीमा से लगाकर दमण (पुर्तगालवालों का) तक का सारा प्रदेश, तथा काठियावाड और कच्छ, गुजरात मे गिना जाता है, जहाँ गुजराती भाषा बोली जाती है ।

मालव (मालवा)

मालव जाति के लोगो ने प्राचीन अवती[2] और आकर[3] देशो पर अपना अधिकार जमाया, तब से उनके अधीन के उक्त देशो का सम्मिलित

मे वत्सराज का बलपूर्वक भिडी के वंश का साम्राज्य छीनना लिखा है (आर्किआलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिआ, ई० स० १९०३–४, पृ० २८०–१)। शायद भिडी गुर्जर देश के चावडो का मूल पुरुष हो। इसी तरह दक्षिण के राठौडो तथा प्रतिहारो के परस्पर लडने के और भी उदाहरण मिलते है ।

(1) लाट देश की उत्तरी सीमा बम्बई हाते के खेडा जिले में बहनेवाली सेढी नदी तक और दक्षिणी सीमा तापी नदी से कुछ दक्षिण तक होना ताम्रपत्रादि से पाया जाता है । सामान्य रूप से मही और तापी नदियो के बीच का देश लाट माना जाता है (देशो की सीमाएँ बढती घटती रही है) ।

(2) मालवे का पश्चिमी हिस्सा जिसकी राजधानी उज्जैन (उज्जयिनी थी) ।

(3) मालवे का पूर्वी हिस्सा । महाक्षत्रप रूद्रदामन् के शक संवत ७२ (वि० संवत् २०७) से कुछ ही बाद के जूनागढ (काठियावाड मे) के लेख मे 'पूर्वापराकरावती' लिखा है । कालिदास अपने मेघदूत मे अवंती से पूर्व के देश को दशार्ण कहता है और उसकी राजधानी विदिशा (भेलसा-ग्वालियर राज्य मे) होना बतलाता है । सम्भव है कि आकर के अन्तर्गत दशार्ण देश हो ।

नाम मालव (मालवा) हुआ। राजपूताने के परताबगढ, कोटा और झालावाड़ राज्य तथा टोक[1] राज्य के छबडा, पिरावा और सीरोज[2] के इलाके पहले मालव देश के अन्तर्गत थे, जैसा कि वहाँ से मिलनेवाले शिलालेखों से पाया जाता है।

ना. प्र प, काशी, (नवीन सस्करण),
भाग २, सख्या ३ स० १९७८वि०

---

(1) राजपूताने मे केवल टोक का राज्य ही ऐसा है जिसके अलग अलग हिस्से एक दूसरे से मिले हुए नही है। टोक (खास) और अलीगढ के जिले तो प्राचीन काल मे सपादलक्ष के अन्तर्गत थे। नीबाहेडा मेदपाट (मेवाड) का हिस्सा था और छबडा, पिरावा आदि मालव के अन्तर्गत थे।

(2) परताबगढ, कोटा और झालावाड के राज्यो से जो शिलालेख मिलते है, उनसे उन राज्यो का पहले मालवे के अन्तर्गत होना पाया जाता है। कोटे का थोडा सा उत्तरी हिस्सा मालवा के परमारो के पडोसी चौहानो के अधिकार मे था और सपादलक्ष मे गिना जाता था।

प्रकरण दूसरा



इतिहास और पुरातत्त्व

१-भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास[1] की सामग्री ।

यह कहना अनुचित न होगा कि शृङ्खलाबद्ध लिखा हुआ भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास नहीं मिलता, और ईसवी सन् की १८वी शताब्दी के मध्य तक उसके लिये सामग्री एकत्रित करने का उद्योग भी हुआ हो-ऐसा पाया नहीं जाता। ई० स० १७८४ में सर विलिअम जोन्स के यत्न से एशिया खण्ड के इतिहास, साहित्य आदि विषयो की शोध के लिये 'एशिआटिक् सोसाइटी' नाम की सभा कलकत्ते मे कायम हुई, तभी से हमारे यहाँ के प्राचीन इतिहास की सामग्री की खोज और उसके सग्रह का काम शुरु हुआ, और अब तक अनेक विद्वानो के श्रम तथा गवर्नमेण्ट की उदार सहायता से बहुत कुछ सामग्री उपलब्ध हो गई। वह किस प्रकार की है और यहाँ के प्राचीन इतिहास के लिये कहाँ तक उपयोगी हो सकती है यह बात बतलाने का प्रयत्न इस लेख मे किया जाता है।

उक्त सामग्री को हम नीचे लिखे हुए चार मुख्य विभागो में बाँट सकते है,–

(क)–हमारे यहाँ की प्राचीन पुस्तकें।

(ख)–यूरोप, चीन, तिब्बत, और सीलोन वालो की तथा मुसलमानो की लिखी हुई प्राचीन पुस्तके।

(ग)–प्राचीन शिला लेख और ताम्रपत्र।

(घ)–प्राचीन सिक्के मुद्रा तथा शिल्प।

(क) हमारे यहाँ की प्राचीन पुस्तकें।

(अ)—पुराण-जिन प्राचीन राजाओं के नाम, आज तक के मिले हुए प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्के या विदेशियों के लिखे हुए प्राचीन ग्रन्थो मे नही मिलते, उनकी शृङ्खलाबद्ध वंशावलियाँ कितने एक पुराणों में मिल जाती है, अतएव हमारे यहाँ के विशेष प्राचीन इतिहास के लिये तो केवल

(1) 'प्राचीन इतिहास' मे हमारा अभिप्राय बहुत प्राचीन काल मे लगाकर मुसल्मानो के हाथ मे हिन्दुराज्यो के अस्त होने, अथवा उनकी स्वतन्त्रता नष्ट होने के समय तक के इतिहास से है।

पुराण ही सहायक हो सकते हैं। १८ पुराणो मे से वायु, मत्स्य, विष्णु, ब्रह्मांड और श्रीमद्भागवत ये पाँच इतिहास के लिये विशेष उपयोगी हैं[1] क्योकि इनमें सूर्य, चन्द्र, यादव, शिशुनाग, नंद, मौर्य, सुग, काण्व, आध्रभृत्य आदि वंशो के राजाओ की शृङ्खलाबद्ध वंशावलियाँ तथा किसी-किसी का कुछ चरित्र भी मिल जाता है, और शिशुनाग नद, मौर्य, सुग, कण्व तथा आध्रभृत्य वंश के राजाओ में से बहुधा प्रत्येक का राजत्वकाल तथा ई० स० की चौथी-शताब्दी में राज्य करने वाले प्रतापी गुप्तवंश तक के राजवशो का पता भी इनसे लगता है, परन्तु बड़ी त्रुटि यह है कि कोई साल-संवत् इनमें नहीं दिया और भिन्न२ प्रदेशो पर राज्य करने वाले कई समकालीन राजवंशों का एक दूसरे के बाद होना लिख दिया है, ऐसी स्थिति मे पुराणो मे दिये हुए समस्त राजाओ का राज्य-समय ठीक-ठीक निश्चय करना अशक्य है। ये सब पुराण कई बार छप चुके है, परन्तु उत्तमता के साथ छपे हुए थोडे ही है, इसलिये 'हार्वर्ड ओरीएंटल् सीरीज' मे छपे हुए सस्कृत ग्रन्थो की शैली पर इनका संपादन होना इतिहास के लिये बहुत आवश्यक है।

(आ)—रामायण और महाभारत—इनमें रघु और कुरु वंशो का वृत्तान्त, जो उपर्युक्त पुराणो में संक्षेप से लिखा हुआ है, विस्तार से मिलता है, और इनके लिखे जाने के समय की इस देश की दशा, लोगो की सामान्य स्थित, युद्ध-प्रणाली आदि कई आवश्यकीय बातो का पता भी इनसे भली भाँति लगता है। ये कई बार छप चुके है।

(इ)—राजतरंगिणी—ठीक ऐतिहासिक रीति से लिखा हुआ हमारे यहाँ केवल यही एक ग्रन्थ है, जिसमे काश्मीर का इतिहास है। इसका प्रथम खण्ड अमात्य चंपक के पुत्र कल्हण पडित ने ई० स० ११४८ में लिखा था, जिसमें गोमंद (प्रथम) से लगाकर सुस्सल के पुत्र जयसिह तक का वृत्तान्त है। यह पुस्तक इतिहास के लिये बडी ही उपयोगी है। कल्हण ने वहाँ के प्रथम राजा गोनंद का भारत युद्ध के समय अर्थात् कलियुग सवत् ६५३ (ई० सं० से २४४८ वर्ष पूर्व) में विद्यमान होना मान लिया है (जो वास्तव में उस समय से बहुत पीछे हुआ था), जिससे समय की पूर्ति के लिये उस (कल्हण) को कितने ही राजाओं का राज्य समय मनमाना अधिक धरना पडा, यहाँ तक कि रणादित्य (तुंजीन तीसरे) का तो उसने ३०० वर्ष राज्य करना लिखदिया है। कल्हण के लेखानुसार प्रसिद्ध मौर्य वंशी राजा अशोक का समय उसके वास्तविक समय से करीब १००० वर्ष पूर्व और मिहिरकुल (हूण) का ११०० से अधिक वर्ष पूर्व

(1) ई० स० १८९७ के बम्बई (वेकटेश्वर प्रेस) के छपे हुए भविष्य महापुराण के प्रतिसर्ग पर्व मे कलकत्ते मे अग्रेजो का राज्य स्थापित होने और

मानना पडता है। ऐसी दशा में कर्कोटिक वश के पूर्व के राजाओ का जो राजत्वकाल उसने माना है, वह विश्वास योग्य नही माना जा सकता। भारतवर्ष के दूसरे प्रदेश वालो की अपेक्षा काश्मीर वालो में इतिहास का प्रेम विशेष रहा, जिससे उन्होने अपने देश का शृङ्खलाबद्ध इतिहास लिख रक्खा है। ई० स० ११४२ में जोनराजB नामक पडित ने राजतरगिणी का दूसरा खण्ड लिखा, जिसमे जहा से कल्हण ने छोडा था, वहाँ से प्रारम्भ कर अपने समय तक का उसने इतिहास दिया है। इस (दूसरे खण्ड) । में जयसिह से लगा कर कोटाराणी तक का (जिसके साथ कश्मीर के हिन्दू राज्य की समाप्ति हुई) हिन्दू राज कर्त्ताओ का और उसके बाद मुसलमानो का वृत्तान्त है। जोनराज के बाद उसके शिष्य श्रीवर पडित ने ई०स० १४७७ मे राजतरगिणी का तीसरा खण्ड लिखा और उसके पीछे प्राज्यभट्ट ने चौथा खण्ड लिखकर अकबर के कश्मीर विजय के समय तक का वृत्तान्त पूर्ण कर दिया। राजतरगिणी के ये चारो खण्ड प्रथम कलकत्ते में एशिआटिक् सोसाइटी ने छपवाए थे, जिसके बाद ई० स० १८९२ मे डाक्टर स्टीन (M. A. Stein PH. D) ने कल्हण रचित प्रथम खड को बडी शुद्धता के साथ बम्बई में छपवाया, फिर पं० दुर्गाप्रसादजी (महामहोपाध्याय) जयपुर वाले ने तथा (उनके देहान्त के बाद) प्रोफेसर पीटर्सन ने ये चारो खण्ड बम्बई की सस्कृत सीरीज मे प्रकाशित किए।

(ई) -ऐतिहासिक काव्य आदि—पुराणो में ई० स० की तीसरी शताब्दी के क़रीब तक राज्य करने वाले राजवशो की वशावलियाँ मिलती है, जिसके पीछे ई० स० की छठी शताब्दी तक के राजाओ का हमारे यहाँ कुछ भी लिखित इतिहास नही मिलता। फिर ई० स० की सातवी शताब्दी में तथा उसके बाद समय-समय पर कितने एक ऐतिहासिक काव्य, नाटक, चरित आदि के ग्रन्थ लिखे गए जिनसे भी कुछ२ ऐतिहासिक वृत्तान्त सग्रह किया जा सकता है, ऐसी पुस्तको में से नीचे लिखे हुए ग्रन्थ प्रसिद्ध है:—

(१)—हर्ष चरित—यह एक गद्य काव्य है, जिसको प्रसिद्ध विद्वान बाणभट्ट ने, जो कन्नौज और थाणेश्वर के प्रसिद्ध वैशवशी राजा हर्ष (हर्षवर्द्धन) का आश्रित था, ई० स० की सातवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रचा था। इस मे उक्त

अष्टकौशल्या (पार्ल्यामेंट) से राज्य प्रबन्ध होने का भी वर्णन दिया है, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो वह सारा पर्व थोडे ही समय का बना हुआ प्रतीत होता है। उसके रचयिताने उपर्युक्त पुराणो से जो वृत्तान्त उद्धृत किया है, उसको भी अपनी तरफ से बढा-घटाकर अविश्वसनीय बना दिया है। अतएव प्राचीन इतिहास के लिये वह सर्ग निरुपयोगी है।

वंश के राजा प्रभाकर उसके पुत्र राज्यवर्द्धन तथा हर्ष (हर्षवर्द्धन) और पुत्री राज्श्री का वृत्तान्त है। यह पुस्तक मौखरी वंशियों के प्राचीन इतिहास में भी कुछ सहायता देती है, क्योंकि राज्यश्री का विवाह मोखरी राजा अवन्तिवर्मा के ज्येष्ठ पुत्र ग्रहवर्मा के साथ होने का तथा उस (ग्रहवर्मा) के मारे जाने का वृत्तान्त इसी पुस्तक से मिलता है। इस पुस्तक मे वाणभट्ट ने सुनी हुई नही किन्तु अपने सामहने की घटनाओं का वर्णन किया है। इसमें हर्ष के जन्म का मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र, और समय तक दिया है, परन्तु संवत् नहीं दिया। यह पुस्तक बम्बई (निर्णयसागर प्रेस) में छप चुकी है।

(२) गौडवहो-यह प्राकृत भाषा का काव्य है, जिसकी रचना ई०स० की आठवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे कवि वाक्पतिराज ने की थी, जो कन्नौज के (मोखरी) राजा यशोवर्मा का आश्रित था। इस पुस्तक मे उपर्युक्त राजा यशोवर्मा के गौड देश पर चढाई करने तथा वहाँ के राजा को मारने का वर्णन है। वाक्पतिराज ने ऐतिहासिक घटनाओ का उल्लेख करने मे यहाँ तक बेपरवाही की है कि यशोवर्मा के पिता के वंश तक का भी नाम नही दिया। ऐसी दशा में यह काव्य बड़ा होने पर भी इतिहास मे बहुत कम सहायता देता है। यह पुस्तक बम्बई की सस्कृत सीरीज में छपी है।

(३) मुद्रा राक्षस नाटक-इस नाटक मे मौर्य वंशी राजा चन्द्रगुप्त के राज्य पाने का वृत्तान्त है। इसको ऐतिहासिक नाटक कहे तो अनुचित न होगा। कश्मीर के राजा अवतिवर्मा के समय ई० स० ८६० के करीब विशाखदत्त पंडित ने गुणाढय रचित वृहत्कथा के आधार पर इसे रचा था। यह बम्बई की सस्कृत सीरीज मे छपा है।

(४) नवसाहसाकचरित—इस काव्य मे वाक्पतिराज (प्रथम) से सिन्धुराज तक के मालवा के परमार राजाओं की नामावली और थोडा-सा ऐतिहासिक वृत्तान्त है। सिन्धुराज (नवसाहसांक) के राज्य-समय में पद्मगुप्त परिमल कवि ने ई०स० १००० के करीब इस पुस्तक की रचना की थी। पुस्तक वृहत् होने पर भी इसमें ऐतिहासिक वृत्तान्त बहुत थोडा है। यह बम्बई की सस्कृत सीरीज में छप गई है।

(५) विक्रमाङ्कदेवचरित-इस काव्य मे तैलप से लगाकर विक्रमादित्य (छठें) तक का कल्याण (निज़ाम राज्य में) के सोलंकियों का वृत्तान्त विस्तार के साथ मिलता है। ई०स० की ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त के आस-पास प्रसिद्ध कश्मीरी पंडित कल्हण ने इसे रचा था। यह बम्बई की संस्कृत सीरीज मे छपा है।

(६) राम चरित-इस काव्य में बंगाल के पालवंशी राजा रामपाल का

वृत्तान्त है । ई० स० की बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के आस-पास उक्त रामपाल के साधिविग्रहिक प्रजापतिनंदी के पुत्र सध्याकरनदी ने इसको बनाया था। यह काव्य द्वयर्थी है, जिससे उसका आशय रामपाल एव रघुकुलतिलक रामचन्द्र इन दोनो के सम्बन्ध में घट सकता है । अब तक यह छपा नही है ।

(७) द्वयाश्रयकाव्य-प्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्र (हेमाचार्य) ने ई० स० १२६० के आसपास यह काव्य रचा था जिसमें उक्त आचार्य के रचे हुए सिद्ध हैम नामक संस्कृत व्याकरण के सूत्रो के क्रमश उदाहरण और गुजरात के सोलकी राजा मूलराज से लगाकर सिद्धराज (जयसिंह) तक का इतिहास ये दोनो आशय होने से ही इसका नाम द्वयाश्रय रक्खा गया है । यह भट्टी काव्य की शैली की पुस्तक है और अब तक छपी नही है ।

(८) कुमारपाल चरित्र—यह प्राकृत भाषा का काव्य है, जिसकी रचना उपर्युक्त हेमचन्द्र ने ई॰ स० ११६० के करीब की थी । इसमें उसके रचे हुए प्राकृत व्याकरण के सूत्रो के उदाहरण और गुजरात के सोलकी राजा कुमारपाल का इतिहास है । यह बबई की सस्कृत सीरीज में छप चुका है ।

(९) पृथ्वीराज विजय-अजमेर और दिल्ली के प्रसिद्ध चौहान राजा पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन गोरी पर विजय प्राप्त की, जिसके स्मरणार्थ यह काव्य उसके राजपडित जयानक ने ई०स० ११९० में रचा था । चौहानो के प्राचीन इतिहास के लिये यह काव्य बहुत उपयोगी है । क्योकि इसमें चाहमान से लगाकर पृथ्वीराज तक की शुद्धवशावली (जो चौहानो के भिन्न-भिन्न शिलालेखो से मिलने वाली वशावली के अनुसार ही हैं) तथा कुछ-कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त भी है । राजतरंगिणी के द्वितीय खंड के कर्त्ता जोनराज की इस पर टीका भी है, यह पुस्तक अभी छपी नहीं है ।

(१०) कीर्त्तिकौमुदी—इस काव्य को गुजरात के सोलंकियो के पुरोहित सोमेश्वर ने ई० स० १२२५ के करीब रचा था, जिसमें अणहिलवाडे (अण-हिलपुर-पाटण) में राज्य करने वाले सोलकियो का मूलराज से लगाकर भीम-देव (दूसरे) तक का, तथा धोलका में राज्य करने वाले अर्णोराज से वीर धवल तक के बघेल शाखा के सोलकियों का सक्षिप्त वृत्तान्त और वीर धवल के प्रसिद्ध मन्त्री वस्तुपाल का विस्तृतचरित है । यह काव्य बबई की सस्कृत सीरीज में छपा है ।

(११) सुकृत संकीर्तन—इस काव्य को ई० स० १२२८ के करीब लवर्णासह के पुत्र अरिसिंह ने बनाया था, जिसमें अणहिलवाडे को बसाने वाले राजा वनराज से भूभट (सामतसिंह) तक के चावडो की वंशावली,

एवं मूलराज से भीमदेव (दूसरे) तक का अणहिलवाडे के सोलंकियों का तथा अर्णोराज से वीरधवल तक धोलका के बघेलों (सोलकियों) का संक्षिप्त चरित है, यह काव्य अब तक छपा नही है ।

(१२) प्रबंधचिंतामणि—ई० स० १३०५ में जैन आचार्य मेरूतुंग ने इस पुस्तक को गद्य[1] में रचना की थी, जिसमें गुजरात पर राज्य करने वाले चावडों तथा सोलंकियों के इतिहास के अतिरिक्त विक्रम, कालिदास, सिद्धसेन-दिवाकर, सालिवाहन, लाखाक (कच्छ [का] राजा लाखा फूलाडी [णी]), मुंज, भोज, राजशेखर, माघ, धनपाल, सीतापंडिता, मानतुंगाचार्य, मंत्री साँतू, देवसूरि, आभड़, माँगू, झाला, जयचन्द्र, बाहड (वाग्भट), सोलाक, आँबड़, हेमचन्द्र, आम्रभट, उदयचन्द्र, वृहस्पतिगंड, वामराशि, रामचन्द्र, वस्तुपाल, तेजपाल, नन्द, शीलादित्य, रक, मल्लवादी, गोवर्द्धन, लक्ष्मणसेन, उमापतिधर, जगद्देव (परमर्दि), पृथ्वीराज, वराहमिहिर, नागार्जुन भर्तृहरी, वाग्भट वैद्य आदि के प्रबन्ध है । मेरूतुंग ने विशेषकर सुनी हुई बातें लिखी है, अतएव कई स्थलो में उनका लिखना स्वीकार योग्य नही है । गुजरात के चावड़ा राजाओ का जो राजत्वकाल, उसने इस पुस्तक में दिया था, वह पीछे से उसको भी अशुद्ध प्रतीत हुआ, जिससे कुछ समय के पश्चात् जब उसने विचार श्रेणी नामक दूसरी छोटी-सी पुस्तक रची, उस समय उसको शुद्ध किया । शुद्ध इतिहास के अभाव की दशा में यह पुस्तक कुछ उपयोगी हो सकती है, परन्तु इसमें कितने ही स्थलों पर आधुनिक शोध के अनुसार नवीन टिप्पण करने की बडी आवश्यक्ता है, यह पुस्तक बंबई में छपी है ।

(१३) चतुर्विंशति प्रबन्ध (प्रबन्ध कोश)—ई० स० १२४० में राजशेखर सूरि ने इस गद्य ग्रन्थ को देहली में रचा था, जिसमें भद्रबाहु, आर्यनंदिल, जीवदेवसूरि, खपुटाचार्य, पादलिप्ताचार्य, वृद्धवादी और सिद्धसेन, मल्लवादी, हरिभद्र, बप्पभट्टि, हेमसूरि (हेमचन्द्र), हर्षकवि, हरिहरि (र) कवि, अमर कवि, मदनकीर्ति, सातवाहन बंकचूल, विक्रमादित्य, नागार्जुन, वत्सराज (उदयन), लक्ष्मणसेन, मदनवर्मा, रत्नश्रावक, आभड़ और वस्तुपाल-ये २४ प्रबन्ध है । राजशेखर ने भी मेरूतुंग की नांईं विशेष कर सुनी हुई बातें ही लिखी है, जिनसे भी कुछ-कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त मिल आता है । यह पुस्तक अब तक छपी नही है ।

---

(1) प्रबन्ध चिंतामणि पुस्तक अधिकतर गद्य ही मे है, परन्तु बीच में प्रसंगवशात् कही-कही पद्य भी आ गया है ।

(१४) कुमारपाल चरित—इस गद्य ग्रन्थ को ई० स० १४३५ मे जिन मडनोपाध्याय ने रचा था, जिसमें ३६ राजवंशो की नामावली (जैसी कि उसको मिल सकी), वनराज से सामन्तसिंह तक के गुजरात के चावड़ाओ की वंशावली और मूलराज से कुमारपाल तक का गुजरात के सोलंकियो का इतिहास है । इसमें कुमारपाल का वृत्तान्त बहुत विस्तार के साथ लिखा है; जो अतिशयोक्ति तथा धर्म संबंधी विशेष आग्रह से खाली नही है । यह पुस्तक अब तक छपी नही है ।

(१५) कुमारपाल चरित—जयसिंह सूरि ने ई० स० १३६५ में इस काव्य की रचना की थी, जिसमें मूलराज से कुमारपाल तक का वृतांत है। यह काव्य छपा नहीं है ।

(१६) कुमारपाल चरित—इस काव्य का रचयिता रत्नसेन सूरि का शिष्य चारित्रसुन्दर गणि है इसमें मूलराज से लगाकर कुमारपाल तक का सोलकियों का इतिहास है । इसकी रचना का समय ज्ञात नही हुआ, परन्तु ई० स० की १४वी शताब्दी के आस-पास इसका बनना अनुमान किया जा सकता है । अब तक यह पुस्तक छपी नहीं है ।

(१७) वस्तुपाल चरित्र—इस काव्य को ई० स० १४४० में जिन-हर्ष गणि ने बनाया था, जिसमें मूलराज से भीमदेव (दूसरे) तक तथा अर्णो-राज से वीरधवल तक का सोलंकियो का इतिहास, एवं मंत्री वस्तुपाल का विस्तृत वृतान्त है । यह काव्य अब तक छपा नही है ।

(१८) हंमीर महाकाव्य—इस काव्य में चाहमान से लगाकर प्रसिद्ध हंमीर (रणथभौर के राजा) तक की चौहानो की वंशावली तथा कुछ ऐतिहासिक वृतान्त है । यह काव्य चौहानों के इतिहास के लिये पृथ्वीराज विजय जैसा तो उपयोगी नही है, तो भी इसमें बहुत से नाम शुद्ध है और कितना एक वृतान्त भी सही है । ग्वालियर के तंवरवंशी राजा वीरम के दरबार में रहनेवाले जैन कवि नयचन्द्र सूरि ने ई० स० की १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ के आस-पास इसको रचा था, यह बम्बई में छप चुका है।

(१९) बल्लाल चरित—इस काव्य में बंगाल के सेनवंशी राजाओं की उत्पत्ति, हेमन्तसेन से बल्लालसेन तक वंशावली तथा बल्लालसेन का वृत्तान्त है । इस पुस्तक को बल्लालसेन के आश्रित अनंतभट्ट के वंशज आनन्दभट्ट ने नवद्वीप (नदिया) के राजा बुद्धिमंतखाँ के समय में ई० सं० १५११ में रचा था । उसने सुनी हुई बातों के आधार पर

नही, किन्तु सिंहगिरि रचित व्यास पुराण,[1] शरणदत्त कृत बल्लाल-चरित तथा काजीदास नेदी की जय मगल गाथा के आधार पर इस काव्य की रचना की थी। यह पुस्तक एशियाटिक सोसाइटी बगाल की बिबलि-आथिक इडिका नामक सीरीज में छप चुकी है।

(२०) मडलीक काव्य—इसमे गिरनार (काठियावाड) के चूडासमा (यादव) राजा मडलीक का चरित तथा उसके पूर्व पुरुषो मे से खगार, जयसिंह, मोकलसिंह, मिलिग, महीपाल आदि का कुछ-कुछ वृत्तान्त है। ई० स० की १५वी शताब्दी के अन्त के आस-पास गंगाधर कवि ने इसे बनाया था। अब तक यह छपा नही है।

(उ) प्रासंगिक वृत्तान्त—भिन्न-भिन्न विषयो के कितने ही प्राचीन पुस्तको मे कही प्रसगवशात् और कही उदाहरण के निमित्त के कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त मिल जाते है, और कई काव्य, कथा आदि की पुस्तकों में ऐतिहासिक पुरुषो के नाम तथा उनका कुछ हाल भी मि जाता है। ऐसे साधनो मे से प्राप्त होने वाली ऐतिहासिक घटनाओ का ब्योरा इस छोटे से लेख में देना अशक्य है, तो भी उनसे कैसी-कैसी उपयोगी बातो का पता लगता है, यह बतलाने के लिए थोडे से उदाहरण नीचे दिए जाते है—

पतजलि के महाभाष्य से द्रव्य की लालसा के कारण मौर्यों द्वारा प्रतिमा बनाने और साकेत (अयोध्या) तथा मध्यमिका[2] पर यवनो (यूनानियो) के आक्रमण करने का पता लगता है। वात्स्यायन काम सूत्र मे कुंतलदेश के राजा शातकर्णि शातवाहन के हाथ से क्रीडा प्रसग मे उसकी राणी मलयवती की मृत्यु होना लिखा मिलता है। मृच्छकटिक नाटक का कर्त्ता, शूद्रक राजा का १०० वर्ष की अवस्था में अ.ग में बैठकर जल मरना बतलाता है। अद्भतसागर मे बगाल के सेनवशी राजा बल्लाल सेन का अपनी रानी सहित गंगा-यमुना के सगम में डूबकर (वृद्धावस्था मे) शरीरान्त करना पाया जाता है। लेख-पचाशिका के कर्ता ने अपनी पुस्तक में उस संधिपत्र की पूरी नकल दी है, जो वि० स० १२८८ और

(१) ये तीनो पुस्तके बल्लालसेन के समय बनी थी।

(२) मध्यमिका नगरी मेवाड मे प्रसिद्ध चित्तौड के किले से करीब ६ मील उत्तर में है। बाक्ट्रियन यूनानी राजाओं मे से मिनइंडर का गुजरात राजपूताना आदि देशो को विजय करना, वहा से मिलने वाले उसके अनेक सिक्को से अनुमान किया जा सकता है, अतएव मध्यमिका पर आक्रमण करने वाला यूनानी राजा मिनंडर ही होना सभव है।

११३२ में दक्षिण के यादव राजासिंहण (सिंघण) और धोलका के बघेल (सोलंकी) राणा लावण्यप्रसाद (लवणप्रसाद) के बीच (युद्ध के बाद) लिखा गया था। पिंगल सूत्रवृत्ति मे हलायुध पंडित ने मालवा के परमार राजा मुंज की प्रशंसा लिखी है। परमार राजा अर्जुनवर्मा ने अमरूशतक की टीका में जगद्देव (जगदेव परमार) को अपना पूर्व पुरुष कहकर उसकी प्रशंसा का पद्य उद्धृत किया है। जिनप्रभ सूरि रचित तीर्थ कल्प के सत्यपुर (साचोर, मारवाड़ में) कल्प से वि० सं० १३५६ (ई० स० १३००) में अलाउद्दीन (खिलजी) के छोटे भाई उलगखाँ की मेवाड़ पर चढाई होना तथा चित्तौड के स्वामी समरसिंह (रावल) का उक्त देश को बचाना पाया जाता है। प्राकृत पिंगल सूत्र की टीका मे लक्ष्मीनाथ भट्ट ने हमीर (चौहान), कर्ण आदि राजाओ की प्रशंसा के श्लोक उदाहरणार्थ उद्धृत किये है। अशोक अवदान नाम की पुस्तक मे शिशुनाग वंश के राजाओ की नामावली एवं हेमचन्द्र (हेमाचार्य रचित त्रिषष्टि पुरुष शलाका चरित) के परिशिष्ट पर्व में शिशुनाग तथा मौर्यवंश के राजाओ का कुछ वृत्तान्त दिया हुआ है। मेरूतुंग रचित विचार श्रेणी गुजरात के चावडो तथा सोलंकियो की पूरी वंशावली, प्रत्येक राजा का राजत्वकाल तथा कई अन्य ऐतिहासिक घटनाओ का उल्लेख है। धर्म-सागर ने प्रवचनपरीक्षा में गुजरात के चावडो तथा सोलंकियो की पूरी वंशावली और राज्य समय दिया है। महाकवि कालिदास के मालविका-ग्नि मित्र नाटक मे शुंग वंश के संस्थापक राजा पुष्यमित्र के समय में उसके पुत्र अग्निमित्र का विदिशा (भेलसा) में शासन करना, विदर्भ (बरार) देश का राज्य के लिए यज्ञसेन और माधवसेन के बीच विरोध चलना, माधवसेन का विदिशा जाने के निमित्त भागना तथा यज्ञसेन के सेनापति द्वारा कैद होना, माधवसेन को छुडाने के लिए अग्निमित्र का यज्ञसेन से लडना तथा विदर्भ के दो विभाग कर एक उसको और दूसरा माधवसेन को देना, पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ के घोडे का सिंध (सिंधु-राजपूताने में) नदी के दक्षिण तटपर यवनो (यूनानियो) द्वारा पकडा जाना, वसुमित्र का यवनो से लडकर घोडे का छुडा लाना और पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ का पूर्ण होना आदि वृत्तान्त मिलता है। अजमेर के चोहान राजा विग्रहराज (बीसलदेव) के राजकवि सोमेश्वर रचित ललित विग्रहराज नाटक में बीसलदेव और मुसलमानो के बीच की लडाई का हाल है। मालवा के परमार राजा अर्जुनवर्मा के राजगुरू मदन की बनाई हुई पारिजातमंजरी नाटिका मे अर्जुनवर्मा और गुजरात के सोलंकी राजा जयसिंह

(जिसने भीमदेव दूसरे का राज्य छीन लिया था) के बीच पर्व पर्वत (पावागढ़-गुजरात में) के पास लड़ाई होने तथा उसमें हार कर जयसिंह के भागने का उल्लेख है। कृष्ण मिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय नाटक से पाया जाता है कि चेदी देश के हृदय (कलचुरी) वंशी राजा कर्ण ने कालिंजर के चदेल राजा कीर्तिवर्मा का राज्य छीन लिया था, परन्तु उस (कीर्तिवर्मा) के ब्राह्मण सेनापति गोपाल ने कर्ण को परास्त कर उसको फिर राज सिंहासन पर बिठलाया था। गुणाढ्य की बृहत्कथा (पैशाची भाषा में) के संस्कृत अनुवाद तथा कथा सरित्सागर में वररुचि, व्याड़ी, पाणिनि, नंदी, शकटाल, चाणक्य, सातवाहन, बत्सराज, चड महासेन, विक्रमादित्य आदि की कथाएँ हैं और शिवसिंह देव के आश्रित विद्यापति पंडित रचित पुरुष परीक्षा में मिथिला के कर्णाट वंशी राजा नान्यदेव के पुत्र मल्लदेव, गौड़ के राजा लक्ष्मणसेन, धारानगरी के राजा भोज और काशी के राजा जयचन्द्र आदि का वृत्तान्त मिल जाता है।

इस प्रकार की सामग्री से ऐतिहासिक घटनाओं के संग्रह करने का आधार इतिहास लेखक की बहुश्रुतता पर ही निर्भर है।

पुस्तकों के प्रारम्भ और अन्त-विशेष कर ई० स० की पाँचवी शताब्दी के पीछे के ग्रन्थकारों में से किसी ने अपनी पुस्तक के प्रारम्भ या अन्त में अपना और अपने आश्रयदाता राजा का कुछ-कुछ परिचय दिया है, किसी ने अपनी पुस्तक की रचना का सं० तथा उस समय राज्य करने वाले राजा का नाम, और किसी ने अपने आश्रयदाता के वंश का विशेष वर्णन लिखा है। इसी तरह प्राचीन काल के कई विद्वान् नकल करने वालों ने कितनी ही पुस्तकों के अन्त में नक़ल करने का संवत् तथा उस समय के राजा का नाम भी दिया है ऐसे साधनों से भी इतिहास में कुछ सहायता मिलती है, जिसके थोड़े से उदाहरण यहाँ पर दिये जाते हैं।

जल्हण पंडित ने अपनी सूक्ति मुक्तावलि के प्रारम्भ में अपने पूर्वजों के वृत्तान्त में देवगिरि (दौलतबाद) के कितने एक यादव राजाओं का परिचय दिया है। प्रसिद्ध हेमाद्रि पंडित ने, जो देवगिरि के यादव राजा महादेव का प्रधानमंत्री था, अपनी चतुर्वर्ग चिंतामणि के व्रत खंड के अन्त की राजप्रशस्ति में पुराण प्रसिद्ध कितने ही यदुवंशी राजाओं की नामावली के अतिरिक्त दक्षिण में यादवों के राज्य स्थापन करने वाले राजा दृढ़-प्रहार से लगाकर महादेव तक की पूरी वंशावली तथा कई राजाओं का कुछ-कुछ हाल भी दिया है। गुजरात के सोलंकियों के पुरोहित सोमेश्वर ने अपने रचे हुए सुरथोत्सव काव्य के १५वें सर्ग में अपने पूर्वजों के वर्णन

के प्रसंग में गुजरात के सोलंकियो का कुछ-कुछ वृत्तान्त दिया है। धनपाल पंडित ने तिलकमँजरी के प्रारंभ में परमारो की उत्पत्ति तथा वैरिसिह् से भोज तक की वंशावली दी है। ब्रह्मगुप्त ने श० सं० ५५० (वि० स० ६८५–ई० स० ६२८) में (भीनमाल में जो जोधपुर राज्य में है) ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त रचा। उस समय वहाँ का राजा चाप (चावडा) वंशी व्याघ्रमुख था, ऐसा उसी के लेख से पाया जाता है। ई० स० की सातवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रसिद्ध माघ कवि ने (जो भीनमाल नगर का रहने वाला था) शिशुपालबध काव्य रचा, जिसमे वह अपने दादा सुप्रभदेव को वहाँ के राजा वर्मलात का सर्वाधिकारी बतलाता है। जिनेश्वर ने शक सं० ७०५ (वि० सं० ८४०–ई० स० ७८३) में जैन हरिवंश पुराण लिखा। उस समय उत्तर में इन्द्रायुध, दक्षिण में बल्लभ, पूर्व में वत्सराज और पश्चिम में वेहार (जयवराह) का राज्य करना उक्त पुस्तक से पाया जाता है। अमितगति ने वि० सं० १०५० (ई० स० ९९३) मे सुभाषित-रत्नसंदोह नामक पुस्तक बनाई उस समय (मालवा का) राजा मुज (परमार) था। वज्रट के पुत्र उवट ने उज्जैन में रहकर यजुर्वेद (शुक्ल) पर भाष्य लिखा। उस वक्त वहाँ का राजा भोज (परमार) था। प्राग्वाट (पोरवाड़) महाजन धवल की पुत्री ने वि० स० १२६१ (ई० स० १२०५) के आश्विन मास में मुंजाल पंडित से जयंतीवृत्ति की नक़ल करवा कर अजितदेव सूरि को भेट की। उस समय अणहिलवाडे का राजा भीमदेव (सोलंकी [दूसरा-भोला भीम]) था, तथा वि० सं० १२८४ ई० स० १२२८) के फागुन मास में सेठ हेमचन्द्र ने ऊध निर्युक्ति की नकल कर-वाई, उस समय आधाट दुर्ग (अहाड़–मेवाड़ की पुरानी राजधानी) में जैत्रसिंह (रावल) का राज्य था और उसका महामात्य (मुख्यमंत्री) जगतसिंह था–ऐसा उक्त दोनो पुस्तकों की नक़ल करने वालो के लेख से पाया जाता है।

इस प्रकार की सामग्री से कई ऐतिहासिक बातो का पता लगता है, यदि उनका संग्रह किया जावे तो एक छोटी सी पुस्तक बन जावे। प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत पुस्तको की कई रिपोर्टें तथा कई पुस्तकालयो की सूचियाँ ऐसी बन चुकी है कि जिनमें अनेक पुस्तको के प्रारम्भ और अन्त का कुछ-कुछ आवश्यकीय अंश उद्धृत किया हुआ है। उनके द्वारा थोड़े से श्रम से कई ऐतिहासिक बातें मालूम हो सकती है। ऐसी पुस्तको में डाक्टर किलहार्न, बुल्श, भंडारकर, पीटर्सन, तथा शेषगिरि शास्त्री की रिपोर्टें, डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र तथा हरप्रसाद शास्त्री संगृहित 'नोटिसेज

ऑफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स' तथा बनारस सस्कृत कॉलेज, काश्मीर, अलवर, बीकानेर, नेपाल, कलकत्ता सस्कृत कालेज, इडिया ऑफिस, ब्रिटिश म्युजिअम, केब्रिज युनिवर्सिटी आदि सस्कृत पुस्तक सग्रहो की सूचियाँ मुख्य है। डाक्टर ऑफ रेच की केटो लोगस केटे लोगरम्[1] नामक पुस्तक (जिसके तीन भाग छप चुके है) इस विषय का अपूर्व ग्रथ है।

(ऊ) वशावलियो की पुस्तक-भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न विभागो से राजाओं तथा धर्माचार्यो की वश परम्परा की पुस्तकें मिल जाती है, जिनसे भी प्राचीन इतिहास मे कुछ-कुछ सहायता मिल सकती है। ऐसी पुस्तको में से मुख्य-मुख्य के नाम नीचे लिखे है—

(१) प्रसिद्ध काश्मीरी पडित क्षेमेन्द्र रचित नृपावलि (राजावली)। इसमें काश्मीर के राजाओ की वशावली है, जिसका समावेश कल्हण की राजतरगिणी में हो गया।

(२–३) जैन पडित विद्याधर सगृहित राजतरगिणी तथा रघुनाथ रचित राजावली—ये दोनो पुस्तकें जयपुर बसाने वाला राजा जयसिह के समय में जयपुर में बनी थी, जिनमे भारत युद्ध से लगा कर विक्रमादित्य तक के राजाओ की नामावली देने का यत्न किया गया है। हमने ये दोनो पुस्तके देखी नही है, परन्तु कर्नल टॉड् ने राजस्थान नामक पुस्तक में इनके विषय में जो कुछ लिखा है। उसी के आधार पर इनका यहाँ पर उल्लेख किया जाता है। कर्नल टॉड ने राजावली के अनुसार परीक्षित से लगा कर राजपाल तक के चार वशो की वशावलियाँ दी है, जिनमें से पहिले वश के २८ राजाओ के नामो का विष्णुपुराण तथा भागवत में दिए हुए (उसी वश के) राजाओ के नामो से मिलान किया तो केवल चार राजाओ के नाम परस्पर मिले, अतएव उनके द्वारा प्राचीन इतिहास में बहुत ही कम सहायता मिलने की सभावना है।

(४) नेपाल की वशावली—पार्वतीय वशावली नामक एक पुस्तक नेपाल से मिली है, जिसमे कलियुग के प्रारम्भ से लगाकर ई० स १८वी शताब्दी तक उक्त देश पर राज्य करनेवाले भिन्न-भिन्न वशो के राजाओ की नामावली तथा प्रत्येक राजा का राजत्वकाल दिया है। परन्तु वही से मिले हुए प्राचीन शिलालेखो तथा पुस्तको मे दिए हुए वहाँ के राजाओं

---

(1) ई० स० १९०३ के जुलाई तक सस्कृत (हस्तलिखित) पुस्तको के शोध के विषय मे जितनी रिपोर्टे तथा भिन्न-भिन्न सस्कृत पुस्तक-संग्रहो की जितनी सूचिया छपी, उनका पूरा पता इस अमूल्य पुस्तक से लग सकता है। हमने उसमें मुख्य-मुख्य के ही नाम ऊपर दिए है।

के नाम तथा सवतो के साथ उक्त वशावली का मिलान करने पर उसकी शुद्धता सिद्ध नही होती । उदाहरणार्थ–देखिये कि ठाकुरी वश के राजा अशुवर्मा के शिलालेखो से उसका ई० स० की सातवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे होना पाया जाता है । चीनी यात्री हुएनसग ई० स० ६३७ के करीब नेपाल मे पहुँचा । उससे थोडे ही समय पूर्व वह (अशुवर्मा) मर चुका था । ऐसा उक्त यात्री के लेख से पाया जाता है । परन्तु उपर्युक्त वशावली के अनुसार उसका ई० स० पूर्व की सातवी शताब्दी मे होना मानना पडता है । ऐसी दशा मे वह वशावली प्राचीन इतिहास के लिये विशेष उपयोगी नही हो सकती । प्राचीन समय के राजाओ के नामो मे से कितने एक सही है, परन्तु सबके सब नही । यह वशावली इडियन एटीक्वेरी की जिल्द १३वी (पृ० ४१०–२८) में छपी है ।

(५) उडीसा की वशावली—नेपाल की नाई उडीसा–राजाओ की वशावली जगन्नाथ (पुरी) से ताडपत्र पर लिखी (खुदी) हुई मिली है, जिससे युधिष्टिर से लगाकर अब तक के उडीसा के राजाओ की नामावली तथा प्रत्येक का राज्य समय दिया हुआ है, परन्तु इसकी भी वही दशा है, जो नेपाल की वन्शावली की है । उदाहरण–के लिये प्रसिद्ध जगन्नाथ के मन्दिर के बनने का हाल ही देखिये । प्राचीन ताम्र-लेखादि से पाया जाता है कि जगन्नाथ का मन्दिर, जो इस समय विद्यमान है, गगावंशी राजा अनन्तवर्म चोडगग ने बनवाया था, परन्तु उक्त वशावली में उससे पाँचवे राजा अनग भीमदेव को उक्त मन्दिर का बनाने वाला लिखा है । अनतवर्म चोडगग का राज्याभिषेक श० स० ६६६ (वि० स० ११३४ = ई० स० १०७८) मे होना उसीके ताम्रपत्र से पाया जाता है, परन्तु उक्त वशावली में उसके राज्य का प्रारम्भ ई० स० ११३२ में होना लिखा है । ई० स० की १२वी शताब्दी के पूर्व के राजाओ की नामावली तो अधिक अशुद्ध है । यह वशावली हँटर साहिब (W W Hunter) के ओरीसा (Orissa) नामक पुस्तक की दूसरी जिल्द (पृ० १८४–१९१) में छपी है ।

(६) भाटो की वंशावलिया—भाट (बडवा) लोग प्रत्येक राजवश की वश परम्परा लिखते है, परन्तु उनकी पुस्तको का, शिलालेख ताम्रपत्रादि से मिलनेवाली भिन्न–भिन्न राजवशो की नामावलियो के साथ मिलान करने पर ई० स० की तेरहवी शताब्दी तक के नामो में से बहुत कम का शुद्ध होना सिद्ध होता है, और एक ही वन्श से सबध रखने वाले भाटो की दो पुस्तकें भी परस्पर नही मिलती । सिरोही के चोहान राजाओ के भाटों (बडवो)

की पुस्तक मे उक्त वश के प्रारम्भ से लगा कर प्रसिद्ध पृथ्वीराज तक २२७ नाम है और बूदी के भाटो (बडवो) की पुस्तक में (वश) भास्कर के अनुसार १७७ है, जिनमें से केवल ७ नाम परस्पर मिलते है। भाटो की वंशावलियाँ ई० स० की तैरहवी शताब्दी तक के इतिहास के लिय विशेष उपयोगी नही है, क्योकि उक्त समय के पूर्व के नामो में से अधिकतर कृत्रिम ही उनमें धरे हुए है ।

(७) पट्टावलियाँ—जैनों के प्रत्येक गच्छ के आचार्यो की क्रम परपरा की पुस्तकें मिलती है, जिनको पट्टावलियाँ कहते है । उनमें महावीर स्वामी से लगा कर उनके लिखे जाने के समय तक की (किसी मे अब तक की) प्रत्येक गच्छ के आचार्यो की नामावली, उनका जन्म-सवत् जन्म-स्थान, दीक्षा का सवत्, आचार्य पद पाने का सवत् तथा धर्म प्रचार आदि का वृत्तान्त होता है। इनसे भी कई ऐतिहासिक घटनाओ का पता लगता है । ये पदावलियाँ ई० स० की १० वी शताब्दी के बाद लिखी जाने लगी हो, ऐसा अनुमान होता है।

(ए) भाषा की ऐतिहासिक पुस्तकें-सस्कृत तथा प्राकृत के अतिरिक्त हिन्दी तथा तामिल आदि भाषाओ में लिखे हुए कितने एक ऐतिहासिक ग्रंथ भी मिलते है, जिनमें भी कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त मिल जाता है । ऐसी पुस्तको में लिखी हुई मुख्य है—

(१) रत्नमाला—हिदी भाषा की पुस्तको में सबसे उत्तम रत्नमाला है, जिसकी रचना ई० स० की १४वी शताब्दी के आसपास कृष्ण कवि ने की थी। इसमें १०८ रत्न (अध्याय) थे, जिनमें से ११ अब तक उपलब्ध हुए है । उसमें गुजरात के चावड़ा वशी राजाओ की नामावली तथा मूलराज से भीमदेव (दूसरे) तक के सोलकी राजाओ का कुछ-कुछ वृत्तान्त है, इसके ८ रत्न अहमदाबाद में गुजराती भाषान्तर सहित छप चुके है ।

(२) पृथ्वीराजरासो—इसमें चौहान वंश के प्रतापी राजा पृथ्वीराज का इतिहास मुख्य है । ऐसा प्रसिद्ध है कि इस हिदी (राजस्थानी) भाषा के काव्य की रचना उक्त पृथ्वीराज के समय में अर्थात् ई० स० की १२वी शताब्दी के अन्त में चदबरदाई नामक भाट ने की थी। यदि यह पुस्तक उक्त समय की बनी होती तो उपर्युक्त पृथ्वीराज विजय के समान इतिहास के लिये अमूल्य होती। परन्तु चौहानो के प्राचीन शिला-लेख, ताम्रपत्र तथा पृथ्वीराज विजय आदि ऐतिहासिक पुस्तकों के साथ उसका मिलान करने से इसमें दी हुई चौहानो की वंशावली, ऐतिहासिक

वृत्तान्त और साल संवतों का बहुधा कृत्रिम होना प्रतीत होता है, अतएव हम उसका ई० स० की १५वी शताब्दी के आसपास बनना अनुमान कर सकते है । प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी नहीं है । नागरीप्रचारिणी सभा (बनारस) इसको छपवा रही है E ।

(३) खुम्माण रासा—यह हिंदी काव्य ई० स० की १७वी शताब्दी में उदयपुर के एक जैन साधु ने बनाया था, जिसमें मेवाड के प्रसिद्ध राजा खुम्माण का इतिहास है, जो बहुधा कल्पित है । प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक बहुत ही कम उपयोगी है । यह अब तक छपी नही है ।

उपर्युक्त हिंदी पुस्तको के अतिरिक्त वीसलदेव रासा, हंमीर रासा, राणा रासा, रायमल रासा, राजविलास आदि पुस्तकें भी मिलती है, परन्तु प्राचीन इतिहास के लिये उनसे विशेष सहायता नही मिल सकती ।

(४) कलवलिनाडपटु—यह तामिल भाषा का छोटा-सा काव्य है, जिसको पोइकयार नामक कवि ने ई०स० की सातवी शताब्दी के करीब रचा था । इसमें चोल देश के राजा चेंकणा और चेर (गगवाडी-माइसोर राज्य में) के राजा कणेकाइरुपीडे के बीच के युद्ध का (जिस में चेर का राजा कैद हुआ था ।) वर्णन है । यह काव्य अग्रेजी अनुवाद सहित इंडिअन् ऐंटिक्वेरी की १८ वी जिल्द (पृ० २५८–६५) में छपा है ।

(५) कलिगत्तु परणी–ई०स० की ११ वी शताब्दी के अंत के आस-पास जय कौंडान् नामक कवि ने इस तामिल काव्य की रचना की थी, जिस में चोल देश के सोलकी राजा कुलोत्तुंग चोडदेव (प्रथम) के कलिंग देश विजय करने का वृत्तान्त है । इसका साराश अग्रेजी अनुवाद सहित इडिअन् ऐंटीक्वेरी की १९वी जिल्द (पृ०३२९–४५) मे छपा है ।

(६) विक्रम शोलनुला–ई०स० की बारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बने हुए इस तामिल काव्य में चोल देश पर राज्य करने वाले राजा शेंगल (चेकण) चोल से विक्रम चोल तक के राजाओ की नामावली तथा विक्रम चोल की सवारी का हूबहू वर्णन है । इसका साराश अग्रेजी अनुवाद सहित इंडियन् ऐंटिक्वेरी की जिल्द २२वी (पृ०१४१-१५०) में छपा है ।

(७) राज राजनुला–यह भी उपर्युक्त विक्रम शोलनुला की शैली का तामिल काव्य है, जिसमें चोल देश के सोलकी राजा राज रा०. (दूसरे) का वृत्तान्त है । यह काव्य ई०स० की १२वीं शताब्दी में बना था । अब तक यह छपा नहीं है । उपर्युक्त चारो (न. ४—७) तामिल काव्य प्राचीन इतिहास के लिये उपयोगी है ।

(८) कोंगु देश राजाक्कल–यह भी तामिल भाषा की पुस्तक है , जिसमे

कोगु देश (गगराड़ी-माइसोर राज्य मे) के गंगावंशी राजाओ की वंशावली तथा उनका राजत्वकाल दिया है, जो बहुधा कल्पित है। अलबत्ताह राजाओं के नामो में से कितने एक शुद्ध है। प्राचीन इतिहास के लिये यह विशेष उपयोगी नही है।

उपर्युक्त सामग्री अर्थात् हमारे यहाँ की प्राचीन पुस्तको से ई०स० की तीसरी शताब्दी से लगाकर मुसलमानो के हाथ से भिन्न-भिन्न हिन्दू राज्यो के अस्त होने तक इस देश के भिन्न-भिन्न विभागो पर राज्य करने वाले अनेक राजवशो में से केवल अणाहिलवाडे, तथा सोलंकियो के अतिरिक्त किसी दूसरे वश की पूरी वशावली तय्यार नही हो सकती और न ईरानी, यूनानी, शक, कुशन, (तुर्क) हूण आदि विदेशी विजेताओ की वशावली अथवा उनका विशेष वृत्तान्त मिलता है। तो भी कितने ही राजवशो के प्राचीन इतिहास में बहुत कुछ सहायता मिलती है, एवम् लोगो की धार्मिक तथा सामाजिक स्थिति उनके रीति रिवाज, व्यापार, साहित्य आदि अनेक प्रयोगी बातो का पता लगता है।

(ख) यूरोप, चीन, तिब्बत और सीलोन वालो की तथा मुसल्मानो की लिखी हुई प्राचीन पुस्तके।

(अ) यूरोप वालों की प्राचीन पुस्तके—यूनान के प्रसिद्ध बादशाह सिकंदर (अलेक्ज़ेंडर दी ग्रेट) ने ई०स० पूर्व ३२७ मे भारतवर्ष पर चढाई की, जिसका कुछ भी वृत्तान्त हमारे यहा लिखा हुआ नही है, परन्तु उसका सविस्तर वृत्तान्त यूरोप अन् लेखको की पुस्तको मे मिल जाता है, एवं हमारे इतिहास से सबध रखने वाली दूसरी भी कई बाते उनकी पुस्तको मे मिल जाती है। उनमें मुख्य नीचे लिखे हुए विद्वानो की पुस्तक है।

(१) हिरोडोटस—प्रसिद्ध यूनानी इतिहास लेखक हिरोडोटस् ने ई०स० पूर्वकी पाचवीं शताब्दी मे इतिहास की वृहत् पुस्तक लिखी, जिसमें ईरान के बादशाह दारा (प्रथम) ने ई०स० पूर्व ५०० के करीब हिन्दुस्थान पर चढाई कर पजाब का पश्चिमी हिस्सा जो अपने आधीन किया, उसका वृत्तान्त मिलता है। एवम् हमारे इतिहास से सबंध रखनेवाली दूसरी भी कई घटनाओ का उल्लेख उक्त पुस्तक में पाया जाता है। उसके लेख से यह भी पाया जाता है कि उस समय वह देश बडा ही धानाढ्य था और दारा के साम्राज्य के २० सूबों में से केवल पश्चिमी पजाब का खिराज सुवर्ण में पहुँचता था (बाकी के सब सूबो का चादी में)। हिरोडोटस की पुस्तक का अग्रेजी अनुवाद छप चुका है।

(२) केसीअस (Ktesias)—यह ईरान के बादशाह अर्तजर्क सीस (Artax erxes Memon) का वैद्य था। इसने ई०स० पूर्व ४०० के करीब भारतवर्ष के

विषय में 'इडिका' नामक पुस्तक लिखी थी, जो इस समय उपलब्ध नही है, परन्तु ई०स० की नवीं शताब्दी के मध्य फोटिअस नामक विद्वान ने उसका सक्षेप किया था वह, तथा अन्य प्राचीन लेखको ने उस (इडिका) का जो अश अपनी पुस्तको में उद्धृत किया, वह मिलता है, (जिसके नाम का पता नही लगा) ई० स० की पहली शताब्दी में यह पुस्तक लिखाई जिससे भारतवर्ष का व्यापार सबधी कुछ-कुछ हाल मालूम होता है। उक्त ग्रन्थ के कर्त्ता ने भारतवर्ष के सारे समुद्र-तट की यात्रा की हो, ऐसा पाया जाता है। इसका अग्रेजी अनुवाद मैक क्रिडल साहब ने इडियन ऐंटीक्वेरी की जिसका अग्रेजी अनुवाद मैक् क्रिडल् (Mc Crindle) साहब ने इडिअन् ऐंटिक्वेरी की जिल्द १०वी (पृ०२५६-३१४) में छपवाया है। उक्त लेखक ने बहुधा सुनी हुई बाते लिखी है, जिससे उसकी पुस्तक विशेष उपयोगी नही है।

(३) मैगेस्थेनीज सिरिआ के यूनानी बादशाह सेल्यूकस ने मैगेस्थिनीज नामक विद्वान को मौर्यवशी राजा चन्द्रगुप्त के दरबार मे अपना राजदूत नियत किया था। जिसने पाटलीपुत्र (पटना) में रहकर भारतवर्ष के विषय मे 'इडिका' नामक पुस्तक ई०स० पूर्व चौथी शताब्दी के अत के आस-पास लिखी, जो इस देश के उस समय की हालत जानने के लिए अपूर्व पुस्तक थी, परन्तु इस समय का उसका थोडा-सा अश ही (जो अन्य लेखको ने अपनी पुस्तको मे उद्धृत किया था) उपलब्ध है। वह भी हमारे यहा के प्राचीन इतिहास के लिये बहुत उपयोगी है। उसका हिन्दी अनुवाद 'इतिहास छप' चुका है।

(४-८) ऐरिअन, कर्टिअस, रूफस्, प्लूटार्क, डायोडारस और फ्रोटिनस-सिकन्दर बादशाह का वृत्तान्त भिन्न-भिन्न १६ विद्वानो ने लिखा था, जिनकी पुस्तको के आधार पर इन पाच इतिहास लेखको ने उसकी भारतवर्ष पर की चढाई का विस्तृत हाल लिखा था, वह उपलब्ध है और हमारे इतिहास के लिये बड़ा ही उपयोगी है। इन पाचो विद्वानो की पुस्तको में भी ऐरिजन की पुस्तक सर्वोत्तम मानी जाती है। ऐरिअन ने 'इडिका' नामक भारतवर्ष के सबंध में एक छोटी-सी पुस्तक और भी लिखी है, वह भी उपयोगी है। मैक क्रिडल साहब ने उक्त पाचो विद्वानो के लिखे हुए सिकदर की भारत पर की चढाई के वृत्तात का अग्रेजी अनुवाद 'दी इन्वेजन' ऑफ इडिआ, बाइ अलेक्जेंडर दी ग्रेट' नामक पुस्तक में छापा है।

(६) पेरिप्लस् ऑफ दी इरीथ्रिअन् सी[1] एक यूनानी व्यापारी ने जिल्द ८वी (पृ०१०७-५१) मे छपवाया है।

(1) उस समय अफ्रीका के किनारे से पूर्व का सारा समुद्र 'इरीथ्रिअन सी (Zrythrean Sea) के नाम से प्रसिद्ध था।

(१०) टॉलमी-ई०स० की दूसरी शताब्दी के मध्य मिश्र देश के अलेक्जैंड्रिआ नगर के रहने वाले यूनानी विद्वान् टॉलमी ने भूगोल की बडी पुस्तक लिखी, जिसमे हिन्दुस्तान के कई नगर, नदी आदि के नाम तथा उनका अक्षांश आदि दिए हुए हैं, एवम् क्षत्रिय वश के राजा चष्टन्, सातवाहन (आंध्रभृत्य) वंशी पुलुमाई आदि उस समय के राजाओं के नामो का उल्लेख किया है, परन्तु उसने अलैक्जैंड्रिआ में बैठे ही बैठे हिन्दुस्तान का भूगोल यात्रियो तथा नाविको द्वारा सुनी हुई बातो तथा पहिले की पुस्तको के आधार पर लिखा था, जिससे उसके नियत किए स्थानो में बहुत ही अन्तर पडता है। यदि उसके लेखानुसार नक्शा तय्यार किया जाय तो महानदी को स्याम में, हिमालय को तिब्बत के उत्तर मे तथा गगा को चीन तक ले जाना होगा। इस पर भी उसकी पुस्तक से हमारे प्राचीन इतिहास में कुछ सहायता मिल ही जाती है। उक्त पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद मैक्क्रिडल् साहब ने इडिअन् ऐंटिकोरी की जिल्द १३वी (पृ० ३१३-४११ में छपवाया है)।

(११) मार्कोपोलो–वेनेस नगर का प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ई०स० १२९४ के करीब दक्षिण में आया था। उसकी यात्रा की पुस्तक (जि० दूसरी) में वहाँ का जो वृत्तान्त मिलता है, वह भी उपयोगी है। क्योकि उसने अपनी देखी हुई उक्त देश की दशा का वर्णन किया है। उसकी यात्रा की पुस्तक का अग्रेजी अनुवाद कर्नल हेन्री यूल ने छपवाया है।

(१२) निकोलो डी काउटी–इटली देश का निवासी निकोलो ई०स० १४२० के करीब विजयनगर मे रहा था, उसने उक्त नगर का, तथा वहाँ के राजा देवराज (दूसरे) का जो वृत्तान्त लिखा है, वह विजय नगर के यादवो के इतिहास के लिये उपयोगी है। उसका अग्रेजी अनुवाद राबर्ट सेवेल साहब की 'एफगार्टन एम्पायर' नामक पुस्तक में छपा है।

(१३) फर्नाओ नूनीज–इस पोरचुँगेज इतिहास लेखक ने ई० स० की १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे विजयनगर के यादव राज्य का इतिहास लिखा था। जो वहाँ के प्रथम राजवश के इतिहास मे बहुत कुछ सहायता देता है। उसका अग्रेजी अनुवाद उपर्युक्त 'एफर्गाटन एम्पायर' नामक पुस्तक के अन्त में छपा है।

(१४) भिन्न-भिन्न लेखक—समय-समय पर अनेक यूरोपिअन् लेखको ने अपनी पुस्तको में इस देश के सबंध में जो कुछ लिखा था, उसका सग्रह मैक्क्रिडल साहब ने 'एनश्यंट इडिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई अदर क्लासिकल राइटर्स नामक अंग्रेजी पुस्तक में किया है जो बडा ही उपयोगी है।

ऊपर लिखे हुए युरोपिअन विद्वानों की पुस्तको मे एक बडी खामी यह है, कि उनमें लिखे हुए स्थान तथा पुरुषो के नामो में से कितनो ही का ठीक-ठीक पता लगाना बडा ही कठिन काम हो पड़ा है।

(आ) चीन वालो की पुस्तकें-चीन की प्राचीन काल से ही इतिहास लिखने की प्रथा होने के कारण उनके यहा इतिहास की अनेक पुस्तकें मिल जाती है, उनसे तथा यात्रार्थ भारतवर्ष मे आए हुए चीनी यात्रियो के सफर नामो से एव वहाँ की धर्म (बौद्ध) पुस्तको से हमारे यहाँ की इतिहास सबधी कई बातें मिल जाती है।

(१) ऐतिहासिक पुस्तकें–चीन की ऐतिहासिक पुस्तको से मध्य ऐशिआ में राज्य करने वाली शक, कुशन (तुर्क) हूण आदि जातियो का, जिन्होने भारतवर्ष पर अपना अधिकार बनाया था, विस्तृत वृत्तान्त मिल जाता है। एवं दूसरी भी कई एक ऐतिहासिक घटनाओ का उल्लेख मिलता है। चीन का इतिहास लिखने वालो में पहिला पुरुष सुमाचिन था, जिसने अपनी पुस्तक ई०स० पूर्व १०० के आस-पास लिखी थी, जिसका फ्रेंच अनुवाद एम. चैवन्निस (M Chavannes) नामक फ्रेंच विद्वान् ने किया है। उसी विद्वान ने 'मेमोयर' नामक फ्रेंच पुस्तक में चीन की और भी ऐतिहासिक पुस्तको का साराश दिया है। एशियाटिक् जर्नल नामक फ्रेंच पत्रिका में भी चीन की ऐतिहासिक पुस्तको के आधार पर हिन्दुस्तान के प्राचीन इतिहास से संबंध-रखने वाले विषयो पर कई एक लेख छपे है, पर उनमें से बहुत कम के अग्रेज़ी अनुवाद हुए है।

(२) फाहियान–प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान ई० स० ३९९ में चीन से यात्रार्थ निकला और गगा के निकटवर्ती प्रदेशो तथा सीलोन में ठहरता हुआ ई० स० ४१४ में चीन को लौटा। उस समय उत्तरी हिन्दुस्तान (नर्मदा से उत्तर के समस्त देश) का राजा गुप्तवशी चद्रगुप्त (दूसरा) था, जिसका प्रसिद्ध खिताब विक्रमादित्य था। फाहियान उसके राज्य में ६ वर्ष के करीब रहा था। उसने अपनी यात्रा की 'फो-को-की' नामक पुस्तक में चद्रगुप्त की मुख्य राजधानी पाटलीपुत्र (पटना) का, वहाँ के औषधालय आदि का तथा उसके विस्तृत राज्य के अधीन के अनेक स्थानो का जो वृत्तान्त लिखा है। उससे उक्त राजा के राज्य की वास्तविक दशा प्रकट होती है। उक्त पुस्तक के दो अग्रेज़ी अनुवाद छपे है, जिसमें प्रोफेसर जम्स लग्गे (James Lugge) का अनुवाद विशेष उपयोगी है।

(३) सगयुन, और ह्वीसग-ये दोनो यात्री ई० स० ५१८ के करीब इस

देश मे आए थे। इनकी यात्रा की पुस्तक से भी कई उपयोगी बातें मिल जाती हे। उसका अग्रेज़ी अनुवाद सेम्युल बील साहब ने हुएन्तसाग की यात्रा की पुम्तक के उपोद्घात मे छपवाया है।

(४) हुएन्तसाग—प्रसिद्ध चोनी यात्री हुएन्तसाग ई०स० ६२९ और ६४५ के बीच करीब-करीब सारे भारतवर्ष मे फिरा था और जहाँ-जहाँ वह गया, वहाँ का हाल उसने अपनी पुस्तक में लिखा है, जो 'सी-यु-की' नाम से प्रसिद्ध है। उस समय सारे भारतवर्ष मे दो ही प्रबल राजा थे। नर्मदा से उत्तर मे कन्नोज का बेस-वंशी राजा हर्ष (हर्षवर्द्धन) और दक्षिण म सोलकी पुलुकेशी (दूसरा)। जिनमे से हर्ष के साथ तो वह कई मास तक रहा था। उक्त पुस्तक से उस समय की इस देश की दशा, लोगो के रीति रिवाज, धर्माचरण आदि अनेक उपयोगी विषयो के अतिरिक्त अशोक, कनिष्क, मिहिरकुल, हर्ष (हर्षवर्द्धन) पुलुकेशी आदि कई राजाओ का, अनेक विद्वानो तथा उनकी पुस्तको का एव अनेक राज्यो का वृत्तान्त मिलता है। भारतवर्ष के प्राचीन भूगोल के लिये इससे बढकर कोई पुस्तक नही है। उक्त अमूल्य पुस्तक का अग्रेजी अनुवाद सेम्युअल बील साहिब ने 'बुद्धिस्ट रेकर्ड ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड' नामक पुस्तक (दो जिल्दो) में किया है और वाटर्स (टी०) नामक विद्वान् ने उक्त विषय में दो जिल्दें और प्रकाशित की है, जो बहुत उत्तम है (Watter's On Yuan Chuang's travels)।

(५) हुएन्तसाग का जीवन चरित्र—हूली तथा येन्तसग नामक दो श्रमणो (बौद्ध साधुओ ने मिलकर उपर्युक्त हुएन्तसग का जीवन चरित्र लिखा है। उनमे से हूली तो उस (हुएन्तसग) का शिष्य था। यह पुस्तक भी हमारे यहाँ के इतिहास के लिये बहुत उपयोगी है। इसका अग्रेज़ी अनुवाद उपर्युक्त सैम्युअल बील साहब ने प्रकाशित किया है।

(६) इत्सिग—यह चीनी यात्री ई० स० ६७१ से ६९५ तक हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सो तथा मालय प्रायद्वीप मे ठहरा था। इसकी 'नन-हैं-चि-कुइ-ने-फाचुअन्' नामक पुस्तक उस समय के हमारे यहाँ के बौद्धो के धर्माचरण का ज्ञान सपादन करने के लिए अपूर्व है, एव उससे कई ऐतिहासिक घटनाओ का भी पता लगता है। उक्त पुस्तक का ३४वा प्रकरण, जिसमें यहाँ की पठन-पाठन शैली का वर्णन है, देखने योग्य है। इस पुस्तक का अग्रेज़ी अनुवाद जापानी विद्वान् टाकाकुसु ने छपवाया है।

उपर्युक्त यात्रियो के अतिरिक्त अनेक दूसरे चीनी यात्री भी इस देश

में आए थे, जिनके नाम आदि का उल्लेख मिलता है, परन्तु उनकी यात्रा संबंधी पुस्तकों के होने न होने का हाल मालूम नही हुआ।

चीनियो की धर्म संबंधी पुस्तको से हमारे यहाँ की अनेक प्राचीन पुस्तकों का जो अब यहाँ पर नही मिलती; पता लगता है और अनेक ग्रंथ कर्ताओं तथा धर्माचार्यो का हाल मिलता है, एवं उन विद्वानो के नाम तथा समय मालूम होते है, जिन्होने चीन में जाकर अनेक संस्कृत पुस्तको का वहाँ की भाषा में अनुवाद किया, अथवा उस काम में सहायता दी थी। इस विषय में बन्युनजिओ (Bunyin Nanjio) की 'कैटेलाग ऑफ दी वुद्धिस्ट त्रिपिटक' नामक पुस्तक बहुत उपयोगी है।

(इ) तिब्बतवालों की पुस्तकें—तिब्बत की पुस्तकों की अब तक विशेष खोज नहीं हुई, तथापि जिन पुस्तको का पता लगा है, उससे हमारे यहाँ की कितनी ही प्राचीन पुस्तकों (जो अब यहाँ पर नहीं मिलती) तथा उनके कर्ताओं के नाम आदि मालूम होते है। कुन्संजिग (Kunsnjing तारानाथ) नामक तिब्बत के श्रमण (बौद्ध साधु) ने भारतवर्ष का बौद्ध धर्म नामक पुस्तक ई०स० १६०८ में लिखी, जिसमें हमारे यहाँ के इतिहास विषय की कई जानने योग्य घटनाओ का उल्लेख मिलता है। उक्त पुस्तक का जर्मन अनुवाद शिफनर (Schiefner) नामक जर्मन विद्वान् ने किया है।

(ई) सीलोन वालो की पुस्तकें—सीलोन के साथ भारतवर्ष का निकट का संबंध होने के कारण वहाँ की ऐतिहासिक तथा धर्म संबंधी पुस्तको से हमारे यहाँ के इतिहास में कुछ सहायता मिलती है, ऐसी पुस्तको मे मुख्य निम्न लिखित हैः—

(१) दीपवंश—सीलोन के इतिहास की यह पुस्तक ई० स० ३०० के करीब पाली भाषा में बनी थी, जिसमें भारतवर्ष के मौर्यवंशी राजाओं का तथा कुछ-कुछ दूसरा वृत्तान्त भी मिलता है। इसका अंग्रेजी अनुवाद ओल्डनबर्ग (Oldenberg) साहब ने प्रकाशित किया है।

(२) महावश—पाली भाषा की इस पुस्तक मे ई०स० पूर्व की छठी शताब्दी से ई०स० की १८वी शताब्दी के मध्य तक का सीलोन का इतिहास है। यह पुस्तक भी राजतरंगिणी की नाई समय-समय पर लिखी गई थी। इसका प्रथम खंड ई०स० ४५६ और ४७७ के बीच महानामन् नामक विद्वान् ने लिखा था। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक उपर्युक्त दीपवंश की अपेक्षा अधिक उपयोगी है; क्योंकि इसमे शिशुनाग तथा मौर्यवंशी राजाओ के समय का भी कुछ-कुछ हाल मिल जाता है। इसके प्रथम खंड का अंग्रेजी अनुवाद जार्ज टर्नर (George Turnour) ने तथा बाकी का

विजयसिंह मुडलिअर ने किया है।

(३) मलिंद पन्हो (मलिंद प्रश्न)—पाली भाषा की इस पुस्तक मे प्रतापी यूनानी बादशाह मलिंद अर्थात् (मिनेंडर) और बौद्धस्थविर नागसेन के प्रश्नोत्तर है। इससे मलिंद (मिनेंडर) के जन्मस्थान, राजधानी, प्रताप, विद्वत्ता तथा बौद्ध धर्म ग्रहण करने आदि का बोध होता है। हिन्दुस्तान के यूनानी राजकर्ताओं का इतिहास लिखने में इस पुस्तक से कुछ-कुछ सहायता मिल सकती है। इसका अंग्रेजी अनुवाद 'सेक्रेट बुक्स ऑफ दी ईस्ट नामक सीरीज की ३५वी जिल्द में छपा है।

(उ) मुसलमानो की पुस्तकें—भारतवर्ष के समस्त हिन्दू राज्यो की स्वतंत्रता क्रम-क्रम से मुसलमानो ने नष्ट की, जिनके यहाँ इतिहास लिखने की प्रथा थी, जिससे उनकी लिखी हुई अरबी तथा फारसी भाषा की पुस्तको मे विशेष कर हमारे यहाँ के भिन्न-भिन्न हिन्दू राज्यों का पिछला वृत्तान्त मिल जाता है। उसकी पुस्तकें इतनी है कि उन सब का व्यौरा इस लेख मे देना आवश्यक है। अतएव हम यहाँ पर थोड़े से मुख्य-मुख्य और प्राचीन ग्रंथो का ही उल्लेख करते हैं—

(१) सिलसिलातुत्तवारीख—यह पुस्तक सुलेमान नामक व्यापारी ने ई० स० ८५१ में अरबी भाषा में लिखी थी, जिसमें उसने हिंदुस्तान आदि की अपनी यात्रा का वृत्तान्त दिया है। उसके समय में दक्षिण के मान्य-खेट (मानकेर, निजाम के राज्य मे) नगर में राठौड़ वंश का राजा अमोघ-वर्ष (प्रथम) और कन्नौज में पड़िहार वंश का राजा भोजदेव (प्रमम) राज करता था। सुलेमान ने उक्त दोनों के राज्यो का वृत्तान्त लिखा है। जिसमें राठौड़ के लिये उसने बलहरा शब्द का प्रयोग किया है, जो उनके प्रसिद्ध ख़िताब 'वल्लभराज' का प्राकृत रूप (बलहराय) है।

(२) मुरुजुलजहब—अल्मसूदी ने ई० स० की दसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इस पुस्तक को बनाया था, जिसमें मान्यखेट, कन्नौज आदि के राज्यों का कुछ-कुछ वृत्तान्त है।

उपर्युक्त दोनों पुस्तको का अंग्रेजी साराश सर एच० एम० इलियट की 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया(The History of India as told by its own Historian)' की पहली जिल्द में छपा है।

(३) तहकीक़े हिन्द—प्रसिद्ध मुसलमान ज्योतिषी अबुरिहाँ अल्बेरुनी ने, जो सुलतान महमूद गज़नवी के समय हिन्दुस्तान में आया और जिसने कई बरसों तक यहाँ रहकर सस्कृत पढ़ी थी, ई० स० १०३१ के क़रीब यह किताब अरबी में लिखी थी; जिसमें हिन्दुओं के धर्म संबंधी विचार तथा

भिन्न-भिन्न शास्त्रो के वर्णन के अतिरिक्त कई प्राचीन सवतो का हाल तथा कुछ-कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त भी मिल जाता है। डाक्टर ऐडवर्ड साचू (Dr. Edward Sachau) ने इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है ।

(४) चचनामा—यह पुस्तक ई० स० की ८वी शताब्दी के मध्य के करीब अरबी में बनी थी, जिसका फारसी अनुवाद मुहम्मद अली बिन् हमीद ने ई० स० की तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में किया था । इसमें मुसलमानो के पहिले सिंध पर राज्य करने वाले हिन्दू राजाओ का वृत्तान्त है (जो अन्य किसी प्रकार की सामग्री से नहीं मिल सकता) । सिंध पर से हिन्दू राज्य मिट जाने तथा मुसलमानो का आधिपत्य जमने का हाल अल्बिलाबुरी की बनाई हुई 'फ़ुतूहल्बुल्दान,' मीरमासूम की 'तारीखुस्सिंध' मीरताहिर मुहम्मद की 'तारीख ताहिरी,' 'बेगलर नामा' जो अमीर सय्यद कासिम के बेटे शाह क़ासिमखाँ ने बनवाया था (ग्रंथकर्ता ने अपना नाम नहीं दिया), सय्यद जमाल का तरखॉनामा (जिसको 'अरगूंनामा' भी कहते है), अलीशेरखानी की 'तुहफेतुल्किराम' तथा 'मजमूआउलवारीख़' आदि किताबो से भी मिलता है, परन्तु इन सब में चचनामा पुरानी पुस्तक है । नागरी प्रचारिणी पत्रिका के १२वें भाग मे मुंशी देवीप्रसादजी का लिखा हुआ 'हिन्दुस्तान का इतिहास' नामक लेख जो छप रहा है, उसका दूसरा प्रकरण (सिंध में हिन्दू राज्य) इन्ही पुस्तकों के आधार पर लिखा गया है । इन पुस्तको का ऐतिहासिक साराश उपर्युक्त इलियट साहिब की 'हिस्ट्री ऑफ इडिया' की पहली जिल्द में छप चुका है ।

(५) तारीख़ यमीनी—यह अरबी पुस्तक अल्उत्बी ने ई० स० १०२० में रची थी, जिसमें मुसलमान महमूद ग़ज़नवी की उस समय तक की हिन्दुस्तान पर की गई चढ़ाईयो का वृत्तान्त है । उत्बी, उक्त सुल्तान का समकालीन लेखक होने से उसकी पुस्तक विशेष उपयोगी है ।

(६) तारीखुस्सुबुक्तगीन—इस किताब को ख्वाजह अबुलफज़ल ने ई० स० १०५६ में बनाया था, जिसमें ग़ज़नी के सुल्तान महमूद गजनवी के पुत्र सुलतान नासिरुद्दीन मसूद के समय बनारस, हॉसी आदि पर मुसलमानों की जो चढ़ाइयॉ हुई, उनका हाल है ।

(७) जामेउल्हिकायत—यह पुस्तक मुहम्मदऊफी ने ई० स० की तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखी थी, जिसमे जयसिंह (सिद्धराज), कुमारपाल आदि का वृतान्त मिलता है ।

(८) ताजुलमआसिर—ई० स० १२३० के आस-पास हसन निजामी ने इसकी रचना की थी । इसमे शहाबुद्दीन गौरी और कुतुबुद्दीन ऐबक के समय देहली, अजमेर, मीरट, कोल, अस्नी, बनारस, ग्वालिअर, नेहरवाला (अणहिलवाड़ा) कलिंजर, जालौर आदि के हिन्दू राजाओ पर मुसलमानो ने जो चढाइयां की, उनका हाल है ।

(९) कामिलुत्तवारीख—इब्न असर ने ई० स० १२३० के क़रीब इसका बनाया था । इसमें अब्दुल मलिक की अधीनता में (ई० स० ७७५ में) समुद्र मार्ग से हिन्दुस्तान (काठिआवाड पर) मुसलमानो की चढ़ाई होने, बलब (शायद प्रसिद्ध वल्लभीपुर हो) को विजय करने, तथा बनारस के राजा जयचन्द्र के मारे जाने का वृत्तान्त है ।

उपर्युक्त किताबो (न० ५ से ९ तक) का अग्रेजी साराश इलियट साहिब की, 'हिस्ट्री ऑफ इडिया' की जिल्द दूसरी में छपा है ।

(१०) तबकाते नासिरी—मिन्हाजुस्सिराज ने ई० स० १२५९ में इस पुस्तक की रचना की थी । इसमे उक्त समय तक भिन्न-भिन्न हिन्दू राज्यो पर मुसलमानो की जो-जो चढ़ाइयाँ हुई, उनका विस्तृत वृत्तान्त है । यह पुस्तक इतिहास के लिए बहुत उपयोगी है । रावरटी (Ravarty) साहिब का किया हुआ इसका अग्रेजी अनुवाद बगाल ऐशिआटिक् सोसाइटी की बिब्लिओथिका इडिका नामक सीरीज़ में छपा है ।

(११) तारीखअलाई—प्रसिद्ध हिंदी कवि अमीर खुस्रो ने (जिसका देहांत ई० स० १३३५ में हुआ था) देहली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के समय यह किताब बनाई थी, जिसमें उक्त बादशाह की रणथभोर, मालवा, चित्तौड़, देवगिरि, सिवाना, मलबार, मदुरा आदि पर की गई चढ़ाइयो का हाल है । अमीर खुसरो ने इस पुस्तक में अपने समय की घटनाओ का उल्लेख किया है, अतएव यह पुस्तक उस समय के इतिहास के लिये विशेष उपयोगी है । इसका अग्रेजी साराश इलियट साहब की 'हिस्ट्री ऑव इडिया' की तीसरी जिल्द में छपा है ।

(१२) तारीख फरिश्ता—मुहम्मद कासिम (फरिश्ता) ने अकबर बादशाह के समय में यह किताब बनाई थी, जिसमें देहली, कुलबर्गा (गुलबर्गा) बीजापुर, अहमदनगर, गोलकोडा (गोलकुडा), बराड, बीदर, गुजरात (अहमदाबाद), मालवा (माडू), खानदेश, बंगाल, बिहार, जौनपुर, मुलतान, सिध और ठट्टा तथा काश्मीर के मुसलमान राज्यो का (उस समय तक का) वृत्तान्त अनेक पुस्तकों के आधार पर लिखा है । मुसलमानों के समय के इस देश के इतिहास की यह अपूर्व पुस्तक है और इस

एक ही पुस्तक से भिन्न-भिन्न हिंदू राज्यो के अस्त होने का बहुत कुछ वृत्तान्त मिल जाता है । इसके दो अंग्रेज़ी अनुवाद छप चुके है ।

जिनसे हमारे यहाँ के इतिहास में कुछ सहायता मिल सके, ऐसी अरबी तथा फारसी भाषा की और भी कितनी ही पुस्तकें है, जिनका स्थानाभाव के कारण हम यहाँ पर उल्लेख नही कर सके । उनमें से बहुतो का अग्रेजी सारांश इलियट साहब की 'हिस्ट्री, ऑव इंडिया (जिल्दें ८)' तथा बेले साहिब (Sir E C Baylay) की 'हिस्ट्री ऑव गुजरात' में छपा है ।

(ग) प्राचीन शिलालेख और ताम्रपत्र

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिये सब से अधिक सहायता देने वाले शिलालेख और ताम्रपत्र [दानपत्र] है । शिलालेख बहुधा चट्टानो, स्तम्भों मदिर, मठ, स्तूप, तालाब, बावडी आदि में लगी हुई अथवा गावो और खेतो के बीच गड़ी हुई पत्थर की शिलाओ, मूर्तियों के आसनो तथा स्तूपो के अन्दर रखे हुए पाषाण के पात्रो पर (जिनमें बहुधा किसी धर्माचार्य की हड्डी आदि रक्खी जाती थी) खुदे हुए होते है और संस्कृत, प्राकृत, तामिल, कनाड़ी आदि भारतवर्ष की भिन्न.भिन्न भाषाओं में (गद्य तथा पद्य) दोनो में मिलते है । जिनमें राजा आदि की प्रशंसा होती है, उनको प्रशस्ति भी कहते है । शिलालेख पिशावर से कन्याकुमारी तक और द्वारिका से आसाम तक सर्वत्र मिलते है, कही कम कहीं अधिक । नर्मदा से उत्तर के प्रदेश की अपेक्षा दक्षिण में ये बहुत अधिक मिलते है, जिसका कारण यह है कि उधर मुसलमानो का अत्याचार उत्तर की अपेक्षा बहुत कम हुआ । अब तक कई हजार शिलालेख मिल चुके है । जिनमें सबसे पुराना ई० स० ४५० के आस-पास का शक्य जाति के क्षत्रियों के बनाए हुए पिप्रावा (नेपाल की तराई में) के स्तूप से निकले हुए पत्थर के पात्र पर (जिसमें बुद्धदेव की हड्डियाँ रक्खी गई थी) खुदा हुआ है और सबसे पिछले ई० स० की १९वी शताब्दी के कई एक मिले है । शिलालेखों में से अधिकतर धर्म संबधी कामों अर्थात् मंदिर, मठ, स्तूप, गुफा, तालाब आदि के बनवाने या उनका जीर्णोद्धार कराने, मूर्तियो के स्थापन करने या किसी प्रकार का दान देने के सूचक होते है । जिसमें से कितने ही में उक्त धर्म कार्य से संबंध रखने वाले व्यक्ति के अतिरिक्त उस समय के वहाँ के राजा वा उस (राजा) के वश का भी वृत्तान्त होता है । राजवशियो के बनवाये हुए मंदिरादि के लेखो में कभी-कभी विशेष रूप से उनके वश का वृत्तान्त मिलता है । दूसरे प्रकार के शिलालेखों (अर्थात जिसका

है । कितने एक ताम्रपत्र एक ही पत्रे पर खुदे होते है, परन्तु प्राचीन ताम्रपत्र बहुधा अधिक पत्रो पर खुदे हुए मिलते है, जिनमें से पहिला तथा अन्तिम पत्र एक ही (भीतर की) ओर खुदा रहता है, और सब पत्रे कड़ियो से जुड़े रहते है । ताम्रपत्र अधिकतर दान के ही सूचक होते है, जिनमें दान देने वाले और लेने वाले के नाम आदि के अतिरिक्त दान देने वाले (राजा, सामंत) के वंश का वृत्तान्त भी होता है । अब तक सैकडो ताम्रपत्र मिल चुके है ।

प्राचीन शिलालेख और ताम्रपत्र हमारे प्राचीन इतिहास के लिये बहुत ही उपयोगी है, क्योकि इनसे मौर्य, शातकर्णी (आंध्रभृत्य), शक, क्षत्रप, कुशन, (तुर्क), अभीर, गुप्त, पल्लव, हूण, यौधेय, बैंश, लिच्छवि, मौखरी, मैत्रक, गुहिल, सोलंकी, पडिहार, परमार, चौहान, राठौड़, कछवाहा, तंवर, कलचुरी (हैहयवन्शी), चन्देल, यादव, गुर्जर, पाल, सेन, कदम्ब, शिलारा, सेंद्रक, काकतीय, नाग, निकुम्भ, गंगा, बाण, चोल आदि कितने ही राज-वशों का बहुत कुछ वृत्तान्त, उनकी वशावलियाँ तथा अनेक राजाओं के राज्याभिषेक तथा देहात के निश्चित् संवत् मिलते है । इतना ही नहीं, किंतु अनेक विद्वान्, धर्माचार्य, धनाढ्य, दानी, वीर आदि प्रसिद्ध पुरुषों के नाम तथा उनके निश्चित समय आदि का भी पता चलता है एवम् अनेक प्राचीन संवतो के नाम तथा उनके प्रारम्भ का निर्णय होता है और कई दूसरी आवश्यकीय बातें जानी जाती है ।

पत्थर और तांबे के पत्रों के अतिरिक्त लोह के स्तम्भो पर भी कुछ लेख खुदे हुए मिले हैं, जिनमें मुख्य देहली के प्रसिद्ध कुतुबमीनार के पास खड़े हुए लोह के स्तम्भ (कीली) पर खुदा हुआ गुप्तवशी प्रतापी राजा चन्द्र (चन्द्रगुप्त दूसरे) का लेख है, जिसमें उक्त राजा की विजय (बगाल से बलूचिस्तान तक) का उल्लेख है ।

शिलालेख और ताम्रपत्र अनेक पुस्तको में छपे है, जिनमें से मुख्य नीचे लिखी हुई है—

एपिग्राफिआ इंडिका (जिल्दें ९), साउथ इंडिअन् इन्स्क्रिपशन्स (जिल्द ३), एपिग्राफिआ कर्णाटिका (जिल्द १२), इंडिअन् एटिक्वेरी, तामिल ऐंड सस्कृत इन्स्क्रिपशन्स (डा० बर्जेस और नटेश शास्त्री-संपादित), गुप्त इन्स्क्रिपशन्स (डा० फ्लीट सम्पादित), अशोक इन्स्क्रिपशन्स (जनरल कनिंगहाम सम्पादित), एशिआटिक सोसाइटी बंगाल, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी और बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल, बियाना ओरि-एंटल जर्नल, जर्नल एशियाटिक, अमेरिकन् ओरिएटल सोसाइटी के

जर्नल, एशियाटिक रिसर्चेज, भावनगर इन्स्क्रिपशन्स, भावनगर प्राचीन शोध संग्रह (प्रथम भाग विजयशंकर गौरीशंकर ओझा सम्पादित), आर्किआलोजिकल सर्वे की रिपोर्टें (जनरल कनिंगहाम सम्पादित जिल्दें २३), आर्किआलोजिकल सव की रिपोर्टें (डाक्टर बर्जेस सम्पादित जिल्दें ५), आर्किआलोजिकल सर्वे की रिपोर्टें (जिल्दें २—सन् १९०२—३ और १९०३—४ की), पाली, संस्कृत ऐंड ओल्ड कनड़ी इंस्क्रिपशन्स (डा० बर्जेस और फ्लीट सम्पादित), ट्रांसलेशंस ऑफ इंस्क्रिपशन्स फ्रॉम बेलगांव ऐंड कलाड़गी डिस्ट्रिक्टस (डॉ० फ्लीट और हरिवामन लिमया सम्पादित), इस्क्रिपशन्स फ्रॉम दि केव टेम्पल्स ऑफ वेस्टर्न इडिया (डा० भगवानलाल इंद्रजी और डा० बर्जेस सम्पादित) और आर्किआलोजिकल सर्वे की प्रोग्रेस रिपोर्टें आदि ।

(घ) प्राचीन सिक्के मुद्रा और शिल्प

(अ) प्राचीन सिक्के—भारतवर्ष में चलनेवाले सोने, चादी और तांबे के हजारो प्राचीन सिक्के मिल चुके है, और समय२ पर मिलते ही रहते हैं । ये सिक्के भी हमारे इतिहास में बड़ा काम देते हैं । ई० स० पूर्व की चौथी शताब्दी के पहले समस्त भारतवर्ष में चलनेवाले सिक्कों पर (जो चतुरस्त्र और गोल दोनो प्रकार के होते थे) राजाओ के नाम नही, किंतु सूर्य, चन्द्र, धनुष, पशु, पक्षी, वृक्ष, स्तूप, तारे आदि अनेक भिन्न-भिन्न चिह्नो के ठप्पे ही लगाए जाते थे । ऐसे प्राचीन सिक्के इतिहास में कुछ भी सहायक नही हो सकते । सिकन्दर की चढ़ाई के पीछे और खासकर बाक्ट्रिया के यूनानियो का राज्य काबुल, पंजाब आदि पर होने के समय से हमारे सिक्को में बहुत कुछ सुधार हुआ, और यूनानियो के सिक्को का अनुकरण किया जाकर उनपर राजाओं के नाम आदि अंकिल होने लगे । इस देश में सुन्दरता के साथ बने हुए सिक्के प्रथम बाकट्रिया के युनानी राजाओं ने चलाए, जिनकी एक तरफ प्राचीन यूनानी लिपि में यूनानी भाषा का लेख (जिसमें राजा का नाम तथा खिताब होता था) और दूसरी ओर खरोष्टी (गाधार) लिपि मे (जो फारसी की नाईं उलटी पढ़ी जाती है), बहुधा उसी आशय का (संस्कृत मिश्रित प्राकृत भाषा का लेख[1] मिलता है । यूनानियो के पीछे शको ने भी इस

(1) इन सिक्को पर लेख दोनो तरफ बहुधा किनारो के पास है । बीच मे एक तरफ राजा का चेहरा पूरी तस्वीर या और कोई चिह्न, एवं दूसरी ओर किसी देवी-देवता या जानवर आदि की तस्वीर होती है ।

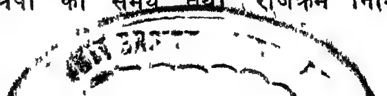
देश पर अपना आधिपत्य जमाया जिनके सिक्के[1] भी यूनानियों के सिक्के की शैली के बनते रहे। इसी तरह के कुशनवन्शियो के सिक्के भी बनें, परन्तु उनके पिछले सिक्कों में दोनो तरफ ग्रीक लिपि के ही लेख हैं। पश्चिमी क्षत्रपों के सिक्कों[2] पर एक तरफ प्राचीन देवनागरी लिपि के और दूसरी ओर यूनानी लिपि के लेख मिलते हैं, परन्तु चष्टन के बाद के राजाओ के समय यहाँ वालो को यूनानी भाषा का ज्ञान रहा हो, ऐसा अनुमान नही होता, क्योकि उन सिक्को पर के यूनानी लेखो से यही पाया जाता है कि उन पर 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' की तरह लोग यूनानी अक्षरों की नक़ल बना देते थे, जिनसे कुछ भी आशय नहीं निकलता। ई० स० की चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में गुप्तों के प्रतापी राज्य का उदय हुआ, जिन्होंने कुशनवन्शियों की शैली का अपने सिक्कों में अनुकरण किया, परन्तु यूनानी लेख को मिटाकर दोनों ओर प्राचीन देवनागरी लिपि का लेख रक्खा, एवम् युनानी, ईरानी आदि देवी-देवताओ की तस्बीरों के स्थान पर हिन्दुओ के देवी-देवताओ की तस्वीरें (उस पर) बनवाईं। गुप्तों के समय से हिंदू शैली के सुन्दर सिक्के बनने लगे, परन्तु उन (गुप्तो) के बाद समय के साथ सिक्को की कारीगरी में फिर भद्दापन आने लगा। यह सब परिवर्तन बहुधा नर्मदा के उत्तर में चलनेवाले सिक्कों में हुआ। दक्षिण के सिक्को पर विदेशियो के सिक्कों का प्रभाव बहुत ही कम पड़ा। जिससे बहुत अरसे तक वहाँ पर प्राचीन शैली के अर्थात् बिना लेख के सिक्के ही चलते रहे। (सातवाहनवन्शी राजाओं के सिक्कों में नवीन शेली का अनुकरण पाया जाता है) पीछे से वहाँ के सिक्कों पर भी राजाओ के नाम आदि अकित होने लगे, परन्तु उनमें सुन्दरता कम पाई जाती है।

अबतक यूनानी. शक, क्षत्रप, कुशन, (तुर्क), आंध्र, मौखरी, मैत्रक, (वल्लभी के राजकर्ता), परिव्राजक (डाहलदेश के जोगिया राजा),

---

1 शको के सिक्के यूनानियो के सिक्को जैसे सुन्दर नही है। उनमे क्रम-क्रम से भद्दापन आता गया।

2 पश्चिमी क्षत्रपो के सिक्को पर एक तरफ राजा का सिर तथा संवत् का अक, और दूसरी तरफ बीच मे चैत्य का चिह्न तथा किनारे के निकट प्राचीन नागरी लिपि का लेख है। जिसमे राजा का तथा उसके पिता का नाम और उनके खिताबो का उल्लेख मिलता है। अत-एव सिक्को के आधार पर क्षत्रपो का समय तथा राजक्रम निश्चित होता है।



हूण, चौहान, पड़िहार, परमार, सोलंकी, तंवर, राठौड़, पाल, कलचुरी (हैहय वन्शी), चन्देल, गुहिलोत, नाग, यादव, काकतीय आदि कई राजवन्शो के तथा काश्मीर, नेपाल, अफगानिस्तान पर राज्य करनेवाले राजवन्शो के सिक्के मिल चुके है। कितने एक प्राचीन सिक्के ऐसे भी मिले है, जिन पर राजा का नाम नही, किन्तु किसी जाति, देश या शहर का नाम मिलता है। जिन राजाओ के नाम प्राचीन पुस्तक, शिलालेख और ताम्रपत्रो में नहीं मिलते। उनमें से कई एक के नाम आदि का पता सिक्को से लग जाता है। डिमिट्रिअस आदि २५ से अधिक यूनानी राजाओ ने अफ़गानिस्तान, पंजाब आदि देशो पर राज्य किया, जिनके नाम बहुधा उनके सिक्को से ही मालूम होते है। इसी तरह शक, क्षत्रप आदि राजवन्शो के कितने ही राजाओ के नाम केवल सिक्कों से जाने जाते है।

प्राचीन सिक्के इतने बहुत और भिन्न-भिन्न प्रकार के मिले है, जिससे पाठकों को उनका कुछ परिचय कराने के लिए भी एक पुस्तक लिखने की आवश्यक्ता रहती है, इसलिए इस छोटे से लेख में केवल उनकी उपयोगिता प्रगट करने के अतिरिक्त उनके विषय में कुछ भी लिखना अशक्य है। हमारे यहाँ के प्राचीन सिक्को का वृत्तान्त और उनके चित्र कितनी ही पुस्तकों में छपे है, जिनमें मुख्य निम्नलिखित है:—

'आरिआना ऐंटिका' (एच० एच० विलसन सगृहीत), जेम्सप्रिसेप् साहिब के 'एसेज ऑफ ऐंटिक्विटीज' (२ जिल्द, एडवर्ड थोमस संपादित), 'कैटेलाग आफ़ दी काइंस आफ़ दी इंडिअन म्यूजिअम' जिल्द पहली (बी० ए० स्मिथ, संपादित), कैटेलाग आफ़ दी काइन्स कलेक्टेड बाइ सी. जे० राजर्स एड परचेज्ड बाइ दी गवर्नमेंट ऑफ दी पंजाब हिस्सा तीसरा (सी. जे. राजर्स संपादित), जनरल कनिंगहाम के 'कॉइंस ऑफ एन्श्यंट इंडिआ'-'काइन्स ऑफ मिडिएवल इंडिआ'—काइन्स ऑफ दी इन्डो सीथिअन्स' और 'लेटर इंडोसीथिअन्स,' सरवाल्टर इलिअट का 'काइन्स आंफ सदर्न इंडिआ,' 'कैटेलाग ऑफ इंडिअन काइन्स इन दी ब्रिटिश म्यूज़िअम, ग्रीक एंड सीदिक किंग्ज ऑफ बाक्ट्रिआ एड इंडिआ' (पर्सीगार्डनर संगृहीत और आर० स्टुअर्टपुल सपादित), 'न्युमिस्मैटिक क्रानिकल,' 'इटरनैशनल न्युमिस्माटा ओरिऐंटेलिआ,' जनरल कनिंगहाम की आर्किआलोजिकल सर्वे रिपोर्ट "इंडिअन् एटिक्वेरी," रायल, बंगाल और बम्बई की एशिआटिक सोसाइटियों के जर्नल आदि।

(आ) प्राचीन मुद्रा—भारतवर्ष में मुद्रा अर्थात् मुहर लगाने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आती है। ताम्रपत्रों पर और कितने ही ताम्रपत्रो की

कड़ियों की संधि पर राजमुद्राएँ लगी हुई मिलती है। कितने ही मिट्टी के गोले ऐसे मिले है, जिन पर भिन्न-भिन्न पुरुषो की मुद्राएँ लगी हुई है। अंगूठियों तथा कीमती पत्थरो पर भी खुदी हुई कई मुद्राएँ मिली है। इन मुद्राओं से भी हमारे यहाँ के प्राचीन इतिहास में कुछ-कुछ सहायता मिल सकती है। कन्नौज के पड़िहार राजा भोजदेव के ताम्रपत्र की मुद्रा में देवशक्ति से भोजदेव तक की पूरी वंशावली तथा चार रानियो के नाम है। वही के राजा विनायकपाल के ताम्रपत्र की मुद्रा में देवशक्ति से विनायकपाल तक की वंशावली और ६ रानियो के नाम है। गुप्तवंश के राजा कुमारगुप्त (दूसरे) की मुद्रा में (जो लखनऊ के म्यूज़िअम में रक्खी हुई है) महाराजगुप्त से लगाकर कुमारगुप्त (दूसरे) तक वंशावली एवं छः राजमाताओ के नाम है। मौखरी सर्ववर्मा की मुद्रा में हरिवर्मा से सर्ववर्मा तक की वंशावली तथा चार रानियो के नाम है। गुप्तवंशी राजा चन्द्रगुप्त (दूसरे) के पुत्र गोविंदगुप्त के नाम का पता एक मिट्टी के गोले पर लगी हुई उस (गोविंदगुप्त) की माता ध्रुवस्वामिनी की मुद्रा से ही लगता है। ऐसे ही कई राजाओ, धर्माचार्यों, धनाढ्यो आदि के नाम उनकी मुद्राओ से मिल जाते है। अब तक २०० से अधिक मुद्राएँ मिल चुकी है, उनका वृत्तान्त एपिग्राफिआ इंडिका, रायल बंगाल, और बम्बई की एशिआटिक सोसाइटिओ के जर्नल, जनरल कनिंगहाम की आर्किआलोजिकल सर्वे की रिपोर्ट्स, इंडिअन एंटिक्वेरी तथा आर्किआलोजिकल सर्वे की एन्युअल रिपोर्ट (सन् १९०३–४ ई० की) आदि पुस्तको में छपा है।

(इ) शिल्प–प्राचीन चित्र, मंदिर, गुफ़ा आदि स्थान तथा प्राचीन मूर्तियाँ भी इतिहास में कुछ सहायता देती है। चित्रो से पोशाक, जेवर आदि का हाल मालूम होने के अतिरिक्त उनके बनाने के समय की चित्र-विद्या की दशा का भी ज्ञान होता है। प्रसिद्ध अजंता की गुफ़ा की दीवार पर के सोलंकी राजा पुलकेशी (दूसरे) के दरबार के रंगीन चित्र से उसके दरबार के ढंग के अतिरिक्त उस समय की वहाँ की पोशाक आदि का हाल मालूम होता है। प्राचीन मंदिर, गुफा आदि से भी उसके बनाने वालों के नाम आदि का लेखो से पता लगाने पर इतिहास लेखक को कुछ-कुछ सहायता मिल जाती है और उनमें खुदी हुई मूर्तियाँ वही काम देती है, जो प्राचीन चित्र देते है। परन्तु यह लिखना अनुचित नही होगा कि हमारे यहाँ की प्राचीन मूर्तियो में वास्तविकता लाने का यत्न किया गया हो, ऐसा पाया नही जाता, क्योकि कई पुरुषो की प्राचीन मूर्तियाँ अब तक विद्यमान है, जिन सबके चेहरे एक से है। प्राचीन चित्र तथा मंदिरादि के फोटो कई पुस्तको में

छपे है, जिनमें मुख्य 'दी पेंटिग्ज ऑफ अजंटा' (दो जिल्दें, जानग्रिफिथ साहब की बनाई), आर्किआलोजिकल सर्वे की भिन्न-भिन्न पुस्तकें आदि हैं ।

उपर्युक्त समस्त सामग्री (क, ख, ग और घ) द्वारा भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास बनाने का यत्न कहाँ तक सफल हो सकता है ? यह जानने की आकांक्षा रखने वाले पाठकों को हम 'भारतीय ऐतिहासिक ग्रंथमालाF' की पहिली जिल्द (जिसमें सोलंकियो का प्राचीन इतिहास छपा है) देखने का आग्रह करते हैं, क्योंकि वह केवल उपर्युक्त सामग्री के आधार पर तैयार की गई है ।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, बनारस (प्राचीन संस्करण)
ई० स० १९०८-९ भाग १३, पृ० ६१-१४१

सम्पादकीय टिप्पण

A पृ० ३७, 'भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री' । यह निबन्ध श्री ओझाजी द्वारा उपरोक्त पत्रिका, भाग १३, ... मे प्रकाशित हुआ था । इतिहास के विद्यार्थियो मे इसकी माग विशेष रहने से उक्त निबन्ध को फिर उन्होने थोडे बहुत परिवर्तन के साथ पुस्तकाकार रूप से वैदिक यन्त्रालय अजमेर मे छपवाकर ई० सन् १९११ (वि० स० १९६८) मे प्रकाशित किया । इस निबन्ध मे उन्ही पुस्तको आदि के नामो का समावेश हुआ है, जिनका कि उस समय श्री ओझाजी को ज्ञान था । इसके बाद इतिहास के क्षेत्र मे पर्याप्त उन्नति हुई है और कितने ही शिलालेख, दानपत्र, सिक्के मुद्राए, पुस्तको आदि का पता लगा है । इतिहास के अज्ञात विषयों पर भी कितने ही विद्वानो ने डा० ओझा वर्णित सामग्री के आधार पर ग्रथो की रचना कर भारतीय इतिहास के भंडार को समृद्ध बनाने का यत्न किया है । तक्षशिला, हरप्पो, मोहनजोदडो आदि की खुदाई मे भी अद्वितीय साधन मिले है, जिनसे भारत की अति प्राचीन सभ्यता और सस्कृति का ज्ञान होता है । पुरातत्वानुसधान के प्रेमियो के उद्योग से ऐतिहासिक क्षेत्र में सतत विकास हो रहा है, यह शुभ लक्षण है । इस निबंध में उल्लिखित कई ग्रंथ प्रकाशित हो गये है, जिससे भारतीय इतिहास लेखन-कला का साधन सुलभ हो गया है ।

B पृ० ३९, पं० ५ राजतरगिणी के दूसरे खंड के कर्ता जोनराज का समय ई० सन् की पन्द्रहवी शताब्दी निश्चित् है । अतएव इस निबन्ध मे जो समय ई० सन्

११४२, राजतरंगिणी दूसरे खंड की रचना का लिखा गया है, वह ठीक नही है। वस्तुत राजतरंगिणी का दूसरा खण्ड जोनराज द्वारा ई० सन् १४४२ मे लिखा गया। सम्भव है, मूल मे लेखक अथवा छापे के दोष से ई० सन् ११४२ रह गया हो।

C पृ० ४१, पृ० २३७ पृथ्वीराज विजय इस महाकाव्य की अजमेर के प्रसिद्ध चौहान महाराजा पृथ्वीराज के दरबारी कवि जयानक द्वारा रचना हुई। यह ऐतिहासिक काव्य संस्कृत भाषा मे है। जयानक काश्मीर का निवासी था और पृथ्वीराज की विद्यमानता मे ही उसने इस बृहद् काव्य ग्रंथ की रचना आरंभ की थी। वह अपना ग्रंथ सम्पूर्ण करने नही पाया कि पृथ्वीराज पर शहाबुद्दीन गौरी की चढाई हुई, जिससे वह उक्त अपूर्ण ग्रंथ को लेकर काश्मीर चला गया। ई० स० की पन्द्रहवी शताब्दी मे जोन-राज द्वारा उस पर संस्कृत भाषा मे टीका लिखी गई। यह ग्रंथ काश्मीर की शारदा लिपि मे लिखा हुआ है और अत्यन्त ही जीर्ण-शीर्ण है। पत्र संख्या क्रम से नही है तथा इसका कितना ही भाग नष्ट हो गया है। डॉ० बुल्हर को काश्मीर के प्राचीन इतिहास की सामग्री का शोध करते समय ई० स० १८७६ मे यह ग्रंथ मिला, जिसको उन्होने दक्कन कॉलेज पूना के पुस्तकालय मे भेट किया है। दक्कन कॉलेज पूना के पुस्तकालय से मूल ग्रंथ मंगवाकर श्री ओझाजी एवं उनके मित्र श्री चन्द्रधर गुलेरी बी० ए० ने पृथ्वीराज विजय महाकाव्य का बडी योग्यतापूर्वक सम्पादन किया, जो वैदिक यन्त्रालय अजमेर मे छपकर श्री ओझाजी द्वारा प्रकाशित होगया है।

D पृ० ४४-४५। यादव राजा सिंघण एवम् धोलका के बघेल (सोलंकी) राणा लावण्यप्रसाद के बीच वि० स० १२८८ मे सधि हुई, वह लेख-पन्चाशिका मे प्रकाशित हुई है। ऊपर वि० स० १२८८ के आगे ११३२ के अक दिये है। इनमे से ११३२ को शक सम्वत् पढ़ना चाहिये, जिसका दक्षिण मे प्रचार है।

E पृ० ५१, प०३। यह ग्रथ सम्पूर्ण रूप से नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा कई भागो मे छपाकर प्रकाशित किया गया है।

F पृ० ६८ प०६। भारतीय ऐतिहासिक ग्रथमाला पहिली जिल्द अर्थात् सोलकियो का प्राचीन इतिहास, श्री ओझाजी द्वारा ई० स० १९०७ मे प्रकाशित हुआ। उसकी केवल छ सौ प्रतिया ही छपी और अब अप्राप्य है।

---

२ क्षत्रियों के गोत्र A

ब्राह्मणों के गौतम, भारद्वाज, वत्स आदि अनेक गोत्र (ऋषि-गोत्र) मिलते है जो उन (ब्राह्मणो) का उक्त ऋषियो के वंशज होना प्रकट करते है। ब्राह्मणों के समान क्षत्रियों के भी अनेक गोत्र उनके शिलालेखादि में मिलते है; जैसे कि चालुक्यो (सोलकियो) का मानव, चौहानो का वत्स, परमारो का वसिष्ठ, वाकाटकों का विष्णुवर्द्धन आदि। क्षत्रियो के गोत्र किस बात के सूचक है, इसके विषय में मैने टॉड राजस्थान के सातवें प्रकरण पर टिप्पणी करते समय प्रसंगवशात् वाकाटक वंश का परिचय देते हुए लिखा था—"वाकाटक-वंशियो के दानपत्रो में उनका विष्णवर्द्धन गोत्र में होना लिखा है। बौद्धायन प्रणीत 'गोत्र-प्रवर-निर्णय' के अनुसार विष्णुवर्द्धन गोत्र वालो का महर्षि भारद्वाज के वंश में होना पाया जाता है। परन्तु प्राचीन काल में राजाओं का गोत्र वही माना जाता था, जो उनके पुरोहितो का होता था। अतएव विष्णुवर्द्धन गोत्र से अभिप्राय इतना ही होना चाहिये कि इस वंश के राजाओं के पुरोहित विष्णुवर्द्धन गोत्र के ब्राह्मण थे।" * कई बरसो तक मेरे उक्त कथन के विरुद्ध किसी ने कुछ भी नहीं लिखा। परन्तु अब उस विषय की चर्चा खड़ी हुई है जिससे उसका स्पष्टीकरण करना आवश्यक प्रतीत होता है।

श्रीयुत चितामणि विनायक वैद्य एम०ए०एल-एल बी० के नाम और उनकी 'महाभारत मीमासा' पुस्तक से हिन्दी प्रेमी परिचित ही है। वैद्य महाशय इतिहास के भी प्रेमी है। उन्होने ई०सन् १९२३ में "मध्य युगीन भारत, भाग दूसरा" नाम की मराठी पुस्तक प्रकाशित की जिसमें हिन्दू राज्यो का उत्कर्ष अर्थात् राजपूतो का प्रारंभिक(अनुमानतः ई०सन् ७५०से १०००तक का) इतिहास लिखने का यत्न किया है। उसमें क्या राजपूत विदेशी है, अग्निकुल की झूठी कल्पना, पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिक आलोचना, क्या अग्निवंशी गूजर है, राजपूतों के गोत्र और आर्य जाति का राजपूताने में बसना आदि विषयो पर

*खड्ङ्गविलास प्रेस(बॉकीपुर)का छपा'हिन्दी टॉड राजस्थान',खड१,पृ०५३०-३१।

सम्पादकीय टिप्पण

A. यह निबध स्वर्गीय डॉ. ओझा द्वारा स्वय के 'राजपूताना का इतिहास' जि० १. और उदयपुर राज्य का इतिहास' जि० १, की परिशिष्ट संख्या ४ में प्रकाशित हो चुका है।

अपना मंतव्य तथा चित्तौर के गुहिलवंशियो, साँभर के चौहानो, कन्नौज के सम्राट्-प्रतिहारों, (पड़िहारों), अनहिलवाडे (पाटण) के चावडो, धार के परमारों, बुंदेलखंड के चँदेलो, चेदि अर्थात् त्रिपुरि के कलचुरियों, बंगाल अथवा मूँगेर के पालवंशियो, दक्षिण के राष्ट्रकूटो (राठौड़ों) आदि का कुछ इतिहास, तथा उस समय की भाषा, धार्मिक परिस्थिति, सामाजिक स्थिति, वर्णव्यवस्था, राजकीय परिस्थिति, मुल्की और फौजी व्यवस्था आदि कई ऐतिहासिक विषयो का समावेश किया है। वैद्य महाशय का यत्न बडा ही सराहनीय है। मेरे इस लेख का उद्देश्य उनके ग्रंथ की समालोचना करना नही, किंतु केवल राजपूतो (क्षत्रियो) के गोत्र के संबंध में मेरा और उनका जो मतभेद है, उसी का निर्णय करना है। वैद्य महाशय ने 'राजपूतो के गोत्र' तथा 'गोत्र और प्रवर' इन दो लेखों में यह बतलाने का यत्न किया है कि क्षत्रियो के जो गोत्र है, वे उनके मूल पुरुषो के सूचक है, पुरोहितो के नही, और पहले क्षत्रिय लोग ऐसा ही मानते थे (पृ० ६१)। अर्थात् भिन्न-भिन्न क्षत्रिय वास्तव में उन ब्राह्मणो की सतति है, जिनके गोत्र वे धारण करते है।

अब इस विषय की जॉच करना आवश्यक है कि क्षत्रियों के गोत्र वास्तव में उनके मूल पुरुषो के सूचक है वा उनके पुरोहितो के, जो उनके सस्कार करते और उनको वेदादि शास्त्रो का अध्ययन कराते थे।

(१) याज्ञवल्क्य स्मृति के आचाराध्याय के विवाह प्रकरण में कैसी कन्या के साथ विवाह करना चाहिये, यह बतलाने के लिये नीचे लिखा हुआ श्लोक है—

अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजां।
पंचमात्सप्तमाद्ध्र्वं मातृत पितृस्तथा। ५३ ।।

आशय—जो कन्या निरोग, भाईवाली, भिन्न ऋषि-गोत्र की हो, और (वर का) माता की तरफ से पॉच पीढी तक और पिता की तरफ से सात पीढ़ी तक का जिससे सबंध न हो; उससे विवाह करना चाहिए।

वि०सं० ११३३ और ११८३ के बीच दक्षिण (कल्याण) के दरबार के चालुक्य (सोलंकी) राजा विक्रमादित्य (छठे) के समय के पंडित विज्ञानेश्वर ने 'याज्ञवल्क्य स्मृति' पर 'मिताक्षरा' नाम की विस्तृत टीका लिखी, जिसका अब तक विद्वानो में बड़ा सम्मान है और जो सरकारी न्यायालयों में भी प्रमाण रूप मानी जाती है। उक्त टीका मे ऊपर उद्धृत किए हुए श्लोक के

B ई.स. १०७६ और ११२६ (स० टि०)।

'असमानार्षगोत्रजां' चरण का अर्थ बतलाते हुए विज्ञानेश्वर ने लिखा है—'राजन्य (क्षत्रिय) और वैश्यों में अपने गोत्र (ऋषि गोत्र) और प्रवरों का अभाव होने के कारण उनके गोत्र और प्रवर पुरोहितो के गोत्र और प्रवर * समझने चाहिएँ †। साथ ही उक्त कथन की पुष्टि में आश्वलायन का मत उद्धृत करके बतलाया है कि राजाओं और वैश्यो के गोत्र वे ही मानने चाहिएँ जो उनके पुरोहितो के हों§। मिताक्षरा के उक्त अर्थ के विषय में श्रीयुत वैद्यजी का कथन है—'मिताक्षरा-कार ने यहाँ ग़लती की है, इसमें हमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है' (पृ० ६०) 'मिताक्षरा के बनने के पूर्व क्षत्रियों के स्वत. के गोत्र थे' (पृ०६१)। इस कथन का आशय यही है कि मिताक्षरा के बनने के पीछे क्षत्रियों के गोत्र उनके पुरोहितों के गोत्रो के सूचक है, ऐसा माना जाने लगा पहले ऐसा नहीं था।

अब हमें यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि मिताक्षरा के बनने के पूर्व क्षत्रियों के गोत्रों के विषय में क्या माना जाता था। वि० सं० दूसरी शताब्दी के प्रारंभ में अश्वघोष नामक प्रसिद्ध विद्वान् और कवि हुआ, जो पहले ब्राह्मण था, परन्तु पीछे से बौद्ध हो गया था। वह कुशनवंशी राजा कनिष्क का धर्मसंबधी सलाहकार था, ऐसा माना जाता है। उसके 'बुद्धचरित' और 'सौंदरानंद काव्य' कविता की दृष्टि से बड़े ही उत्कृष्ट समझे जाते हैं। उसकी प्रभावोत्पादक कविता सरलता और सरलता में कवि-शिरोमणि कालिदास की कविता के जैसी ही है; और यदि कालिदास की समता का पद किसी कवि

---

* प्रत्येक ऋषिगोत्र के साथ बहुधा तीन या पाँच प्रवर होते है जो उक्त गोत्र (वंश) मे होने वाले प्रवर (परम प्रसिद्ध) पुरुषो के सूचक होते है। कश्मीरी पण्डित जयानक अपने 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' मे लिखता है—

काकुत्स्थमिक्ष्वाकुरघू च यद्दधत्पुराभवत्त्रिप्रवर रघो: कुलम्।
कलावपि प्राप्य स चाहमानता प्ररूढतुर्यप्रवर बभूव तत्॥२।७१॥

आशय—रघु का वश (सूर्यवश) जो पहले (कृतयुग मे) काकुत्स्थ, इक्ष्वाकु और रघु इन तीन प्रवरोवाला था, वह कलियुग मे चाहमान (चौहान) को पाकर चार प्रवरवाला हो गया।

†राजन्यविशा प्राप्तिस्विकगोत्राभावात् प्रवराभावस्तथापि पुरोहितगोत्रप्रवरौ वेदितव्यो (मिताक्षरा, पृ० १४)।

§ तथा च यजमानस्यार्षेयान् प्रवृणीत इत्युक्त्वा पौरोहित्यान् राजविशां प्रवृणीते इत्याश्वलायन:। (वही, पृ० १४)।

को दिया जाय तो उसके लिये अश्वघोष ही उपयुक्त पात्र हो सकता है। उसको हिन्दुओ के शास्त्रों तथा पुराणो का ज्ञान भी अनुपम था, जैसा कि उसके उक्त काव्यों से पाया जाता है। सौदरानंद काव्य के प्रथम सर्ग में उसने क्षत्रियों के गोत्रो के संबंध में जो विस्तृत विवेचन किया है, उसका सारांश नीचे लिखा जाता है—

"गौतम गोत्री कपिल नामक तपस्वी मुनि अपने माहात्म्य के कारण 'दीर्घतपस्' के समान और अपनी बुद्धि के हेतु काव्य (शुक्र) और अंगिरस के समान था। उसका आश्रम हिमालय के पार्श्व में था। कई इक्ष्वाकुवंशी राजपुत्र मातृद्वेष के कारण और अपने पिता के सत्य की रक्षा के निमित्त राजलक्ष्मी का परित्याग कर उस आश्रम में जा रहे। कपिल उनके उपाध्याय (गुरु) हुए, जिससे राजकुमार जो पहले कौत्स गोत्री थे, अब अपने गुरु के गोत्र के अनुसार गौतम गोत्री कहलाए। एक पिता के ही पुत्र भिन्न-भिन्न गुरुओ के कारण भिन्न-भिन्न गोत्र के हो जाते है। जैसे कि राम (बलराम) का गोत्र 'गार्ग्य' और वासुभद्र (कृष्ण) का 'गौतम' हुआ। जिस आश्रम मे उन राजपुत्रों ने निवास किया, वह 'शाक' नामक वृक्षों से आच्छादित होने के कारण वे इक्ष्वाकुवंशी 'शाक्य' नाम से भी प्रसिद्ध हुए। गौतम ने अपने वंश की प्रथा के अनुसार उन राजपुत्रो के संस्कार किए और उक्त मुनि और उन क्षत्रिय-पुंगव राजपुत्रों के कारण उस आश्रम ने एक साथ 'ब्रह्मक्षेत्र' की शोभा धारण की *

यही मत बौधायन, आपस्तब और लौगाक्षी का है (पुरोहित प्रवरो राज्ञाम्) देखो 'गोत्र प्रवर निबधकदबम्,' पृ० ९० ।

बुंदेला राजा बीरसिह देव (वरसिह देव) के समय मित्रमिश्र ने 'वीरमित्रोदय' नामक ग्रथ लिखा था। उसमे भी क्षत्रियो के गोत्र उनके पुरोहितो के गोत्रो के सूचक माने है—

तत्र द्विविधा: क्षत्रिया· केचिद्विद्यमान मत्रदृश केचिदविद्यमान मत्रदृशः। तत्र विद्यमान मत्रदृश स्वीयानेव प्रवरान्प्रवृणीरन्। येत्वविद्यमान मंत्रदृशास्ते पुरोहितप्रवरान् प्रवृणीरन्। स्वीय वरत्वेपि स्वस्य पुरोहितगोत्रप्रवरपक्ष एव मिताक्षराकारमेधातिथिप्रभृतिभिराश्रित:

'वीरमित्रोदय,' सस्कार प्रकाश, पृ० ६५९ ।

*गौतम: कपिलो नाम मुनिधर्म्मभृता वर: ।
बभूव तपसि श्रान्तः कक्षोवानिव गोतम: ।। १ ।।
माहात्म्यात् दीर्घतपसो यो द्वितीय इवाभवत् ।
तृतीय इव यश्चाभूत् काव्याङ्गिरसयोर्द्धिया ।। ४ ।।

अश्वघोष का यह कथन मिताक्षरा के बनने से १००० वर्ष से भी अधिक पूर्व का है; अतएव श्रीयुत वैद्य के यह कथन कि 'मिताक्षराकार ने गलती की है और मिताक्षरा के पूर्व क्षत्रियों के स्वतः के गोत्र थे' सर्वथा मानने योग्य नहीं है; और क्षत्रियों के गोत्रों को देखकर यह मानना कि ये क्षत्रिय उन ऋषियों (ब्राह्मणों) के वंशधर है जिनके गोत्र वे धारण करते है, सरासर भ्रम ही है। पुराणों से यह तो पाया जाता है कि अनेक क्षत्रिय ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए और उनसे कुछ ब्राह्मणों के गोत्र चले*; परन्तु उनमें यह कही लिखा नही मिलता कि क्षत्रिय ब्राह्मणो के वंशधर है।

तस्य विस्तीर्णतपस पार्श्वे हिमवत: शुभे।
क्षेत्र चायतनच्चैव तपसामाश्रयोऽभवत् ॥ ५ ॥
अथ तेजस्विसदनं तपक्षेत्र तमाश्रमम्।
केचिदिक्ष्वाकवो जग्मू राजपुत्रा विवत्सव ॥१८॥
मातृशुल्कादुपगता ते श्रियं न विषेहिरे।
ररक्षुश्च पितु: सत्यं यस्माच्छिश्रियिरे वनम् ॥२१॥
तेषा मुनिरुपाध्यायो गोतम: कपिलोऽभवत्।
गुरोर्गोत्रादत: कौत्सास्ते भवन्ति स्म गौतमा· ॥२२॥
एकपित्रोर्यथा भ्रात्रो· पृथग्गुरुपरिग्रहात्।
राम एवाभवदु गार्ग्यो वासुभद्रोऽपि गोतम: ॥२३॥
शाकवृक्षप्रतिच्छन्न' वासं यस्माच्च चक्रिरे।
तस्मादिक्ष्वाकुवश्यास्ते भुवि शाक्या इति स्मृता· ॥ २४ ॥
स तेषा गोतमश्चक्रे स्ववशसदृश: क्रिया. ॥ २५ ॥
तद्वन मुनिना तेन तैश्च क्षत्रियपुङ्गवै·।
शान्ता गुप्ता च युगपद् ब्रह्मक्षत्रश्रिय दधे ॥ २७ ॥
—सौदरानंदकाव्य। सर्ग १।

* सूर्यवंशी राजा माधाता के तीन पुत्र पुरुकुत्स, अंबरीष और मुचकुंद हुए। अंबरीष का पुत्र युवनाश्व और उसका हरित हुआ, जिसके वशज अगिरस हारित कहलाए और हारित गोत्री ब्राह्मण हुए।

तस्यामुत्पादयामास माधाता त्रीन्सुतान्प्रभु. ॥ ७१ ॥
पुरुकुत्समम्बरीष मुचकुदं च विश्रुतम्।
अम्बरीषस्थ दायादो युवनाश्वोऽपर: स्मृत· ॥ ७२ ॥
हरितो युवनाश्वस्य हारिता· शूरय स्मृता:।
एते ह्यङ्गिरस. पुत्रा क्षात्रोपेता द्विजातय ॥ ७३ ॥
—वायुपुराण अध्याय ८८।

यदि क्षत्रियो के गोत्र उनके पुरोहितो (गुरुओ) के सूचक न होकर उनके मूल पुरुषो के सूचक होते जैसा कि श्रीयुत वैद्य का मानना है तो ब्राह्मणो के समान उनके गोत्र सदा वे ही बने रहते और कभी न बदलते। परन्तु प्राचीन शिलालेखादि से ऐसे प्रमाण मिल जाते है जिनसे एक ही कुल या वंश के क्षत्रियो के समय-समय पर भिन्न गोत्रो का होना पाया जाता है। ऐसे थोड़े से उदाहरण नीचे उद्धृत किए जाते है—

मेवाड़ (उदयपुर) के गुहिल वंशियों (गुहिलोतो, गोहिलो, सीसोदियों) का गोत्र वैजवाप है। पुष्कर के अष्टोत्तर-शत लिंगवाले मंदिर मे एक सती का स्तंभ खडा है जिस पर के लेख से पाया जाता है कि वि० स० १२४३ C माघ सुदी ११ को ठ० (ठकुराणी) हीरवदेवी ठा० (ठाकुर) कोल्हण की स्त्री सती हुई। उक्त लेख मे ठा० कोल्हण को गुहिलवंशी और गौतम गोत्री* लिखा है। काठियावाड़ के गुहिल भी, जो मारवाड के खेड़ इलाके से वहाँ गए है और जो मेवाड के राजा शालिवाहन के वंशज है, अपने को गौतम गोत्री मानते है। मध्य प्रदेश के दमोह जिले के मुख्य स्थान दमोह से गुहिल वंशी विजयसिंह का एक शिलालेख मिला है, जो इस समय नागपुर म्युजिअम मे सुरक्षित है। वह लेख छंदो-बद्ध डिंगल भाषा मे खुदा है और उसी के अंत का थोड़ा-सा अंश संस्कृत मे भी है। पत्थर का कुछ टुकडा टूट जाने के कारण संवत् जाता रहा है। उसमे गुहिल वंश के चार राजवंशियो के नाम क्रमश विजयपाल, भुवनपाल, हर्षराज और विजयसिंह दिए है, जिनको विश्वामित्र गोत्री† और गुहिलोत ‡ (गुहिल।

अंबरीषस्य मांधातुस्तनयस्य युवनाश्व पुत्रोभृत्। तस्माद्धरितो यतोऽंगिरसो। हारिता ।। ५ ।। —विष्णुपुराण। अंश ४, अध्याय ३।

विष्णुपुराण की टीका मे—

अंबरीषस्य युवनाश्व प्रपितामहसनामा यतो हरिताद्धारिता अंगिरसो द्विजा हरितगोत्र प्रवराः। (पृ० ६।१)।

चंद्रवंशी राजा गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने ब्रह्मत्व प्राप्त किया और उनके वंशज ब्राह्मण हुए जो कौशिक गोत्री कहलाते है। पुराणो मे ऐसे बहुत से उदहारण मिलते हैं।

* राजपूताना म्युजिअम् (अजमेर) की ई० सन् १९२०-२१ की रिपोर्ट, पृ० ३, लेखसंख्या ५।

† विसामित्त गोत उत्तिम चरित विमल पवित्तो० (पंक्ति६ठी, डिंगल भाग मे) विस्वा (श्वा) मित्रे सु(शु) भे गोत्रे (पंक्ति २६, संस्कृत अंश में)।

‡ विजयसीहु धूर चरणो चाई सूरोऽसुमणो। सेलखहक्रम कुशलो गुहिलौतो

C ई० स० ११४७। (सं० टि०)।

बतलाया है। ये मेवाड से ही उधर गए हुए प्रतीत होते है, क्योंकि विजयसिंह के विषय में लिखा है कि वह चित्तौड़ की लडाई मे लड़ा और उसने दिल्ली की सेना को परास्त किया *। इस प्रकार मेवाड के गुहिलवंशियो के तीन भिन्न गोत्रों का पता चलता है।

इसी प्रकार चालुक्यो (सोलंक्यो) का मूल गोत्र मानव्य था और मद्रास अहाते के विशाखपट्टन (विजगापट्टम्) जिले के जयपुर राज्य (जमीदारी) के अन्तर्गत गुणपुर और मोडगुला के ठिकाने अब तक सोलकियो के ही है और उनका गोत्र मानव्य † ही है, परन्तु लूणावाडा, पीथापुर और रीवाँ आदि के सोलकियो (बघेलों) का गोत्र भारद्वाज होना श्रीयुत वैद्य महाशय ने बतलाया है (पृ० ६४)।

इस प्रकार एक ही वंश के राजाओ के भिन्न-भिन्न गोत्र होने का कारण यही मानना पड़ता है कि राजपूतो के गोत्र उनके पुरोहितो के गोत्रो के ही सूचक है, और वे अलग-अलग जगह जा बसे, तब वहाँ जिसको पुरोहित माना, उसी का गोत्र वे धारण करते रहे।

राजपूतो के गोत्र उनके वंशकर्ता के सूचक न होने तथा उनके पुरोहितो के गोत्रो के सूचक होने के कारण पीछे से उनमें गोत्र का महत्त्व कुछ भी रहा हो, ऐसा पाया नही आता। केवल पुरानी रीति के अनुसार संकल्प, श्राद्ध आदि में उसका उच्चारण होता रहा है। सोलंकियों का प्राचीन गोत्र मानव्य था और अब तक भी कही-कही वही माना जाता है। गुजरात के मूलराज आदि सोलंकी राजाओ का गोत्र क्या माना जाता था, इसका कोई प्राचीन लिखित प्रमाण नहीं मिलता तो भी संभव है कि या तो मानव्य या भारद्वाज हो। परन्तु उनके पुरोहितों का गोत्र वसिष्ठ ‡ था, ऐसा गुर्जरेश्वर पुरोहित सोमेश्वर देव के 'सुरथोत्सव काव्य' से निश्चित है। आज भी राजपूताने आदि के राजपूत राजाओ के गोत्र उनके पुरोहितों के गोत्रो से बहुधा भिन्न ही है।

ऐसी दशा में यही कहा जा सकता है कि राजपूतो के गोत्र सर्वथा उनके वंशकर्ताओ के सूचक नही, किन्तु पुरोहितों के गोत्रो के सूचक होते थे, और कभी कभी पुरोहितों के बदलने पर गोत्र भी बदल जाया करते थे। यह रीति उनमें उसी समय तक बनी रही, जब तक कि पुरोहितो के द्वारा उनके वैदिक

सत्व गुणे (पं० १३–१५, डिंगल भाग मे)।

* जो चित्तोडहुँ जुझिअउ जिण ढिलीदलु जित्तु (प० २१)।

† 'सोलंक्यो का प्राचीन इतिहास, भाग १, पृ० २०४।

‡ नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन सस्करण); भाग ४ पृ० २।

सस्कार होकर प्राचीन शैली के अनुसार वेदादि पठन-पाठन का क्रम उनमें प्रचलित रहा । पीछे तो वे गोत्र नाम मात्र के रह गए । केवल प्राचीन प्रणाली को लिए हुए संकल्प, श्राद्ध आदि में गोत्रोच्चार करने के अतिरिक्त उनका महत्त्व कुछ भी न रहा और न वह प्रथा रही कि पुरोहितों का जो गोत्र हो वही राजा का भी हो ।

ना० प्र० पत्रिका, काशी (न० सस्करण),
भाग ५, सख्या ४, वि स. १६८१ = ई० स० १६२४ ।

३–सेनापति पुष्यमित्र और अयोध्या का शिलालेख

नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ५, अंक १ 'शुग-वन्श का एक शिलालेख' नामक लेख बाबू जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' बी० ए० ने मूल लेख की प्रतिलिपि सहित प्रकाशित किया है (पृ० ६६–१०४) । उसके प्रकाशित होने के पूर्व हाथ से लिखी हुई उसकी एक प्रतिलिपि बाबू जगन्नाथदासजी ने बाबू श्यामसुन्दरदासजी के द्वारा मेरे पास भेजी, जिसको पढ़ते ही मैंने बाबू श्यामसुन्दरदासजी को सूचित किया कि यह लेख बड़े महत्त्व का है; परन्तु जब तक उसकी छाप या फोटो न देखी जाय, तब तक विश्वस्त रूप से उसके संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता । बाब जगन्नाथदासजी ने उसे प्रकाशित कर इतिहास-प्रेमियों का बड़ा उपकार किया है । उन्होने उसकी प्रतिलिपि, नागरी अक्षरांतर, हिंदी अनुवाद एवम् अक्षरो के विषय में विस्तृत विवेचन किया है, और उसके सम्बन्ध में विशेष रूप से किसी अवसर पर फिर लिखने की इच्छा प्रकट की है। अपना लेख प्रकाशित हो जाने के पश्चात् उन्होने कृपाकर उक्त लेख पर से उठाई हुई छाप भी मेरे पास भिजवाई, जिसके लिये मै उनका बहुत ही अनुगृहीत हूँ । इस छोटे से लेख के मिलने से शुग वन्श के इतिहास सबंधी कितनी एक सशय युक्त बातो का निर्णय होने के अतिरिक्त शुगों के इतिहास पर कुछ नया प्रकाश भी पड़ा । अतएव उस पर मै इस लेख के द्वारा अपने कुछ विचार प्रकट करता हूँ, जैसा कि मैंने उक्त लेख के अन्त की सम्पादकीय टिप्पणी मे उल्लेख किया था ।

वह लेख दो पक्ति का है । पहली पंक्ति का आदि और अन्त का कुछ कुछ अंश नष्ट हो गया सा जान पड़ता है, और दूसरी पक्ति का तो केवल दाहिनी ओर का आधा अश ही रक्षित है । तिस पर भी वह पुरातत्त्ववेत्ताओ के लिये कम महत्त्व का नही है । पहली पक्ति का

जो अंश, विद्यमान है, उसका आशय यह है कि 'दो बार अश्वमेध यज्ञ करनेवाले सेनापति पुष्यमित्र के छठे (वशधर) कोशलाधिपति कोशिकी-पुत्र (धन) ·········ने········· । कोशिकीपुत्र के बाद कोशल (अयोध्या) के उस समय के राजा का नाम होना चाहिये, जिसका पहला अक्षर 'ध' स्पष्ट है, और दूसरा 'न' सा प्रतीत होता है । यदि वह 'न' ही हो, तो अयोध्या के जिस राजा का यह लेख है, उसका नाम धनभूति अथवा 'धन' पद से प्रारम्भ होने वाला (धनदेव धनमित्र आदि) होना चाहिये । दूसरी पक्ति के बचे हुए अक्षरो मे पहले दो अक्षर छाप में 'धम' से प्रतीत होते है, जो संभवत 'धर्म' हों । उनका संबंध उनके पूर्व के अक्षरो के साथ था, या पिछलो से है, यह अनिश्चित है । उनके बाद के दो अक्षर 'राज्ञा' से प्रतीत होते है, परन्तु वे सदेहरहित नही है । इन चार अक्षरो के पीछे का अश साफ है, और उसका आशय यह है कि पिता फल्गुदेव का (फल्गुदेव के निमित्त) केतन (स्थान) बनवाया । फल्गुदेव संभवत उक्त कोशलाधिपति के पिता का नाम हो । दूसरी पंक्ति इतिहास के लिये उतनी उपयोगी नही है, जितनी पहली ।

अब उक्त लेख के सम्बन्ध में कुछ विचारणीय बातो का विवेचन नीचे किया जाता है—

कौशिकीपुत्र धन··· ·को पुष्यमित्र का छठा (वन्शधर) और अयोध्या का अधिपति कहा है । कौशिकपुत्र शुंग राज्य का स्वामी नही, किंतु केवल अयोध्या का राजा था, अतएव उसको पुष्यमित्र का कुटुबी मानना युक्तियुक्त है ।

उक्त लेख से शुंगवंशियो का राज्य पश्चिम में अयोध्या तक होना तो निर्विवाद है, परन्तु भरहूत (मध्य भारत) के प्रसिद्ध स्तूप के एक तोरण पर शुंगों के राजत्व काल का एक लेख* खुदा हुआ है, जो राजा गार्गी-पुत (गार्गीपुत्र) विसदेव (विश्वदेव) के पौत्र और गोतिपुत (गोति-पुत्र) आगरजु के पुत्र वाछिपुत (वात्सीपुत्र) धनभूति का है । उक्त लेख से शुगो का राज्य पाटलीपुत्र (पटना) से पश्चिम में मध्य भारत तक होना निश्चित है ।

उक्त लेख में सब से अधिक महत्त्व की बात सेनापति पुष्यमित्र के दो अश्वमेध करने का उल्लेख है । महाभाष्य के कर्ता पतंजलि ने, जो पुष्यमित्र के समय विद्यमान थे, उक्त राजा के यज्ञ† का उल्लेख

* इडियन एटिक्वेरी जि० १४, पृ० १३६ ।
† इह पुष्यमित्रं याजयाम' (महाभाष्य) ।

प्रसंगवशात् किया है, परन्तु उससे यह नहीं पाया जाता कि उसने कौन-सा यज्ञ किया था। महाकवि कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में शुंग वंश का विशेष इतिहास मिलता है। उससे पाया जाता है कि जिस समय सेनापति पुष्यमित्र ने राजसूय (अश्वमेध) यज्ञ किया, उस समय उसका पुत्र अग्निमित्र विदिशा (भिलसा, ग्वालियर राज्य) में शासन करता था। उक्त नाटक में अग्निमित्र के नाम भेजे हुए पुष्यमित्र के एक पत्र का भी उल्लेख है, जिसका आशय यह है—

"यज्ञभूमि से सेनापति पुष्यमित्र स्नेहालिंगन के पश्चात् विदिशास्थित आयुष्मान् कुमार अग्निमित्र को सूचित करता है कि मैंने राजसूय यज्ञ की दीक्षा ग्रहण कर सैकड़ो राजपुत्रों-सहित वसुमित्र की संरक्षा में एक वर्ष में लौट आने के नियम के साथ यज्ञ का निरर्गल (बधन से मुक्त) अश्व छोड़ दिया। सिंधु‡ नदी के दक्षिणी तट पर विचरते हुए उस अश्व को यवनो* (यूनानियों) के अश्वसैन्य ने पकड़ लिया, जिससे दोनों सेनाओं में घोर संग्राम हुआ। फिर वसुमित्र ने अश्व को बलात्

‡ सिंधु अर्थात काली सिंध जो मालवे से निकलकर राजपूताने मे होकर बहती है। सिधु को सिंध मे बहनेवाली सिंधु नदी न मानकर राजपूताने की सिधु (काली सिन्ध) मानने का कारण यह है कि पतञ्जलि ने अपने जीवन-समय की भूतकाल की घटनाओ के उदाहरण देते हुए 'यवनो ने माध्यमिका को घेरा' (अरुर्णद्यवनो माध्यमिका), 'यवनो ने साकेत (अयोध्या) को घेरा' (अरुणद्यवन साकेत) ये दो उदाहरण दिये है। माध्यमिका को इस समय 'नगरी' या 'ताँबावती नगरी' कहते है और वह चित्तौड के प्रसिद्ध किले से ६–७ मील उत्तर मे है। माध्यमिका से आगे बढते हुए यवनो (यूनानियो) की मुठभेड वसुमित्र के साथ होना प्रतीत होता है। महाकवि भवभूति ने अपने 'मालती माधव' नाटक में पद्मावती (पेहोआ, ग्वालियर राज्य मे) के निकट बहनेवाली पारा और सिन्धु नदियो का उल्लेख किया है। वही सिन्धु राजपूताने मे बहने पर काली सिन्ध कहलाती है।

* कालिदास का प्रयोग किया हुआ 'यवन' शब्द काबुल पर राज्य करनेवाले बैक्ट्रिया (बलख) के ग्रीको (यूनानियो) का सूचक है। पुष्यमित्र के समय मे माध्यमिका आदि को घेरनेवाला यूनानी राजा मिनेडर था, जिसके चादी के दो सिक्के मुझे नगरी (माध्यमिका) से मिले है। पुष्यमित्र के अश्वमेध के घोडे को पकडनेवाला यवनो का अश्वसैन्य भी मिनेडर का ही होना चाहिए।

ाननेवाले शत्रुओं को परास्त कर मेरा उत्तम अश्व छुड़ा लिया । जैसे ात्र अंशुमत् के द्वारा वापस लाए हुए अश्व से सगर ने यज्ञ किया, वैसे भी अपने पौत्र द्वारा वापस लाए हुए अश्व से यज्ञ करूँगा । अतएव म्हें यज्ञदर्शन के लिये वधूजन-सहित शीघ्र आना चाहिए ‡ ।"

कालिदास के इस कथन से पुष्यमित्र का एक अश्वमेध करना पाया या; परन्तु अब तक उसकी पुष्टि किसी अन्य पुस्तक या शिलालेख से ही हुई थी । अयोध्या वाले शिलालेख से निश्चित हो गया कि पुष्यमित्र एक ही नहीं वरन् दो अश्वमेध किए थे और कालिदास का कथन ार्वथा ठीक है ।

'कौशिकीपुत्र' अयोध्या के राजा का नाम नही, किंतु उसकी माता के वंश । नाम या गोत्र का सूचक है । प्राचीन काल मे राजाओ, ब्राह्मणो आदि में क से अधिक विवाह करने की रीति प्रचलित थी, इसी से अमुक पुत्र कौन ी रानी या स्त्री से उत्पन्न हुआ, यह बतलाने क लिये उसके नाम के पूर्व ासकी माता के गोत्र वा कुल का परिचय दिया जाता था । भरहूत के ापर्युक्त शिलालेख में गार्गीपुत्र का नाम विश्वदेव, गोतिपुत्र का आगरजू ौर वात्सीपुत्र का नाम धनभूति मिलता है । इसी शैली से अयोध्यावाले शलालेख के कौशिकीपुत्र का नाम धन॰ ॰ (धनभूति या धनदेव या धनमित्र ादि) होना चाहिए ।

पुष्यमित्र मौर्य वश के अंतिम राजा बृहद्रथ का सेनापति था । उसने ापने स्वामी को सेना का निरीक्षण कराते हुए मारकर उसका राज्य छीन लेया । उसने मौर्य साम्राज्य के स्वामी होने पर भी अपना विरुद 'सेनापति' ी रखा और उसका वंश शुग वंश कहलाया । मौर्य राजा अशोक ने बौद्ध ार्म स्वीकार कर वैदिक यज्ञों का होना बंद कर दिया था, परन्तु पुष्यमित्र ो वेद-धर्मानुयायी होने के कारण ही अश्वमेध किए । तिब्बत के बौद्ध ोखक तारानाथ ने लिखा है--'पुष्यमित्र ने मध्य देश से लेकर जालंधर तक े बौद्ध मठ जला दिए और कई विद्वान् बौद्ध भिक्षुओं को मरवा डाला' । कुछ लोगों का यह भी कथन है कि उसने बौद्ध धर्म को नष्ट करने की इच्छा से पाटलीपुत्र के कुक्कुटाराम (विहार) को नष्ट कर दिया और साकल ादेश (पंजाब) में रहने वाले बौद्ध भिक्षुओं को मरवा डाला था । ुष्यमित्र ने धर्म-द्वेष के कारण बौद्धों के साथ ऐसे अत्याचार किए हों, यह

‡ मालविकाग्निमित्र, अंक ५ (ई० स० १९२२ का बम्बई का संस्करण पृ० १०४–५) ।

सम्भव हैA।

'मालविकाग्नि मित्र' मे विदिशा के शासक अग्निमित्र के विषय में लिखा है—"विदर्भ (बरार) के राजा यज्ञसेन के चचेरे भाई माधवसेन से उसने कहलाया कि अपनी बहिन मालविका का विवाह मेरे साथ कर दो। उस समय विदर्भ के राज्य के लिये माधवसेन और यज्ञसेन के बीच विरोध चल रहा था। माधवसेन अपने मंत्री सुमति और मालविका के साथ गुप्त रूप से विदिशा जा रहा था। उस समय में यज्ञसेन के सीमास्थित सेनापति ने माधवसेन को पकड़कर कैद कर लिया। परन्तु सुमति और मालविका बच निकले। इस घटना का समाचार पाते ही अग्निमित्र ने माधवसेन को सकुटुम्ब छोड़ देने के लिये यज्ञसेन से कहलाया, जिसके उत्तर में उसने कहा कि मेरा साला, जो मौर्यों का मंत्री था, आपके यहाँ कैद है। यदि आप उसको छोड़ दें, तो मै माधवसेन को बंधनमुक्त कर दूं। इस उत्तर से क्रुद्ध होकर अग्निमित्र ने यज्ञसेन पर सेना भेज उसे जीत लिया और माधवसेन को छुड़ा लिया। फिर विदर्भ के दो विभाग कर एक यज्ञसेन को और दूसरा माधवसेन को दे वरदा नदी उनके बीच की सीमा नियत कर दी।" इसी प्रकार उक्त नाटक में वसुमित्र को अग्निमित्र का पुत्र, उस (वसुमित्र) की माता का नाम धारिणी और अग्निमित्र की दूसरी स्त्री का नाम ईरावती लिखा है। संस्कृत ग्रंथकारों में से किसी ने शुग वश का इतना विस्तृत विवेचन नही किया। पुराणो में केवल पुष्यमित्र का बृहद्रथ को मारकर उसका राज्य लेना लिखा है¶। बाणभट्ट ने अपने 'हर्षचरित' में सेना का निरीक्षण कराते हुए पुष्यमित्र का बृहद्रथ को मारना बतलाया है†। कालिदास के समय के विषय में विद्वानो में मतभेद है। कोई उसका वि० सं० की पहली शताब्दी में, कोई पाँचवी में, तो कोई छठी में और कोई उससे भी पीछे होना मानते है। पुष्यमित्र वि० सं० के पूर्व की दूसरी शताब्दी के अन्त के लगभग हुआ। यदि कालिदास वि०

¶ इत्येदे दश मौर्यास्तु ये भोक्ष्यन्ति वसुन्धराम्।
सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्य शुङ्गान् गमिष्यति ॥ २६ ॥
पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य स बृहद्रथान्।
कारयिष्यन्ति वै राज्य षट्त्रिंशत्तु समा नृप ॥ २७ ॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय २७२)।

A पुष्यमित्र ने वैदिक धर्म के पुनरोत्थान का कार्य प्रारम्भ किया था और बौद्धो ने उसके विरोध मे विदेशियो का साथ दिया था। अत बौद्धो पर पुष्यमित्र का अत्याचार राजनैतिक दृष्टिकोण से हुआ प्रतीत होता है, न कि धार्मिक दृष्टिकोण या धर्म-द्वेष से। (स० टि०)

स० की पाँचवी शताब्दी में अर्थात् पुष्यमित्र से अनुमान ६०० वर्ष पीछे हुआ हो, तो पुष्यमित्र, अग्निमित्र और वसुमित्र के संबंध की घटनाओं का इतनी बारीकी के साथ उसका वर्णन करना सर्वथा असभव है। कालिदास के ऊपर उद्धृत किए हुए वर्णन को देखते हुए तो यही अनुमान होता है कि वह पुष्यमित्र से बहुत पीछे न हुआ हो और संभवतः उसका वि० स० की पहली शताब्दी में होना मानना अनुचित न होगा।

संस्कृत न जाननेवाले पुस्तक-लेखक संस्कृत ग्रंथो की नक़ल करने में बहुधा संयुक्त व्यञ्जन के दूसरे वर्ण 'य' को 'प' सा लिख देते हैं, जिससे वास्तविक नाम के जानने में कभी-कभी भ्रम उत्पन्न हो जाता है। इसी से कोई-कोई विद्वान् पुष्पमित्र* लिखते है। प्राचीन ब्राह्मी लिपि में 'य' और 'प' में बडा अन्तर† होने से उसमें ऐसा भ्रम हो ही नही सकता। अयोध्या-वाले उक्त लेख में पुष्यमित्र नाम है, जिसको कोई पुष्पमित्र नहीं पढ सकता। अतएव उक्त लेख से यह भी निश्चय हो गया कि उक्त राजा का नाम पुष्पमित्र मानना भ्रम ही है।

ना० प्र० पत्रिका, काशी, [न० स०]
भाग ५, सं० २, वि० सं० १९८१ ई० स० १९२४

---

४ मालवे पर वलभी-नरेशों का अधिकार

गुप्त वंश के राजा स्कंदगुप्त के बाद हूणो की चढ़ाई के समय जब गुप्त साम्राज्य के खड-खंड हो गये तो उनके सेनापति जहाँ जिसको भूमि मिली उस पर अधिकार कर राजा बनने का उद्योग करने लगे। उसी समय गुप्तों के भटार्क नामक एक सेनापति ने काठियावाड़ पर अधिकार जमाकर उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और उसने अपनी राजधानी वलभीपुर को

एवं मौर्या दशभूपतयो भविष्यन्ति अब्दशत सप्तत्रिशदुत्तरते पृथिवी शुगा भोक्ष्यन्ति ॥८॥ तत पुष्यमित्र सेनापति. स्वामिनं हत्वा राज्य करिष्यति ॥९॥
(विष्णुपुराण, अंश ४, अध्याय २३)।

† प्रतिज्ञा दुर्बलं च बलदर्शनव्यपदेशदर्शिता शेषसैन्य सेनानीरनार्यो मौर्यं बृहद्रथं दिपेव पुष्यमित्र· स्वामिनं।

(हर्षचरित उच्छ्‌वास ६)

* इंडियन् एटिक्वेरी, जि० ५३, पृ० १२।

† भारतीय प्राचीन लिपिमाला, लिपिपत्र १–१०।

बनाया । प्राचीन शोध से इस वलभी के नवीन राज्य का उदयकाल विक्रम की छठी शताब्दी में ठहरता है ।

भटार्क के लिए प्रसिद्ध है कि वह सूर्यवशी था, और दानपत्रों में इस वंश के लिए मैत्रक शब्द का प्रयोग हुआ है, जो सूर्य (मित्र) से ही सम्बन्ध रखता है । बलभी के ये मैत्रक राजा स्वाधीन राजा थे । भटार्क और उनके पुत्र धरसेन का विरूद सेनापति था । पश्चात् धरसेन के पुत्र द्रोर्णसिह की उपाधि महाराज लिखी हुई मिलती है और वहाँ ऐसा भी लिखा मिलता है कि उसका राज्यभिषेक एक बड़े राजा ने किया । इससे ज्ञात होता है कि बलभी का स्वामी द्रोर्णसिह ही स्वतत्र राजा हुआ । इन मैत्रक राजाओ का राज्य वहाँ पर उन्नीस पीढ़ी तक बना रहा और वि० स० ८२६ (ई० सं० ७६६) के आस-पास वहाँ के अन्तिम राजा शीलादित्य (छठे) के समय सिंध की तरफ से अरबो ने आकर उस राज्य को नष्ट किया ।

भारत के अन्य राज्य वंशो की भाति वलभी के राजाओ ने भी अपना राज्य-विस्तार दूर-दूर तक किया था । उन्होने अपने राज्य में गुप्त संवत् को ही जारी रखा जो पीछे से 'बलभी सवत्' कहलाने लगा । वहाँ देश-देशान्तर के अनेक विद्वानों को बराबर राज्याश्रय मिलता था । उक्त नगर में बौद्धो के अनेक सघाराम (विहार) थे, जिनमें छः हजार बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियाँ रहा करती थीं । भिक्षुणियो के विहार पृथक् थे । उन बौद्ध विहारो के निर्वाह के लिए वहाँ के राजाओ और उनके सामंतो ने गाँव, भूमि आदि दान॰दे रखे थे । जिनके कई दानपत्र मिल चुके हैं । गुणमति तथा स्थिरमति नामक प्रसिद्ध बौद्ध विद्वानो ने वलभी में भी निवास किया था और ईस्वी सन् की पाँचवी शताब्दी के मध्यकाल में देवर्धि गणि क्षमाश्रवण ने वहाँ की धर्म परिषद् में जैन-धर्म-ग्रथों (सूत्रो) को लिपिबद्ध करवाया था। भट्टी काव्य का रचयिता महाकवि भट्टी भी वलभीपुर के राजा धरसेन का आश्रित था । वहाँ के राजाओं के धार्मिक विचार उदार थे, इसलिए वहा सब ही धर्मावलंबी स्वतत्रतापूर्वक विचरते थे । वैदिक धर्मावलंबियो का तो उस समय वह मुख्य स्थान था, क्योंकि बहुधा राजा स्वयं शैवधर्म के उपासक थे । ई० स० १८९८ (वि० स० १९५५) में मैंने काठियावाड़ की यात्रा के समय वहाँ से निकला हुआ एक ही पत्थर का ऐसा बड़ा नंदी देखा जैसा अन्यत्र कही नही पाया गया । नंदी के निकट बड़ा विशाल शिवलिङ्ग भी था । प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यु्एन्त्संग ने ईस्वी सन् ६४० (वि० सं० ६९७) के आस-पास इन नगर को देखा था । उसने अपनी यात्रा की पुस्तक में वहाँ की समृद्धि का बहुत कुछ वर्णन किया है, जिससे वहाँ के पूर्व कालीन वैभव आदि का अच्छा ज्ञान हो जाता है ।

वलभी के इन मैत्रक राजाओं का राज्य काठिवाड़ और गुजरात के अतिरिक्त अधिकाश मालवे पर भी था। मालवे के रतलाम नगर से ई० स० १९०२ में वलभी के ग्यारहवें राजा ध्रुवसेन के समय के दो दानपत्र मिले हैं, उनमें से एक अच्छी स्थिति में है उसका आशय इस प्रकार है कि गुप्त (वलभी) सवत् ३२१A (ई० स० ६४०–६४१ वि० स० ६९७) चैत्र बदि ३······· को महाराज ध्रुवसेन ने दशपुर (मदसोर) प्रदेश के रहनेवाले त्रिवेदी (तिवाड़ी) ब्राह्मण बुधस्वामी के पुत्र दत्तस्वामी को तथा उनके भाई कुमारस्वामी को मालवे के चंद्रपुत्रक (चाँदोरिया) गाँव की दक्षिण सीमा पर सौ भुक्ति (बीघा) माप का क्षेत्र दान किया¶ दूसरे दानपत्र का अधिकाँश भाग बिगडा हुआ है तो भी उससे इतना ज्ञान हो जाता है कि उन्हीं दोनो ब्राह्मणो को गुप्त (वलभी) संवत् ३२० (ई० स० ६३९–४० वि० स० ६९६) में भी उसी गाँव में सौ भुक्ति (बीघा) भूमि दान की गयी थी।

¶···बा [ला] दित्यद्वितीयनामा परममाहेश्वर श्री ध्रुवसेन कुशली सर्व्वानेव यथा सम्बध्यमानकान्समाज्ञापयत्यस्तु वस्संविदितं यथा मया माता-पित्रो पुण्याप्यायनायउदुम्बरगह्वरविनिर्ग्गताय नकाब्राहार (नकाग्रहार) निवा-सिदशपुरत्रैविद्यसामान्यपाराशरसगोत्रमाध्यन्दिन वाजसनेयसब्रह्मचारिब्राह्मण-बुधस्वामि पुत्र ब्राह्मण दत्त स्वामीतथागस्तिकाग्रहार निवासि [३] च्यमानचातु र्व्विद्यसामान्य पाराशरस गोत्रवाजसनेयस ब्रह्मचारि ब्राह्मण बुभ्रस्वामपुत्र (बुधस्वामिपुत्र) ब्राह्मणकुमारस्वामिभ्यॉ मालवके उच्यमान विष [ये] चंद्रपुत्र-कग्रामे दक्षिण सीम्नि भक्तीशतपमाणक्षेत्रं यस्याघ [ा] टनानि पूर्व्वतः धम्मण-हड्डिका ग्रामकङ्कट. दक्षिणतो देवकुलपाट (क) ग्रामकङ्कट अपरतः वीरतर मण्डलि महत्तरक्षेत्रमर्य्यादा उत्तरपश्चिमकोणे निर्ग्गण्डीतडाकिका उत्तरत वीरतरमण्डली एवमेतच्चतुराघाटनविशुद्ध भक्तीशतप्रमाणक्षेत्र··········
उदकातिसर्ग्गेण धर्म्मदायो निसृष्ट [।]············
सं० ३०० २० चैत्र ब ३ स्वहस्तो मम।

आर्कियॉलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, एन्युअल रिपोर्ट, ई० स० १९०२–३, पृ० २३७–३८।

A. अपने कथन की पुष्टि मे डॉ० ओझा ने पाद टिप्पण मे मूल लेख का अश दिया है, वहाँ अंत मे 'स० ३०० २० चैत्र ब ३' 'उल्लिखित है। इससे यह दानपत्र भी गुप्त स० ३२० (ई० स० ६३९–४० वि० सं० ६९६) का होना चाहिये।

(सपा० टि०)

यह चन्द्रपुत्रक गाँव इस समय कहाँ है ? इसका विचार करने पर यह सहज ही मे प्रकट हो जाता है कि वह भूमिदान दशपुर (मंदसोर) प्रदेश के ब्राह्मणों को दिया गया, अतएव, चंद्रपुत्रक गाँव दशपुर (मंदसोर) के निकट होना चाहिए। वे दान-पत्र रतलाम राज्य से मिले हैं, इससे अनुमान होता है कि वह गाँव रतलाम और मंदसोर के बीच में होगा। रतलाम से उत्तर पश्चिम में लगभग ४० मील दूर सैलाना के निकट चाँदोरिआ (Chandoria) नामक ग्राम है, जिसके उत्तर में उतनी ही दूर पर मंदसोर का कस्बा है, जिससे अनुमान होता है कि यह 'चाँदोरिआ' वास्तव में 'चंद्रपुत्रक' का सूचक है और जिस तरह अन्य संस्कृत शब्दो के काल पाकर रूपांनर हो गये हैं, उसी प्रकार 'चंद्रपुत्रक' गाँव के नाम में भी रूपाँतर होकर चाँदोरिया प्रसिद्ध हो गया। उक्त दानपत्रो में 'चद्रपुत्रक' गाँव के सीमा-स्थित गाँवों 'धमणहड्डिका,' 'देवकुलपाटक' आदि का उल्लेख है जो 'धमनोद' और 'दिवेल' के सूचक है। वर्तमान 'चाँदोरिआ' इन दोनों गाँवों के समीप में है। इसलिए इसका वास्तविक नाम 'चंद्रपुत्रक' होने में कुछ भी सदेह नहीं हो सकता।

उपर्युक्त ताम्रपत्रो से यह तो स्पष्ट है कि मालवे में वलभी के राजाओं का राज्य था, जिससे उन्होंने मालवे के ब्राह्मणों को उसी देश में भूमि दी। यदि उनका मालवे पर अधिकार न होता तो वे मालवे में भूमि-दान कदापि नहीं कर सकते थे।

अब यहाँ पर यही प्रश्न बाकी रहता है कि मालवे में वलभी के किस राजा ने अधिकार किया और कब तक वहाँ उनका अधिकार रहा ? इसका स्पष्टीकरण चीनी यात्री ह्युएन्त्संग के यात्रा विवरण से इस प्रकार होता है, कि राजा ध्रुवसेन (वलभी तथा) मालवे के राजा शीलादित्य (प्रथम) का भतीजा था। शीलादित्य के ताम्रपत्र गुप्त (वलभी) सवत् २८६ और २९० (वि० सं० ६६२–६६६ ई० सं० ६०५–६०९) के मिले है। अतएव उसका उपर्युक्त संवतो के आस-पास मालवे का स्वामी होना सिद्ध होता है। संभव है कि शीलादित्य प्रथम ने ही मालवे पर अधिकार किया हो। ध्रुवसेन के समय कन्नौज के वैश्य वंशीB महाप्रतापी राजा श्री (हर्षवर्द्धन) की वलभी पर चढ़ाई हुई, परन्तु फिर उसके और ध्रुवसेन के बीच संधि हो गयी और

B वैश्यवशी से यहा आशय वैश्यवर्ण से लिया जा सकता है, किंतु हर्षवर्द्धन वैश्य वर्ण का नही था। वह क्षत्रिय वर्ण का था, और वैश्यवशी माना जाता है, जो प्राचीन क्षत्रिय वश है।

(सं० टि०)

श्रीहर्ष ने उसे अपनी पुत्री व्याह दी। ध्रुवसेन का मालवे पर अधिकार चला आता था जिससे उसने मालवे में भूमिदान किया और वलभी-विनाश के समय ई० स० ७६९ वि० सं० ८२६ तक वलभी के राजाओ का अधिकार मालवे पर बना रहा होगाC।

'वीणा' (मा० प०), इन्दौर,

अप्रेल सन् १९३४, वि० सं० १९९१।

---

५ गौर नामक अज्ञात क्षत्रिय-वंशA

अनेक पुरातत्ववेत्ताओं और पुरातत्व-विभागो के प्रयत्न से अब तक हजारो शिलालेख प्रसिद्धि में आये है, किंतु गौर वंश का कोई शिलालेख नही मिला था, जिससे उस वंश का अस्तित्व अंधकार में ही रहा। महाराणा रायमल के समय के वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) के एकलिंगजी के मन्दिर के दक्षिण द्वार के सामने की बडी प्रशस्ति में रायमल और मांडू के सुलतान गयासशाह खिलजी के बीच की लड़ाई का वर्णन करते हुए लिखा है—"इस लड़ाई में एक गौर वीर प्रति दिन बहुत से

C राजा यशोधर्म के पश्चात् जबकि उसका सस्थापित राष्ट्र विलीन होने लगा, उस गडबडी मे वल्लभी के नरेशो का मालवे पर अधिकार होना सम्भव है, जो कन्नौज के बैसवशी राजा हर्षवर्द्धन के पीछे भी बहुत वर्षों तक बना रहा। हर्षवर्द्धन के पीछे उसके क्रमानुयायियो की निर्बलता का अवसर पाकर रघुवशी प्रतिहार उत्थान करने लगे, उस समय के आस-पास मालवे से वल्लभी के राजाओ का अधिकार उठ गया और उनका राज्य भी समाप्त हो गया। यह अधिकतया सम्भव है कि हर्षकालीन युग मे वल्लभी के राजा उस (हर्षवर्द्धन) के अधीनस्थ की भाति ही मालवे पर शासन करते हो। (सम्पा० टि०)

A. यह निबन्ध भी डा० ओझा द्वारा उनके 'राजपूताना का इतिहास' जि० २ और 'उदयपुर राज्य का इतिहास' जि० २ के परिशिष्ट संख्या २ में प्रकाशित हो चुका है।

(संपा० टि०)

शकों (मुसलमानों) को मारता था, इसलिये किले के उस शृंग (बुर्ज) का नाम गौरशृग (गौरबुर्ज रखा गया) । फिर रायमल ने उसी शृंग पर चार और गौर योद्धाओं को नियत किया । बडी ख्याति पाया हुआ वह (पहला) गौरवीर मुसलमानों के रुधिरस्पर्श से अपने को अपवित्र जानकर उसकी शुद्धि के लिये सुरसरित् (स्वर्गगंगा) के जल में स्नान करने की इच्छा से स्वर्ग को सिधारा[1] ", अर्थात् मारा गया । इस अवतरण से यह तो पाया जाता है कि इसमें 'गौर' शब्द वन्श-सूचक है, न कि व्यक्ति-सूचक ।

काव्य की चार रीतियो में एक गौड़ी, मद्यो में गौड़ी (गुड़ से बना हुआ मद्य), गौड़वध (काव्य), गौड़पाद (आचार्य), गौड़ (देश), आदि शब्दों से संस्कृत के विद्वान् भली भाँति परिचित थे । ऐसी दशा में प्रशस्तिकार गौड़ के स्थान में गौर शब्द का प्रयोग करें, यह सम्भव नहीं । गौर क्षत्रिय वन्श का कोई लेख न मिलने और उस वन्श का नाम अज्ञात होने के कारण महाराणा रायमल का वृत्तान्त लिखते समय मुझे लाचार होकर गौर क्षत्रियों को गौड़ क्षत्रिय अनुमान करना पड़ा, जो अब मुझे पलटना पड़ता है ।

ई० स० १९३० (वि० सं० १९८७) में मुझे एक मित्र द्वारा यह सूचना मिली कि उदयपुर राज्य के छोटी सादड़ी गाँव से दो मील दूर एक पहाड़ी पर के भमरमाता के मन्दिर में एक शिलालेख है, जो किसी से पढ़ा नहीं जाता । सादड़ी का जिला पहले दक्षिणी ब्राह्मणो की जागीर में

---

1 तन्वान तुमुलं महासिहतिभि श्रीचित्रकूटे गलद्-
गर्वं ग्यासशकेश्वरं व्यरचयत् श्रीराजमल्लो नृप ॥६८॥
कश्चिद्गौरो वीरवर्यः शकौघं युद्धेमुष्मिन प्रत्यहं संजहार ।
तस्मादेतन्नाम काम बभार प्राकाराशश्चित्रकूटैकशृंगम् ॥६९॥
योधानमुत्र चतुरश्चतुरो महोच्चान्
गौराभिधान समधिशृगमसावचैषीत् ।
श्रीराजमल्लनृपति प्रतिमल्लगर्व-
सर्वस्वसंहरणचंडभुजानिवाद्रौ ॥७०॥
मन्ये श्रीचित्रकूटाचलशिखरशिरोध्यासमासाद्य सद्यो
यद्योधो गोरसंज्ञो सुविदितमहिमा प्रापदुच्चैर्नभस्तात् ।
प्रध्वस्तानेकजाग्रच्छकविगळदसृक्पूरसंपर्कदोष
नि शेषीकर्तुमिच्छुर्व्रजति सुरसरिद्वारिणि स्नातुकाम ॥७१॥
—भावनगर इंस्क्रिपशंस, पृष्ठ १२१ ।

रहा था, इसलिये उस लेख का मोड़ी लिपि में होना अनुमान किया, परन्तु अनुसंधान करने पर यह उत्तर मिला कि उसकी लिपि मोड़ी नहीं, किंतु उड़िया है और उसकी एक पक्ति सीधी तो दूसरी फारसी के समान उलटी अर्थात् दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी हुई है। इस कल्पित बात पर मुझे विशेष आश्चर्य हुआ, क्योकि आर्यलिपि दाहिनी ओर से बाईं ओर को कभी नहीं लिखी गई। इस वास्ते मैंने स्वयं वहाँ जाकर उस लेख को पढ़ा तो ज्ञात हुआ कि वह लेख उस समय की ब्राह्मी लिपि का है और भाषा उसकी सस्कृत है। वह गौरवश के क्षत्रिय राजाओं का है और एक काली शिला पर खुदा हुआ है। उसमें १७ पक्तियाँ है, जिनमें १६ पक्तियाँ श्लोक-बद्ध हैं और अन्तिम पक्ति गद्य की है। भमरमाता का मन्दिर बहुत प्राचीन होने से उसका कई बार जीर्णोद्धार हुआ है और निज मदिर गर्भगृह का नीचे का थोडा सा हिस्सा ही प्राचीन रूप में बचने पाया है। मन्दिर के टूट जाने पर यह शिलालेख अरक्षित दशा मे पड़ा रहा और लोगो ने उस पर मसाला पीसा, जिससे उसका लगभग एक चौथाई अंश अस्पष्ट हो गया है, तो भी जो अंश बचने पाया है, वह भी बडे महत्व का है। पीछे से उक्त मन्दिर के जीर्णोद्धार के समय वह शिलालेख एक ताक में लगाया गया, जहाँ मेरे देखने में आया। बचे हुए अश का आशय इस प्रकार है——

प्रारम्भ के दो श्लोक देवी के वर्णन के है। आगे गौर वन्श के क्षत्रिय राजाओ का वन्शक्रम दिया हुआ है। उक्त वन्श में राजा धान्य-सोम अभिषिक्त हुआ। उसके पीछे राज्यवर्द्धन हुआ। उसका पुत्र राष्ट्र हुआ, जिसने शत्रुओ के राष्ट्रो को मथ डाला। उसका पुत्र यशगुप्तB हुआ।

B यशगुप्त के अन्यत्र कोई शिलालेख नही मिले है। यही पहला शिलालेख है, जो मेवाड के छोटी सादडी नामक कस्बे के भमरमाता नामक देवी के मन्दिर से मिला है। इससे गौर नामक अज्ञात क्षत्रिय वन्श का पता चलता है, जो डॉ० ओझा की खोज का फल है। छोटी सादडी का कस्वा मन्दसौर के निकट है। मन्दसौर से राजा यशोधर्म के शिलालेख मिले है। यशोधर्म के मन्दसौर के अनिरिक्त अन्यत्र कोई लेख नही मिले, जिससे अब तक इतिहास के विद्यार्थी इस बात को जानने से वचित ही है कि वह किस वश का था। छोटी सादडी के शिलालेख की लिपि ब्राह्मी है। मन्दसौर तथा छोटी सादडी के शिलालेखो की लिपि आदि में सादृश्यता है अथवा नही, यह जानकर इस बात का निर्णय करने की पूरी आवश्यकता है कि छोटी सादडी के शिलालेख मे वर्णित यशगुप्त

वह बड़ा प्रतापी, दानी, यज्ञ-कर्ता और शत्रुओं का विजेता था। उस गौर महाराज ने वि० सं० ५४७ माघ सुदी १० (ई० स० ४९१ जनवरी) को पहाड़ पर अपने माता-पिता के पुण्य के निमित्त देवी का मन्दिर बनवाया† । इस लेख से निश्चित है कि गौर क्षत्रिय वंश वि० सं० की

† तस्याः प्रणम्य प्रकरोम्यहमेव..जस्रम्
[कीर्ति शु] भा गुणगणौघम [यी नृपाणाम्] [३]
······ कुलो [द्भू] व व [ङ् श] गौरा·
क्षात्रे प [दे] सतत दीक्षित. शौडाः ।
.. ..
..धान्यसोम इति क्षत्रगणस्य मध्ये [४]
.. . .
.. .. ..किल राज्यजितप्रतापो
यो राज्यवर्द्धण (न) गुणै. कृतनामधेय
.. .. [५]
.. ..
जात सुतो करिकरायतदीर्घबाहु ।
नाम्ना स राष्ट्र इति प्रोद्धतपुन्य [ण्य] कीर्ति [६]
सोयम् यशोभरणभूषितसर्वगात्रः
प्रोत्फुल्लपद्म:..तायतचारूनेत्रः ।
दक्षो दयालुरिह शासितशत्रुपक्षः
क्ष्मा शासति..यशगुप्त इति क्षितीन्दुः [८]
तेनेय भूतधात्री ऋतुभिरिहचिता [पूर्वं] शृङ्गेव भाति
प्रासादैरद्रितुङ्गैः शशिकरवपुषैः स्थापितैः भूषिताद्य
नानादानैन्दुशुभ्रैर्द्विजवरभवनैर्येनलक्ष्मीर्व्विभक्ता
......स्थितयशवपुषा श्रीमहाराज गौर [११]
यातेषु पंचसु शतेष्वथवत्सराणाम्
द्वेविंशतीसमधिकेपु ससप्तकेषु

और मन्दसौर के लेखो के राजा यशोधर्म मे क्या सम्बन्ध था, क्योकि दोनो के बीच समय का अधिक अन्तर नही है । उपरोक्त छोटी सादडी का शिलालेख प्रकाश मे नही आया है, यह बडे खेद की बात है। पुरातत्वनुसधान के प्रेमियो को इस पर ध्यान देना चाहिये ।

(संपा० टि०)

छठी शताब्दी के मध्य में मेवाड़ में विद्यमान था और छोटी सादड़ी के आस-पास के प्रदेश पर उसके वंश वालो का राज्य था। महाराणा रायमल के समय भी गौरवंशी क्षत्रिय उक्त महाराणा की सेवा में थे और बडी वीरता से लड़े थे, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है। वि० सं० की १४ वी शताब्दी में भी गौरवशीC राजपूत मेवाड के राजाओं की सेना में थे। चित्तौड़ के किले पर पद्मिनी के महलों से कुछ दूर दक्षिण पूर्व में दो गुंबजदार मकान है, जिनको लोग गोरा बादल के महल कहते है। अलाउद्दीन खिलजी के साथ की गई चित्तौड के महारावल रतनसिंह की लड़ाई में गोरा बादल बड़ी वीरता से लड़ते हुए मारे गए, ऐसा पिछले ग्रंथो में लिखा मिलता है। हि० स० ६४७ (वि० स० १५६७ = ई० स० १५४०) में मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत नाम की कथा बनाई तथा वि० सं० १६८० (ई० स० १६२३) में कवि जटमल ने गोरा बादल की कथा रची। इन दोनो पुस्तको में गोरा और बादल को दो भिन्न व्यक्ति माना है, परंतु ये दोनों पुस्तकें गोरा बादल की मृत्यु से क्रमशः २३७ और ३२० वर्ष पीछे बनी है। इतने दीर्घकाल में नामो में भ्रम होना संभव है। गोरा और बादल दो पुरुष नही, किंतु एक ही पुरुष

माघस्य शुक्लदिवसे त्वगमत्प्रतिष्ठाम्
प्रोत्फुल्लकुन्दधवलोज्वलिते दशम्याम् [१३]

—मूललेख की छाप से

C उपर्युक्त एकलिङ्गजी के मदिर की प्रशस्ति से स्पष्ट है कि माडू (मालवा) के सुलतान गयासुद्दीन की चित्तौड पर चढाई के समय मेवाड के महाराणाओ की सेवा मे गौरवशी क्षत्रिय विद्यमान थे। एकलिङ्गजी के शिवालय की प्रशस्ति, छोटी सादडी की प्रशस्ति से लगभग एक सहस्त्र वर्ष पीछे की है। अर्थात् छोटी सादडी की प्रशस्ति से एक हजार वर्ष पीछे तक गौरवश का अस्तित्व था और अब तो गौरवश का पता ही नही चलता। सभव है कि गौरवशियो को जन साधारण मे गौड कहने लग गये हो, अथवा वंशोत्पत्ति नही जानने से वे गौडो मे शामिल होकर अपने को गौड कहने लग गये हो। उदयपुर मे पहले 'गौरवा' नामक एक क्षत्रिय वश था, जो कोतवाल आदि उच्चपदो पर काम करता था, परन्तु अब उसका वहाँ अस्तित्व ही नही है। नाथद्वारा-काकरोली मे अब भी 'गौरवा' नामक एक जाति है, जो अपने को क्षत्रिय मानती है और वहाँ के वैष्णव मंदिरो की सेवा करते है। अनुमान होता है कि संभवतः उक्त प्राचीन गौरवश के अवशेष चिन्ह स्वरूप यह 'गौरवा' जाति हो।

(संपा० टि०)

का नाम होना संभव है,D जैसा कि राठौर दुर्गादास, सीसोदिया पत्ता आदि, जिसका पहला अंश (गोरा) वंशसूचक और दूसरा अंश (बादल) व्यक्तिगत नाम है। गोरा बादल का वास्तविक अभिप्राय गौर (गोरा) वश के बादल नामक पुरुष से हो सकता है। वशसूचक गौर नाम अज्ञात होने के कारण पिछले लेखको ने भ्रम से ये दो नाम अलग-अलग मान लिए होंगे।

बापा रावल[1] का सोने का सिक्का।

हिन्दुस्तान में प्राचीन काल से स्वतंत्र और बड़े राजा अपने नाम के

---

1 ई० स० की बारहवी शताब्दी के मध्य के आस-पास तक तो मेवाड के राजाओ का खिताव (विरुद) 'राजा' था ऐसा उनके शिला-

---

D डॉ० ओझा का जायसी वर्णित 'पद्मावत' के गौरा-बादल को दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति नही मान गौरवंशी बादल होने का कथन एक सुन्दर कल्पना है, किन्तु जब तक इसका दूसरा कोई सुदृढ़ प्रमाण नही मिले, तब तक उनका कथन साक्षर वर्ग द्वारा स्वीकार किया जाना कठिन है, क्योकि साधन के अभाव मे परम्परा को माना जाता है।

'पद्मावत' मे जायसी ने जो वर्णन किया है, वह रूपक मानलें तो भी उसमे ऐतिहासिक अंश है। वह चित्तौड का राजा रत्नसेन को बतलाता है, जो इतिहास से विरूद्ध नही जान पडता और सुन्दरता युक्त उसके राणी होना भी फारसी तवारीखो मे मिलता है। रत्नसिह, समरसिह का पुत्र था। समरसिह का अतिम शिलालेख वि० स० १३५८ माघसुदी १० (ई० स० १३०२) का मिला है और रत्नसिह का वि० सं० १३५९ माघसुदी ५ (ई० स० १३०३) बुधवार का शिलालेख दरीबा गाव (मेवाड) के देवी के मदिर के स्तम्भ पर खुदा है, जिससे पाया जाता है कि रत्नसिह एक वर्ष से अधिक भी राज्य नही करने पाया कि वि० स० १३५९ (ई० स० १३०३) मे मेवाड राज्य पर दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिल्जी की चढ़ाई हुई, जिसमे उसकी राणी पद्मिनी ने सैकडो महिलाओ के साथ जौहर की अग्नि मे प्रवेश कर सतीत्व रक्षा की और वह मुसलमान सेना से युद्ध करता हुआ मारा गया। ऐसी अवस्था मे जायसी का वर्णन ज्यौ का त्यौ इतिहास मे ग्रहण नही किया जा सकता, एवं रत्नसिह के सिंहल जाकर विवाह करने का कथन रूपक मात्र ही है।

(संपा० टि०)

सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्के[2] चलाते थे। उनके हजारों सिक्के इस देश के भिन्न-भिन्न विभागों से मिल चुके है और प्रतिवर्ष अनेक नए मिलते जाते हैं। ये सिक्के विशेष कर प्राचीन नगरो और गाँवो मे बहुधा जमीन में गड़े हुए मिलते हैं। कभी तो उनसे भरे हुए पात्र ही मिल जाते है और कभी जब चौमासे में अधिक वृष्टि के कारण जमीन कट जाती है या उसपर की मिट्टी बह जाती है तब वे इधर बिखरे हुए मिलते हैं। कभी वे महाजनो आदि की लक्ष्मी-पूजन के रुपयो की थैलियो में मिलते हैं और कभी नाके (कुडे) लगा कर गले के जेवर के रूप मे रखे हुए भी पाए जाते है और आवश्यकता पड़ने पर, धातु के मोल से, सर्राफो आदि के हाथ बेंच दिए जाते हैं। जमीन से निकले हुए सोने और चाँदी के कितने ही सिक्के तो महाजनों या सर्राफो तक भी नही पहुँचने पाते, सुनारो के यहाँ जेवर बनवाने में गला दिए जाते हैं। ताँबे के सिक्के ही विशेषतः महाजनो और सर्राफो के यहाँ पहुँचते हैं। वे लोग उनको जमा किया करते है और जब बहुत से एकट्ठे हो जाते हैं, तब वे उनको ताँबे के भाव से ठठेरे आदि बर्तन बनाने वालों को बेंच देते हैं। इस तरह हमारे प्राचीन इतिहास के ज्ञान के ये अमूल्य साधन लोगों के अज्ञान के कारण अधिकतर तो नष्ट ही हो जाते हैं और थोड़े से ही प्राचीन सिक्कों के संग्रह करनेवालों के पास पहुँच कर सुरक्षित होते हैं। तिस पर भी उनके कितने ही संग्रह यूरोप और अमेरिका में तथा यहाँ के भिन्न-भिन्न अजायबघरों और कई एक श्रीमानों और विद्वानों के यहाँ बन चुके हैं, जो यहाँ के प्राचीन इतिहास के उद्धार के लिये बड़े महत्त्व के हैं।

लेख से पाया जाता है। उसके पीछे उन्होने 'रावल' (राजकुल) खिताब धारण किया। पिछले इतिहास-लेखको को उनके पुराने खिताब का ज्ञान न होने के कारण उन्होने प्रारम्भ से ही उनका खिताब 'रावल' होना मान लिया और प्राचीन काल के वास्तविक इतिहास के अभाव में उसीकी लोगो मे प्रसिद्धि हो गई। इस समय बापा आदि पहले के राजा मेवाड म बापा रावल, खुमाण रावल, आलु (अल्लट) रावल, आदि नामो से प्रसिद्ध हैं। इसीसे हमने बापा को 'बापा रावल' ही लिखा है।

2. संस्कृत, प्राकृत आदि की पुस्तको एवं शिलालेखो तथा ताम्रपत्रो में पहले के सोने के सिक्को के नाम सुवर्ण, निष्क, शतमान, पल, दीनार, गद्याणक, आदि; चादी के सिक्को के पुराण, धरण, पाद, पडिक (फदैया या फदिया), द्रम्म, रूपक, टक आदि और ताँबे के सिक्को के नाम कार्षापण (काहापण), पण, काकिणी, आदि मिलते हैं।

राजपूताना अब तक हिंदुस्तान के दूसरे विभागो की अपेक्षा विद्या-विषय में बहुत ही पीछे है जिससे यहाँ के राजा-महाराजाओ, सर्दारो और धनवानों में प्राचीन राजाओं की कीर्ति को चिरस्थायी करनेवाले इन सिक्कों का संग्रह करने की जागृति बहुत ही कम हुई है। इसीसे इस विस्तीर्ण देश से मिलने वाले बहुत कम प्राचीन सिक्के अब तक प्रसिद्धि में आए है।

राजपूताने से मिलनेवाले प्राचीन सिक्कों को देखने से पाया जाता है कि अधिक प्राचीन काल में यहाँ पर चांदी और ताँबे के जो सिक्के चलते थे वे हिंदुस्तान के दूसरे प्रदेशों के सिक्कों की नाईं प्रारम्भ में चौकोर और पीछे से गोल बनते थे। वे पुराण और कार्षापण कहलाते थे। उनपर कोई लेख नहीं होता था, किंतु मनुष्य, पशु पक्षी, सूर्य-चन्द्र आदि, ग्रह-नक्षत्र, धनुष-बाण आदि शस्त्र, स्तूप, बोधिद्रुम, स्वस्तिक, वज्र, पर्वत (मेरु), नदी (गंगा) आदि धर्म-संबंधी संकेत और अनेक अन्य चिह्न अंकित होते थे जिसका वास्तविक आशय अब तक ज्ञात नहीं हुआ। उन सिक्कों की एक ओर केवल एक या दो ही चिह्न और दूसरी तरफ अधिक चिह्न अंकित मिलते है। ऐसे चिह्नोंवाले सिक्के चाँदी और ताँबे के असंख्य मिले है, परन्तु सोने का अब तक एक भी नहीं मिला, तो भी पहले इस प्रकार के सोने के सिक्के भी होते थे, ऐसा बौद्ध-साहित्य से पाया जाता है। बौद्ध जातको में एक कथा ऐसी मिलती है कि श्रावस्ती नगरी के रहनेवाले सेठ अनाथपिंडद ने बौद्धों के लिये एक विहार बनाने के लिये राजकुमार जेत से भूमि खरीदना चाहा तो जेत ने कहा कि जितनी जमीन तुम लेना चाहो उसको सोने[3] के सिक्कों से ढक दो तो वह मिल सकती है। अनाथपिंडद ने १८ करोड़ सोने के सिक्को से ढक कर वह जमीन खरीद ली। इस कथा का चित्र बुद्ध-गया और नागौद राज्य (मध्य भारत) के भरहुत के स्तूप की वेष्टनी में शिला पर अंकित है। दोनों में उक्त सेठ के सेवक लोग जमीन पर चौखूँटे सिक्के बिछाते हुए बतलाए गए है। बुद्ध-गया की शिला पर तो इस विषय का लेख भी खुदा है। ये दोनों शिलाएँ[4] ईसवी सन् पूर्व की दूसरी शताब्दी के आस-पास की खुदी हुई है।

राजपूताने में सब से पुराने लेखवाले सिक्के मध्यमिका नामक प्राचीन नगर में ताँबे के सिक्के है जिनपर 'मझमिकाय शिबिजनपदस' (शिबि जनपद

---

3 राखालदास बैनर्जी, 'भारतेर प्राचीन मुद्रा' (बगला), पृ० ७।

4 जनरल कनिंगहाम, 'कॉइंस ऑफ़ एन्श्यट इंडिआ,' प्रारंभ का चित्रपट।

= देश) की मध्यमिका (नगरी) का (सिक्का)] लेख[5] है । ये सिक्के ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी के आस-पास के हो, ऐसा उनके लेखों की लिपि से अनुमान होता है । मध्यमिका का स्थान मेवाड़ (उदयपुर) राज्य में चित्तौड के किले से करीब ७ मील उत्तर में है । उसका वर्तमान नाम नगरी है और वह बेदला के चौहान सर्दार की जागीर मे है । ये सिक्के यहाँ के सब से पुराने सिक्के है । उसी समय के आस-पास के मालव जाति के तांबे के सिक्के जयपुर राज्य में 'नगर' (कर्कोटक नगर) से मिले है, जिनपर, 'मालवानां जय' [= मालवों की जय] लेख[6] है । ये सिक्के मालवगण अर्थात् मालव जाति के विजय के स्मारक है । इनसे पीछे के जो सिक्के राजपूताने में मिले है वे ग्रीक (यूनानी), शक, पार्थिअन् (पारद), कुशन और क्षत्रप वंशी राजाओं के है । ग्रीक (यूनानी) और क्षत्रपो के सिक्के तो यहाँ पर चाँदी और तांबे क ही मिले है, बाकी के तीन वशो के सोने के भी कभी-कभी मिल जाते है । क्षत्रपो के चांदी के सिक्के हजारो की सख्या मे मिल चुके है, तांबे के बहुत कम । इनके पीछे के सिक्के गुप्तवशी राजाओ के है जिनमें विशेष कर सोने के मिलते है, चाँदी के कम । गुप्तवशियो के २० से अधिक सोने के सिक्के मैंने अपने मित्रों के लिये अजमेर में ही खरीदे । गुप्तो के पीछे हूणों के चांदी और तांबे के सिक्के मिलते है परन्तु बहुत ही कम । हूणों के सिक्के ईरान के ससानवशी राजाओं के सिक्कों की शैली के है और उनकी नकलें ई० स० की छठी से ११वी शताब्दी के आस-पास तक इस देश में बनती रहीं । समय के साथ उनका आकार घटता गया और पतलेपन के स्थान में मोटाई आती गई । कारीगरी में भी क्रमशः भद्दापन आता गया, जिससे उनके सामने की तरफ की राजा की सिर से छाती तक की मूर्ति यहाँ तक बिगड़ती गई कि लोग पीछे से पहिचान भी न सके कि वह किसकी सूचक है । इससे वे उसको गधे का खुर ठहरा कर उनको 'गधिये सिक्के' कहने लगे और अब तक उनका वही नाम चला आता है । परन्तु जब समय-समय के सिक्के पास-पास रख कर मिलान करते है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भ में उनपर राजा का अर्ध शरीर ही था, परन्तु ठप्पा खोदनेवालों की कारीगरी में क्रमशः भद्दापन आने के कारण वे उसको पहले का सा सुन्दर न बना सके और इसीसे लोगों ने उसको गधे का खुर मान लिया ।

---

5. कनिंगहाम, आर्किऑलाजिकल सर्वे—रिपोर्ट, जि० ६, पृ० २०३ ।

6. वही, पृ० १८१ । कर्कोटक नगर अब जयपुर राज्य के उणियारा ग्राम से १५ मील दक्षिण-पश्चिम में पुराना खेड़ा नाम से प्रसिद्ध है ।

ई० स० की छठी शताब्दी से अजमेर पर मुसलमानों का अधिकार होने (ई० स० ११९२) तक के ६०० वर्षों में राजपूताने पर राज्य करनेवाले हिन्दू राजवशो में से केवल तीन ही वशों अर्थात् मेवाड के गुहिल (सिसोदिया), अजमेर के चौहान, और कन्नौज के प्रतिहारो (पड़िहारो) के चाँदी और ताँबे के सिक्के कभी-कभी मिल जाते है । प्रतिहार वश के तो अब तक केवल भोजदेव (आदिवराह) और महीपाल के ही सिक्के मिले है । उक्त ६०० वर्षों तक राजपूताने में राज करनेवाले राजाओ में से किसी का भी सोने का सिक्का पहले नही मिला था । बापा रावल का यह सिक्का उक्त काल का पहला ही सोने का सिक्का है और अब तक एक ही मिला हैA । बापा रावल मेवाड़ के गुहिल (सीसोदिया) वंशी राजाओ का पूर्वज था और उसकी वीरता आदि की अनेक कथाएँ राजपूताने में प्रसिद्ध है ।

यह सिक्का तीन वर्ष पहले अजमेर के एक सर्राफ के यहाँ मिला उससे मालूम हुआ कि भीलवाडे (मेवाड़) की तरफ का एक महाजन कुछ सोने और चाँदी के पुराने जेवरो के साथ यह सिक्का भी बेंच गया था । इसके साथ दो मोहरें और भी थी, एक बादशाह अकबर की और दूसरी औरंगजेब-आलमगीर की । ये तीनो सिक्के मैंने सिरोही के महाराजाधिराज महाराव सर केसरीसिंह जी के लिये खरीद लिए, जो उनके प्राचीन सिक्को के बड़े संग्रह में सुरक्षित है । जब यह सिक्का सर्राफ के पास आया, तब उसमें सोने का नाका (कुंडा) लगा हुआ था जिसको उसने उखड़वा डाला और झालन (टाँके) को घिसवा दिया, परन्तु अब तक उसका कुछ अंश इस पर पाया

A इसके पूर्व भी बापा रावल का एक स्वर्ण-सिक्का मिला है, जो अफीम के एक अग्रेज अधिकारी को मिला था, जिसने वह अपने एक अग्रेज मित्र को दिया और उसके द्वारा वह प्राचीन शोधक वर्ग के पास पहुँचा। रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बगाल के जर्नलो मे उसके विषय मे चर्चा हुई, परन्तु कोई भी विद्वान् उक्त सिक्के मे अकित लिपि को ठीक-ठीक पढकर अपना मत स्थिर नही कर सके । हिंदू यूनिवरसिटी बनारस के ख्यातनामा प्रोफेसर डॉ० ए० एस० आल्टेकर ने उक्त सिक्के के फोटो आदि को पढकर यह सिद्ध किया है कि वह डॉ० ओझा के वर्णित स्वर्ण सिक्के के समान चिह्नयुक्त है और उस पर अंकित लेख 'श्री बोप्प' है, जो बापा रावल का सूचक है (सातवी ओरियंटल कॉन्फरेस बडोदा की रिपोर्ट ई० स० १९३३) ।— (सं० टि०)

आता है। दाहिनी ओर का इसका थोड़ा सा अंश दोनों तरफ से घिस गया है जिससे वहाँ के चिह्न कुछ अस्पष्ट हो गए है।

इस सिक्के का तौल इस समय ११५ ग्रेन (६४$\frac{५}{७}$ रत्ती) है। दोनों ओर के चिह्न आदि नीचे लिखे अनुसार है, जिनका विवेचन आगे किया जायगा—

सामने की तरफ—(१) ऊपर के हिस्से से लगाकर बाईं ओर, अर्थात् लगभग आधे सिक्के के किनारे पर, बिंदियो की एक वर्तुलाकर पंक्ति है जिसको माला कहते है। (२) ऊपर के हिस्से में माला के नीचे ई० स० की आठवी शताब्दी की लिपि में 'श्रीबोप्प' लेख है जो जिस राजा (बापा) का यह सिक्का है उसका सूचक है। (३) उक्त लेख के नीचे बाईं ओर माला के पास खड़ा त्रिशूल है। (४) त्रिशूल की दाहिनी ओर दो प्रस्तरवाली वेदी पर शिवलिंग बना है। (५) शिवलिंग की दाहिनी ओर बैठा हुआ नंदि (बैल) है जिस का मुख शिवलिंग की तरफ है और जिसकी पूँछ और उसके पास का कुछ अंश, सिक्के का उधर का हिस्सा घिस जाने के कारण, नही रहा है। (६) शिवलिंग और बैल के नीचे पेट के बल लेटा हुआ एक मनुष्य है जिसका जाँघों तक का ही हिस्सा सिक्के पर आया है। उसके दोनों कान आज कल के कनफटे जोगियों की तरह बीच में से बहुत छिदे हुए होने के कारण मनुष्य के कानो से बडे दिखाई देते है और मुख भी कुछ अधिक लम्बा प्रतीत होता है।

पीछे की तरफ—(१) दाहिनी ओर के थोडे से किनारे को छोड़ कर अनुमान सिक्के के $\frac{३}{४}$ किनारे के पास बिंदियों की माला है। (२) ऊपर के हिस्से में माला के नीचे एक पक्ति में तीन चिह्न बने है जिनमें से बाँई ओर से पहला सिमटा हुआ चमर प्रतीत होता है। (३) दूसरा चिह्न है। (४) तीसरे चिह्न का ऊपर का भाग, सिक्के का वह अंश घिस जाने के कारण, स्पष्ट नहीं है, परन्तु उसका नीचे का अश नीचेवाली गौ के सींग के पास नीचे से कुछ मुडी हुई खडी लकीर के रूप में दिखलाई देता है। यह छत्र की डंडी हो सकती है और ऊपर का अस्पष्ट भाग भी छत्र-सा दीख पड़ता है। (५) उक्त तीनो चिह्नो के नीचे दाहिनी ओर को मुख किए गौ खड़ी है जिसके मुख का कुछ अंश सिक्के के घिस जाने से अस्पष्ट हो गया है। (६) गौ के पैरो के पास बाँई ओर मुख किए गौ का दूध पीता बछड़ा है, जिसके गले में घंटी लटक रही है, वह पूँछ कुछ ऊँची किए हुए है और उसका स्कंध (ककुद) भी दीखता है। (७) बछड़े

की पूँछ से कुछ ऊपर और गौ के मुख के नीचे एक पात्र बना हुआ है जिसकी दाहिनी ओर का अंश घिस गया है। पात्र की बाईं ओर की गोलाई और उसके नीचे सहारे की पैंदी स्पष्ट है। (८) गौ और बछड़े के नीचे दो आड़ी लकीरें बनी है जिसके बीच में थोड़ा-सा अन्तर है। (९) उक्त लकीरों की दाहिनी ओर तिरछी मछली है, जिस का पिछला हिस्सा उक्त लकीरो से जा लगा है। (१०) उक्त लकीरो के नीचे और बिंदियो की बिंदु-माला के ऊपर चार बिंदियो से बना हुआ फूल-सा दिखाई देता है।

सामने की तरफ का विवेचन।

(१) बिंदियों से बनी हुई माला---प्राचीन काल में बहुधा गोल सिक्के के किनारों के पास बिंदियों से बनी हुई परिधि होती है जिसको राजपूताने के लोग माला कहते है। जब सिक्का ठप्पे के समान ही बड़ा होता है तब पूरी माला सिक्के पर आ जाती है परन्तु जब छोटा होता है, तब माला का कुछ अंश ही उसपर आता है। सिक्कों पर माला बनाने की रीति प्राचीन काल से चली आती है। हिंदुस्तान के ग्रीक (यूनानी), कुशन (तुर्क), गुप्त, यौधेय, कलचुरि, चौहान आदि कई राजवंशों के एवं ससान तथा गधिये सिक्कों पर तथा नेपाल, आसाम और दक्षिण से मिलनें वाले कई सिक्को पर यह माला[7] पाई जाती है। केवल पुराने सिक्कों पर ही नहीं, किंतु हिंदुस्तान के मुसलमान सुलतानो और बादशाहों के कई सिक्कों पर भी यह होती है[8] राजपूताने के राज्यों के कई सिक्कों पर[9] तो यह बहुधा अब तक बनती थी।

(२) सिक्के के लेख में राजा का नाम श्रीवोप्प है। यह वप्प (बप्प = बापा) के नाम के पुराने मिलनेवाले अनेक रूपो में से एक है। संस्कृत के शिलालेखों तथा पुस्तको में इस राजा का नाम कई तरह से लिखा मिलता

7 वी० ए० स्मिथ, केटेलॉग ऑफ दी कॉइस इन दी इडिअन् म्यूजिअम, (कलकत्ता), प्लेट १, ३, ९, ११-१७, २०, २१, २४, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१।

8 एच० एन० राइट, केटेलॉग ऑफ दी कॉइस इन दी इडिअन् म्यूजिअम (कलकत्ता), जिल्द २, प्लेट, ७, ९, जिल्द ३, प्लेट १, २, ४, ६ ७---१३, १५, १७---२०, २२।

9. वेब, दी करसीज ऑफ राजपूताना, प्लेट १-१२।

हैं, जैसा कि 'वप्प', 'वप्पक'[10], 'बप्प' 'बप्पक[11]' 'बाप्प'[12] 'बप्पाक[13]' 'बाप्प[14]' 'बापा[15],' आदि। 'ब' के स्थान मे 'व' का प्रयोग राजपूताने, आदि के शिलालेखो में बहुधा मिलता है और यहाँ के लोगों में बंगालियो की नांई 'अ' के स्थान में अर्ध 'ओकार' बोलने का प्रचार भी है, जैसे कि

10 अस्मिन्नभूद्गुहिलगोत्रनरेन्द्रचन्द्र
श्रीवप्पकक्षितिपति क्षितिपीठरत्नम् ।
मेवाड के राजा नरवाहन के समय की वि० सं० १०२८ की प्रशस्ति, बंब० एशि० सोसा० जर्नल, जि० २२, पृ० १६६ ।
गुहिलागजवंशजः पुरा क्षितिपालोत्र बभूव वप्पक ।
प्रथमः परिपथिपार्थिवध्वजिनीध्वंसनलालसाशयः ।।३।।
रावल समरसिंह के समय का वि० स० १३३० का चीरवा गाँव का शिलालेख ।

11 हारीतः शिवसगमंगविगमात् प्राप्तः स्वसेवाकृते
बप्पाय प्रथिताय सिद्धिनिलयो राज्यश्रियं दत्तवान् ।।१०।।
हारीतात्किल ,बप्पकोऽह्रिवलयव्याजेन लेभे मह, क्षात्रं..
रावल समरसिंह का वि० स० १३४२ का आबू का शिलालेख (इंडि० एंटि०, जि० १६, पृ० ३४७) ।

12 जगाम बाप्प. परमैश्वरं महो.............।।१७।।
एकलिंगजी के मन्दिर के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति (भावनगर इन्स्क्रिप्शस, पृ० ११८) ।
बप्प शब्द के और पाठातर तो ठीक है किंतु इसका निर्वचन ठीक न जानकर शुद्ध सस्कृत बनाने की धुन मे किसी पंडित ने बाष्प की कल्पना की होगी और इसीको दृढ़ करने के लिये पार्वती के बाष्प (आँसू) का सम्बन्ध बापा से मिलाने की कथा गढी गई होगी। देखो, आगे टिप्पण २३)

13 श्रीगुहिदत्तराउलश्रीबप्पाकश्रीखुमाणादिमहाराजान्वये. .
नारलाई के आदिनाथ के मन्दिर मे लगा हुआ महाराणा रायमल के समय का वि० स० १५५७ (न कि १५९७) का शिलालेख (वही पृ० १४१)।

14 श्रीमेदपाटवसुधामपालयद्बाप्पपृथ्वीशः ।।१६।।
महाराणा कुम्भकर्ण के समय का बना हुआ एकलिंग-माहात्म्य, राजवर्णन अध्याय (वि० सं० १७३८ की हस्तलिखित प्रति से) ।

15 प्राप्तमेदपाटप्रमुखसमस्तवसुमतीसाम्राज्यश्रीबापाखुम्मान....
उपर्युक्त, टिप्पण, १२ दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के अंत का गद्य !

'खल' को 'खोल', 'ढल' (ढेला) को 'ढोल', 'पॉच' को 'पौच' आदि। अतएव 'बप्प' को 'बोप्प' लिखना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। बप्प[16] और बोप्प दोनों प्राकृत पर्याय शब्द है और दोनो का मूल अर्थ 'पिता'[17] है। ये दोनो एक दूसरे के स्थान में व्यवहृत होते हे जिसके कई उदाहरण मिलते है जैसे कि बप्प स्वामि'[18] के स्थान पर 'बोप्प

16 'बप्प' प्राकृत भाषा का प्राचीन शब्द है जिसका मूल अर्थ 'बाप' (सस्कृत वाप = बीज बोनेवाला = पिता) था। इसका या इसके भिन्न२ रूपान्तरो का प्रयोग बहुधा सारे हिंदोस्तान मे प्राचीन काल से लगाकर अब तक चला आता है। वल्लभी (काठियावाड मे राजाओ के दानपत्रो मे पिता के नाम की जगह 'बप्प' शब्द सम्मान के लिये कई जगह मिलता है (परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीबप्पपादानुध्यातः परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरः श्रीशीलादित्य 'वलभी के राजा शीलादित्य सातवे का अलीना का गुप्त सवत् ४४७ = ई० स० ७६६–६७ का दानपत्र, फ्लीट-गुप्त इस्क्रिप्शंस, पृ० १७८)। नेपाल के लिच्छवि वशी राजा शिवदेव और उसके सामत अशुवर्मा के [गुप्त] सवत् ३१६ (या ३१८ ? = ई० स० ६३५–३६ के शिलालेख मे 'बप्प' शब्द का प्रयोग वैसे ही अर्थ मे हुआ है (स्वस्ति मानग्रहादपरिमितगुणसमुदयोद्भासितदिशो (?) बप्पपादानुध्यातोलिच्छविकुलकेतुभंट्टारकमहाराजाधिराजश्रीशिवदेवःकुशली..इडि० एटि०, जि० १४, पृ० ९८)। पीछे से यह शब्द नामसूचक भी हो गया और मेवाड के अनेक लेखो मे बापा रावल के लिये नामरूप से लिखा हुआ मिलता है (देखो, ऊपर टिप्पण ११)। पीछे से इसके कई भिन्न२ रूपान्तर बालक, वृद्ध आदि के लिये या उनके सम्मानार्थ उनको सबोधन करने मे सस्कृत के 'तात' शब्द की नाई काम मे आने लगे। मेवाड मे 'बापू' शब्द लडके या पुत्र के अर्थ मे प्रयुक्त होता है और 'बापजी' राजकुमार के लिये। राजपूताना, गुजरात आदि मे बापा, बापू, और बापो शब्द पिता पूज्य या वृद्ध के अर्थ मे आते है। बापूजी, बापूदेव, बोपदेव, बापूराव, बापूलाल, बाबाराव, बापाराव, वापण्णभट्ट, बोपण्णभट्ट, बोपण्णदेव आदि अनेक शब्दो के पूर्व अश इसी 'बप्प' शब्द के रूपान्तर मात्र है। पंजाबी और हिंदी गीतो तथा स्त्रियो की बोलचाल में 'बावल' पिता का सूचक है।

17 फ्लीट, गुप्त इस्क्रिपशस, पृ० ३०४।

18 परिव्राजक महाराज हस्ती के गुप्त संवत् १६३ (ई० स० ४८२–८३) के खोह के दानपत्र ये कोपरिक अग्रहार जिन ब्राह्मणो को देना लिखा है उनमे से एक का नाम 'बप्पास्वामि' मिलता है (फ्लीट, गुप्त

होना उचित है ।

(६) शिवलिंग और वृष के नीचे लेटे हुए पुरुष की मूर्ति किसकी सूचक है ? इस विषय में निश्चय के साथ कुछ भी कहा नहीं जा सकता, परन्तु संभव है कि वह बापा की ही सूचक हो और उसे अपने इष्टदेव एकलिंग के आगे प्रणाम करता हुआ प्रगट करती हो। उसके कान फटे और मुख अधिक लंबा होने के विषय में तीन कल्पनाएँ हो सकती हैं। या तो ठप्पा खोदने वाला अच्छा कारीगर न हो, जिससे जैसी चाहिए वैसी ठीक आकृति न बना सका। प्राचीन राजाओं के कानों में बड़े-बड़े कुंडल पहनने की चाल होने से व फटे हुए और लटक जाने के कारण बड़े बनाए जाते थे जैसा कि कई मूर्तियों में देखा जाता है। अथवा बापा शिव के गण नंदि (नंदिकेश्वर) का अवतार[23] माना जाता था जिससे उसका मुख वानराकार बनाया गया हो। अथवा यह बापा के गुरु हारीत राशि की मूर्ति हो, जो शिव के गण चंड का अवतार[24] माना जाता था।

---

23 यं दृष्टवा नंदिनं गौरी दशो बाप्पं पुराऽसृजत्
नदीगणोसौ बाष्पोपि प्रियादृक्बाष्पदोऽभवत् ॥७॥

वही, सर्ग० ३।

अथ शैलात्मजा ब्रह्मन् शोकव्याकुललोचना ।
नंदिनं प्रथमं बाष्पं सृजन्ती तमुवाच ह ॥१२॥
यस्माद्वाष्पं सृजाम्यद्य वियोगात्शंकरस्य च ।
पूर्वदत्ताच्च मे शापाद्वाष्पो राजा भविष्यति (सि) ॥१३॥

महाराणा रायमल के समय का बना एकलिंग-माहात्म्य, अध्याय ६।

नंदीगण का मुख वानर का सा माना गया है। रावण ने उसका उपहास किया था, तब नंदी ने शाप दिया कि मेरे सदृश मुखवाले तेरा नाश करेंगे।

(वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकाड, ५०।२-३, तथा वही पर कतक टीका, उत्तरकांड १६।१४–२१)

24 रे चंड त्वं द्वारि स्थितोपि रक्षाविधौ प्रमत्तीभू ।
हारीतराशिनामा भूयास्त्वं मेदपाटमुनिः ॥

राणा कुंभकर्ण के समय का बना एकलिंग-माहात्म्य, अध्याय १, श्लोक २२।

हारीतराशिः स मुनिश्चण्डः शंभोर्गणोऽभवत् ।

राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग ३, श्लोक ८।

पिछली तरफ का विवेचन ।

(१) बिंदियो से बनी हुई माला—इसका विवेचन ऊपर हो चुका है ।

(२) और (४) ऊपर के पंक्तिबद्ध तीन चिह्नो में से पहले चमर और तीसरे (छत्र) का विवेचन ऊपर हो चुका । ये दोनों राज्य-चिह्न हैं ।

(३) यह चिह्न या तो बौद्धो के धर्मचक्र का या सूर्य का सूचक हो सकता है । परम शैव राजा के सिक्के पर त्रिशूल, शिवलिंग और वृषभ के साथ बौद्ध धर्म चक्र का होना तो सर्वथा असम्भव है, अतएव यह चिह्न सूर्य का सूचक होना चाहिए । प्राचीन काल मे सूर्य का चिह्न बीच में बिंदी सहित छोटा सा वृत्त होता था जिस पर बाहर की ओर किरणें होती थीं । पुराण और कार्षापण नाम के प्राचीन सिक्को पर सूर्य का चिह्न [25] वैसा ही मिलता है । वह इतना स्पष्ट होता है उसको देख कर हर एक पुरुष सहसा यही कहेगा कि यह सूर्य बना है । पीछे से जैसे अक्षरो की आकृति में अन्तर पड़ता गया, वैसा ही सूर्य के चिह्न में भी भिन्नता आती गई । पश्चिमी क्षत्रप वंशी राजाओ के सिक्कों पर सूर्य और चंद्र के चिह्न मिलते हैं । उनमें चष्टन से लगा कर रुद्रसेन प्रथम तक के सिक्कों पर सूर्य का चिन्ह किरणों सहित स्थूल बिंदी[26] ही है, वृत्त नही, और किरणें बहुत स्पष्ट हैं । परन्तु उसके पीछे के उसी वंश के राजाओं के सिक्को पर का वही चिन्ह बिंदियों से बना हुआ वृत्त मात्र[27] है, जिसके मध्य में एक सूक्ष्म बिंदी और लगी है । सिक्को के अभ्यासियो को छोडकर उस चिन्ह को और कोई सूर्य का चिन्ह न कहेगा किंतु उसको सतफूल ही बतलावेगा । वैदिकों की ग्रहशांति के नवग्रहस्थापन में जहाँ नवग्रहों के सांकेतिक चिन्ह बनाकर उनका पूजन होता है ।

---

25 कनिंगहाम कॉइंस ऑफ एन्श्यंट इंडिया, प्लेट १, संख्या १, ३–७, १३ ।

26 रापसन् कैटलॉग आफ़ इंडिअन् कॉइंस, 'आंध्र, क्षत्रप आदि' प्लेट १०–१२ ।

27 वही, प्लेट १२–१८ ।

वहाँ सूर्य के मंडल में सूर्य का चिन्ह वृत्त[28] ही होता है। राजपूताने में राजाओ तथा सर्दारो की ओर से ब्राह्मणो, देवमंदिरो आदि को दान किए हुए खेतों पर उनकी सनदें शिलाओ पर खुदवा कर खड़ी की जाती थी। ऐसे ही राजाओ की ओर से छोड़े हुए किसी कर आदि के,, या प्रजावर्ग में से किसी जाति की की हुई प्रतिज्ञा के, लेख भी शिलाओ पर खुदवा कर गाँवो में खड़े किए हुए मिलते है। उक्त दोनो प्रकार के लेखो को यहाँ के लोग 'सुरे' (फारसी शरह) कहते है। समय-समय के ऐसे सैकडो नही, हज़ारो शिलालेख अब तक भिन्न-भिन्न अवस्थाओ में खेतों और गाँवो मे खड़े हुए मिलते है। ऐसे लेखो में से कई एक के ऊपर के भाग में सूर्य चंद्र और वत्स सहित गौ की मूर्तियाँ बनी होती है। इनका भाव यही है कि जब तक सूर्य, चंद और सवत्सा गौ (अर्थात् रसदात्री पृथ्वी) है तब तक वह दान (आदि) अविच्छिन्न रहे। गौ की मूर्ति का यह भाव भी है कि इस दान या नियम का भंग करने-वालों को गोहत्या का पाप लेंगे। ऐसे शिलालेखो पर सूर्य के चिन्ह अंकित किए हुए मिलते है। राजपूताना म्यूज़िअम (अजमेर) में रखे हुए वि० सवत् १३०० के एक शिलालेख के ऊपर के भाग में सूर्य, चन्द्र और वत्स सहित गौ की मूर्तियाँ बनी है। उसमे सूर्य का चिन्ह ऊपर बतलाए हुए चार प्रकार के चिन्हो में से पहला है। अतएव सिक्के पर जो चिन्ह सूर्य का ही सूचक होना चाहिए।

इस सिक्के पर छत्र और चँवर दो राज्य-चिन्हो के बीच में सूर्य की मूर्ति किस अभिप्राय से रक्खी गई, इस विषय में भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ हो सकती है, परन्तु अधिक संभव यही है कि वह बापा का सूर्यवशी होना सूचित करती हो। मेवाड़ के राजा अब तक अपने को सूर्यवशी मानते चले आते है।

(५—६) ये चिन्ह गौ और उसका स्तनपान करते हुए बछडे के है। यह गौ बापा रावल के प्रसिद्ध गुरु लकुलीश सम्प्रदाय के साधु (नाथ) हारीतऋषि की काम-धेनु हो जिसकी सेवा बापा रावल ने की ऐसी कथा प्रसिद्ध है। स्तनपान करते हुए वत्स का अभिप्राय गौ का दुधारु होना है।

---

28 वृत्तमंडलमादित्ये चतुरस्त्रं निशाकरे।
भूमिपुत्रे त्रिकोणं स्याद्बुधे वै बाणसदृशं ॥
ग्रहशाति।

(७) पात्र—इसका वर्णन ऊपर हो चुका।

(८) दो आड़ी लकीरें नदी के दोनो तटों को सूचित करती है क्योंकि उनकी दाहिनी ओर के अन्त पर मछली बनी है जो वहाँ पर जल का होना प्रकट करती है। यदि यह अनुमान ठीक हो तो ये लकीरें एकलिंगजी के मंदिर के पास बहनेवाली कुटिला नाम की छोटी नदी[29] (नाले) की सूचक होनी चाहिएँ।

(९) फूल—शोभा के लिये बना हो या नदी के निकट पुष्पो का होना सूचित करता हो।

बापा का सूर्यवंशी होना।

ऊपर हम कह आए है कि छत्र और चमर के बीच सूर्य का चिन्ह होना बापा (और उसके वंशजो) का सूर्यवंशी होना सूचित करता है। इस कथन पर यह शंका उठ सकती है कि इस चिन्ह पर से ही बापा का सूर्यवंशी होना कैसे संभव हो सकता है? क्या ऐसा मानने के लिये कोई प्राचीन शिलालेख आदि का प्रमाण है? इसके उत्तर में यह कथन है कि मेवाड़ के पुराने राजाओ में से अल्लट तक के राजाओं के पाँच शिलालेख अब तक मिले है, जिनमें शीलादित्य (शील) का वि० सं० ७०३[30] का, अपराजित का वि० सं० ७१८[31] का, भर्तृपट्ट (भर्तृभट) दूसरे के वि० सं० ९९९[32] और १०००[33] के और अल्लट का वि० सं० १०१०[34] का है। इनमें से किसी में भी मेवाड़ के राजवंश की उत्पत्ति के संबंध में कुछ भी लिखा नहीं मिलता। वि० सं० १०१० के पीछे के जिन शिलालेखो में उसकी

---

29 मा कुरुष्वेत्यत कोपमित्युवाच सरिद्वरा।
ता शशापातिरोषेण कुटिलेति सरिद्भव ॥२५॥
तत्रैकलिंगसामीप्ये कुटिलेति सहस्रशः।
धाराश्च संभविष्यन्ति प्रायशो गुप्तभावतः ॥२६॥

महाराणा रायमल के समय का बना 'एकलिंगमाहात्म्य', अध्याय ६।

30 यह लेख इसी संख्या (ना. प्र. प. काशी, भाग १ सं. ३, सं० १९७७) में मुद्रित है।

31 एपि० इंडि०, जि० ४, पृ० ३१–३२।

32 वही, जि० १४, पृ० १८७।

33 राजपूताना म्यूजिअम की रिपोर्ट, ई० स० १९१३–१४, पृ० २

34 भावनगर इंस्क्रिपशंस, पृ० ६७–६८।

उत्पत्ति के विषय म कुछ लिखा मिलता है उनमें सब से पहला लेख एकलिंग के मंदिर के निकट के लकुलीश (लकुटीश) के मंदिर की, जिसको इस समय नाथो का मंदिर कहते है, प्रशस्ति है। यह प्रशस्ति मेवाड़ के राजा नरवाहन के समय की और वि० सं० १०२८ की है। इससे मेवाड़ के राजाओं का रघुवंशी (सूर्यवंशी) होना पाया जाता है। उक्त प्रशस्ति वाले ताक के ऊपर छज्जा न होने के कारण चौमासे में मदिर के शिखर का जल प्रशस्ति के ऊपर होकर बहने से उसका कुछ अश बिगड गया है, तिस पर भी जो अश बचा है वह बड़े महत्त्व का है। उसका सारांश नीचे लिखा जाता है--

प्रारम्भ में 'ओ ओं नमो लकुलीशाय' से लकुलीश को नमस्कार किया है। फिर पहले और दूसरे श्लोको में किसी देवता और देवी (सरस्वती) की प्रार्थना हो ऐसा पाया जाता है परन्तु उन श्लोको का अधिक अंश जाता रहा है। तीसरे और चौथे श्लोकों में नागह्रद (नागदा) नगर का वर्णन है। पाँचवें श्लोक में उस नगर के राजा वप्पक (बप्पक = बापा) का वर्णन है जिसमें उसको गुहिलवंश के राजाओ में चन्द्र के समान (तेजस्वी) और पृथ्वी का रत्न कहा है और उसके धनुष के टकार का कुछ वर्णन[35] है परन्तु लेख का वह अंश नष्ट हो गया है। छठे श्लोक में बप्पक के वंशज किसी राजा का (सभवतः नरवाहन के पिता अल्लट का) वर्णन है परन्तु उसका नाम बचने नहीं पाया। सातवें और आठवें श्लोकों में राजा नरवाहन की, जिसके समय में वह प्रशस्ति बनी, वीरता की प्रशसा है। श्लोक ९ से ११ तक में लकुलीश[36] की उत्पत्ति का वर्णन यों किया है कि पहले भृगुकच्छ (भड़ौच)

---

35 अस्मिन्नभूदगुहिलगोत्रनरेन्द्रचन्द्र
श्रीवप्पकः क्षितिपतिः क्षितिपीठरत्नम्।
ज्याघातघोष..........
(बम्बई एशि० सोसा० जर्नल, जि० २२ पृ० ११९)

36 लकुलीश (लकुटीश, नकुलीश) शिव के १८ अवतारो में से एक माना जाता है। प्राचीन काल मे पाशुपत (शैव) सम्प्रदायो में लकुलीश सम्प्रदाय बहुत प्रसिद्ध था और अब तक राजपूताना, गुजरात, काठियावाड, दक्षिण (मईसोर तक), वंगाल और उडीसा मे लकुलीश की मूर्तिया पाई जाती है। उस मूर्ति के सिर पर बहुधा जैन-मूर्तियो के समान केश होते है। वह द्विभुज होती है। उसके दाहिने हाथ मे बीजोरा और बांये मे लकुट (दण्ड) रहता है जिससे उसका नाम लकुटीश (लकुलीश) पडा। वह मूर्ति पद्मासन बैठी हुई होती है। लकुलीश, ऊर्ध्वरेता (जिसका वीर्य कभी स्खलित न हुआ हो) माना जाता है,

प्रवेश में विष्णु ने भृगु मुनि को शाप दिया तो भृगु ने शिव की आराधना कर उनको प्रसन्न किया। इस पर उस मुनि के सम्मुख हाथ में लकुट लिए हुए शिव का कायावतार (अवतार) हुआ। जहाँ उनका यह अवतार हुआ वह स्थान कायावतार (कारवान्) कहलाया और उसकी रमणीयता के आगे वे कैलाश को भूल गए। बारहवें श्लोक में किसी स्त्री (पार्वती ?) के शरीर पर के आभूषणो का वर्णन है परन्तु वह किस प्रसग का है यह पूरा श्लोक सुरक्षित न होने से स्पष्ट नही होता। १३ वें श्लोक में शरीर पर भस्म लगाने, वल्कल के वस्त्र और जटाजूट धारण करने, और पाशुपत योग का साधन करनेवाले कुशिक आदि योगियो का (जो लकुलीश के मुख्य शिष्य थे) वर्णन है। श्लोक १४ से १६ तक में उन (कुशिक आदि) के पीछे होनेवाले एकलिंग जी के मंदिर की पूजा करनेवाले उक्त सम्प्रदाय के साधुओं का परिचय दिया है जिसमें उनको शाप और अनुग्रह का स्थान, हिमालय से सेतु (राम का सेतु) पर्यन्त रघु के वंश की कीर्ति को फैलानेवाला, तपस्वी, एकलिंगजी की पूजा करनेवाला और लकुलीश के उक्त मंदिर का बनानेवाला कहा है[37]।

जिसका चिन्ह (ऊर्ध्वलिग) मूर्ति मे बना रहता है [न (ल) कुलीश ऊर्ध्वमेढ़्ं पद्मासनसुसंस्थितं। दक्षिणेमातुलिङ्गं च वामे दंडं प्रकीर्नित— विश्वकर्मावतार वास्तुशास्त्र]। इस समय इस प्राचीन संप्रदाय को माननेवाला कोई नही रहा, यहा तक कि बहुधा लोग उस सम्प्रदाय का नाम भी भूल गए है, परन्तु प्राचीन काल मे उसके माननेवाले बहुत थे जिनमें मुख्य साधु (कनफटे, नाथ) होते थे। माधवाचार्य के 'सर्वदर्शनसग्रह' मे पाशुपत संप्रदाय का कुछ हाल मिलता है। उसका विशेष वृत्तात शिलालेखो तथा विष्णुपुराण, लिंगपुराण आदि पुराणो मे मिलता है। उसके अनुयायी लकुलीश को शिव का अवतार मानते थे जिसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई, एक दूसरी से भिन्न, कथाएं मिलनी है। उसका उत्पत्ति स्थान कायावरोहण (कायारोहण = कारवान् , बडौदा राज्य मे) माना गया है। लकुलीश उक्त सम्प्रदाय का प्रवर्तक होना चाहिये। उसके मुख्य चार शिष्यो के नाम कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य (लिंगपुराण, २४। १३१) मिलते है। एकलिंगजी के पूजारी साधु कुशिक की शिष्य-परम्परा मे थे क्योकि उक्त प्रशस्ति मे उसीका नाम दिया है। इस संप्रदाय के साधु निहंग होते थे, गृहस्थ नही और मूंडकर चेला बनाते थे। जाति-पाति का कोई भेद न था।

37......पाशुपतयोगभृतो यथार्थ-
ज्ञानावदातवपुष. कुशिकादयोन्ये।

१७वें श्लोक में स्याद्वाद (जैन) और सौगत (बौद्ध) आदि को विवाद में जीतनेवाले वेदांग मुनि का हाल है। १८वें श्लोक में उस (वेदांग मुनि के) कृपापात्र (शिष्य) आम्रकवि के द्वारा, जो आदित्यनाग का पुत्र था, उस प्रशस्ति की रचना होने का उल्लेख है। १९वें श्लोक में उस प्रशस्ति का राजा विक्रमादित्य के संवत् १०२८ में बनना सूचित किया है। २० वाँ श्लोक किसी की प्रसिद्धि के विषय में है जो अपूर्ण ही बचा है। आगे अनुमानत पौन पक्ति गद्य की है जिसमें कारापक (मदिर के बनवानेवाले) श्री सुपूजित-राशि का प्रणाम करना लिखा है तथा श्रीमार्तंड, श्री भ्रातृपुर, श्री सद्योराशि, लैलुक, श्रीविनिश्चितराशि आदि के नाम है।

इस लेख में एकलिंगजी के मंदिर की पूजा करनेवाले जटाधारी लकुलीश पाशुपत सप्रदाय के साधुओ (नाथो) को रघुवश की कीर्ति को हिमगिरि से सेतु तक फैलानेवाला कहा है। अतएव यह निश्चय करने की

भस्मागरागतरुवल्कजटाकिरीट–
लक्षमाण आविरभवन्मुनयः पुराणा ।। [१३]
तेभ्यो ....
.. क्लेशसमुद्गतात्ममहस,....योगिन ।
शापानुग्रहभूमयो हिमशिला व (ब)न्धोज्वलादागिरे-
रासेतो रघुवंशकीर्तिपिशुनाती(स्ती)व्र तप [।।१४।।]
.. ..श्रीमदेकलिङ्गसुरप्रभोः ।
पादाम्वु(म्बु)जमहापूजाकर्म्म कुर्व्वन्ति सयताः ।। [१५।।]
अश्वग्रामगिरि(री)न्द्रमौलिविलसन्माणिक्यमुत्केतनं
क्षुन्ना(ण्णा)म्भोदतडित्कडारशिखरश्रेणीसमुद्भासित [।]
. ...नरजनीचन्द्रायमाण मुहु-
स्तैरेतल्लकुलीशवेश्म हिमवच्छृङ्गोपमं कारितम् ।। [१६।।]

श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने यह प्रशस्ति छपवाई है (बम्बई एशि० सो० जर्नल, जि० २२, पृ० १६६–६७) और उसका साराश भी दिया गया है परन्तु उसके १४वे श्लोक के "हिमशिलाबन्धोज्वलादागिरेरासेतो रघुवंश कीर्तिपिशुनाः" इस वाक्य खण्ड का अर्थ वे उलटा कर गए। वास्तविक अर्थ यही था कि 'वे (योगी) हिमालय से सेतु पर्यन्त रघु के वंश की कीर्ति को फैलाते थे, परन्तु उन्होने उसका अर्थ यह किया कि 'उन योगियो की कीर्ति हिमालय से सेतु तक फैली हुई थीं', (पृ० १५२) जो सर्वथा अशुद्ध है और उसमे मूल का 'रघुवश' पद तो रह ही गया।

आवश्यकता है कि यहाँ 'रघुवश' का अभिप्राय किस और कहाँ के राजवंश से है।

एकलिंग महादेव मेवाड़ के राजाओ के इष्टदेव है इतना ही नही, किन्तु वे मेवाड़ के राज्य के स्वामी और मेवाड के राजा उनके दीवान (प्रतिनिधि) माने जाते है। इसीसे राजपूताने में मेवाड़ (उदयपुर) के महाराणा 'दीवान' या 'दीवानजी' नाम से भी प्रसिद्ध है। एकलिगजी के पुजारी, वहाँ के मठ के अधिपति (महत) और मेवाड़ के राजाओ के परम्परागत गुरु, बापा रावल से लगा कर महाराणा भीमसिंह के समय के आसपास तक[38] लकुलीश संप्रदाय के ये कनफटे साधु (नाथ) ही थे। इनको राज्य की तरफ से हजारो रुपयो की जागीर मिली हुई थी। अतएव जिस रघु-वंश की कीर्ति को ये साधु (नाथ) हिमालय से सेतु तक फैलाते थे वह रघु का वश मेवाड का राजवंश ही हो सकता है। दूसरा कोई नहीं। बापा रावल के सिक्के और नरवाहन के समय की उक्त प्रशस्ति से तो यही पाया जाता है कि बापा से नरवाहन तक अर्थात् वि० स० ७९१ से १०२८ तक मेवाड के राजा सूर्यवंशी माने जाते थे। इसके पीछे प्राचीन

38 एकलिंगजी के मठाधिपति लकुलीश सम्प्रदाय के नाथो का आचरण पीछे बिगड गया और वे स्त्रियाँ रखने और मद्य-माँस का सेवन करने लगे। महाराणा भीमसिंह के समय के आस पास उनको वहाँ से अलग किया गया और उनके स्थान पर सन्यासी नियत किए गए। तब से एकलिंगजी के पूजारी और वहाँ के मठाधिपति सन्यासी होते चले आते है। उनको 'गोसाईं' कहते है।*

* एकलिगजी के पुजारी महाराणा भीमसिह (वि० सं० १८३४–१८८५ = ई० स० १७७८–१८२८) के समय नाथ सम्प्रदाय के साधु नही थे। एकलिंगजी के मदिर की कचहरी के सामने की ओझा बाव नामक वापिका की महाराणा संग्रामसिह (द्वितीय, वि० सं० १७६७–९० = ई० स० १७१०–३४) के समय की प्रशस्ति से पाया जाता है कि उस समय वहाँ का महन्त अर्थात् पुजारी दसनामी दंडी सन्यासी था। इससे अनु-मान होता है कि वि० स० की अट्ठारहवी शताब्दी मे नाथ साधुओ को वहाँ से हटाकर दण्डी स्वामी नियत किये गये और अब भी वहां के दंडी सन्यासी ही महन्त है। वही के समाधा नामक स्थान के स्मारक मदिर की वि० स० १७०८ (ई० स० १६५१) की प्रशस्ति से भी यही बात विदित होती है। (सम्पा० टि०)

इतिहास के अधकार की दशा में, कई दूसरे राजवंशों की नाईं[39] उनके वंश की उत्पत्ति के विषय में भी एक दूसरी कल्पना भी खड़ी हो गई ।

---

39 हिंदुस्तान के भिन्न-भिन्न राजवशो का प्राचीन लिखित इतिहास न होने के कारण पिछले इतिहास या प्रशस्ति लेखको ने उनकी उत्पत्ति के विषय में कई एक दूसरे से भिन्न कल्पनाएँ की है परन्तु जब उनके प्राचीन शिलालेख या ताम्रपत्र आदि मिल जाते है तभी विदित होता है कि अमुक समय अमुक राजवंश की उत्पत्ति अमुक रीति से मानी जाती थी ।

दक्षिण के सोलंकियो के शक सं० ६४० (ई० स० १०१८) से लगाकर शक सं० १२४० (ई० स० १३१८) तक के अनेक ताम्रपत्रो एवम् शिलालेखो मे उनको चन्द्रवशी और पाण्डवो की सन्तान लिखा है परन्तु ई० स० १०८५ के आसपास कल्याण के सोलंकी राजा विक्रमादित्य (छठे) के राजपंडित प्रसिद्ध कश्मीरी कवि बिल्हण ने 'विक्रमाङ्कदेवचरित' नामक सोलंकियो के इतिहास का काव्य लिखा । उसमे उनकी उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि "एक समय जब कि ब्रह्मा सध्यावंदन कर रहे थे इंद्र ने आकर पृथ्वी पर धर्मद्रोह के बढ़न और देवताओ को यज्ञ-विभाग न मिलने की शिकायत कर उसके निवारण के लिये एक वीर पुरुष उत्पन्न करने की प्रार्थना की । इस पर ब्रह्मा ने संध्याजल से भरे हुए चुलुक (अजली, चुल्लू) की ओर ध्यानमय दृष्टि दी । उस चुलुक से त्रैलोक्य की रक्षा करनेवाला एक वीर पुरुष (चौलुक्य = सोलकी) उत्पन्न हुआ" । यदि बिल्हण को दक्षिण के सोलकियो के अपने समय से पहले के या अपने समय के ही शिलालेख या ताम्रपत्र मिल जाते और उनमें उनका चन्द्रवंशी (पाण्डवो की सतान) होना लिखा मिल जाता तो संभव है कि वह वैसा ही लिखता और ब्रह्मा के चुलुक से चौलुक्य (सोलंकी) की उत्पत्ति मानने की क्लिष्ट कल्पना न करता । गुजरात के सोलंकियो की प्रशस्तियाँ आदि लिखनेवालो को दक्षिण के सोलंकियो के पुराने शिलालेख और दानपत्र देखने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ हो, जिससे अनहिलवाडे के सोलकी राजा कुमारपाल के समय के चित्तौड के किले के लेख और बडनगर की वि० सं० १२०८ (ई० स० ११५१) की प्रशस्ति एवं त्रिलोचनपाल के श० सं० ६७२ (१०५१) के दानपत्र के तय्यार करनेवाले पडितो ने वही ब्रह्मा के चुलुक से चौलुक्य का उत्पन्न होना बतलाया; परन्तु प्रसिद्ध जैन विद्वान् हेमचन्द्र (हेमाचार्य) ने, जो कुमारपाल के समय तक जीवित थे, दक्षिण के सोलंकियो के ताम्रपत्रादि के अनुसार सोलंकियो का

मुहणोत नैणसी अपनी ख्यात के प्रारम्भ में ही मेवाड के राजाओं के विषय में लिखता है कि "सीसोदिये प्रारम्भ में गहिलोत (गुहिलोत) कहलाते थे। पहले इनका राज्य दक्षिण में नासिक त्र्यंबक की तरफ था। इनके पूर्वज सूर्य की उपासना करते थे। मत्र ध्यान करने पर सूर्य आ प्रत्यक्ष होता था, जिससे कोई जोधा उसको जीत न सकता था। उसके पुत्र न हुआ।

चन्द्रवशी और पाण्डवो की सन्तान होना लिखा है। इसी तरह वि० स० १४९७ (ई० स० १४४०) के आसपास जिनहर्षगणि ने 'वस्तुपालचरित' रचा, जिसमे सोलकियो को चन्द्रवशी माना है। इन दोनो जैन विद्वानो के उक्त कथन से अनुमान होता है कि गुजरात के ब्राह्मण विद्वानो की अपेक्षा जैन विद्वानो मे इतिहास का ज्ञान अच्छा था। चेदि के हैहय (कलचुरी) वशी राजा युवराजदेव (दूसरे) के समय की विल्हारी (जबलपुर जिले मे) की प्रशस्ति बनानेवाले कवि ने प्रसगवशात् सोलकियो की उत्पत्ति बतलाते हुए लिखा है कि "भरद्वाज के वीर्य से महाबली भारद्वाज (द्रोण) उत्पन्न हुआ। उसने अपना अपमान करने-वाले राजा द्रुपद को शाप देने के लिये अपने चुलुक मे जल लिया तो उसमें से साक्षात् विजय की मूर्ति-रूप एक पुरुष उत्पन्न हुआ जिससे चौलुक्य (सोलकी) वश चला।" पृथ्वीराज-रासो के कर्ता ने आबू पर्वत पर वसिष्ठ के अग्निकुण्ड से चालुक्क (सोलकी) का उत्पन्न होना बतलाया और आज-कल के सोलकी चन्द्रवशी होने की पुरानी बात को न जानने से अपने को अग्निवशी ही कहते है (सोलंकियो की उत्पत्ति के विषय की ऊपर लिखी हुई सब बातो के मूल प्रमाणो के लिये देखो, मेरा बनाया हुआ 'सोलंकियो का प्राचीन इतिहास'; प्रथम भाग, पृ० ३-१३ और नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन सस्करण, भाग १, सख्या २, पृ० २०७-२१८।

इसी तरह राठौड वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे भी भिन्न२ कल्प-नाएँ मिलती हैं। दक्षिण के राठौड राजा अमोघवर्ष (प्रथम) के समय शक स० ७८२ (ई० स० ८६०) के कौनूर के शिलालेख मे (एपि० इन्डि०, जि० ६, पृ० २९), गोविदराज (चौथे, सुवर्णवर्ष) के शक स० ८५२ (ई० स० ९३०) के खम्भात से मिले हुए दानपत्र मे (एपि० इंडि०, जि० ७, पृ० ३७), उसी राजा के शक स० ८५५ (ई० स० ९३३) के सागली से मिले हुए दानपत्र मे (इन्डि० ऐंटि० जि० १२, पृ० २४९) कृष्णराज (तीसरे, अकालवर्ष के शक स० ८८० (ई० स० ९५८) के कर्हाड के दानपत्र में (एपि० इडि०, जि० ४, पृ० २८२) और कर्क-

उसने पुत्र के लिये सूर्य से विनती की तब सूर्य ने कहा कि अंबा देवी की जात बोलो और पुत्र की इच्छा करो जिससे गर्भ रहेगा। राजा ने जात बोली राणी के गर्भ रहा। जब राणी जात देने को चली, राजा की सूर्य की उपासना मिट गई, शत्रुओ ने उस पर हमला कर दिया। राजा लडाई में

राज (दूसरे,—अमोघवर्ष) के शक स० ८६४ (ई० स० ६७२) के खर्डा के दानपत्र मे राठौडो का यदुवशी (यादव) होना लिखा है। राठौड राजा इन्द्रराज (तीसरे, नित्यवर्ष) के शक सं० ८३६ (ई० स० ६१४) के बगमुरा से मिले हुए दो दानपत्रो मे (बम्बई एशि० सोसा० जर्नल, जि० १८, पृ० २५७, २६१) और कृष्णराज (तीसरे, अकालवर्ष) के शक सं० ८६२ (ई० स० ६४०) के देवली से मिले हुए दानपत्र मे (एपि० इन्डि०, जि० ५, पृ० १६२, १६३) राठौडो का चन्द्रवश की यदु शाखा के सात्यकि के वश मे होना लिखा है। हलायुध पडित ने अपनी रची हुई 'कविरहस्य' नामक पुस्तक मे उसके नायक राठौड राजा कृष्णराज को सोमवंश (चन्द्रवंश का भूषण कहा है (बम्बई गैजेटियर, जि० १, भाग २, पृ० २०८–२०६)। दक्षिण के कलचुरी (हैहय) वशी राजा विज्जल के वर्तमान शक स० १०८४ (ई० स० ११६१) के मनगोलि के शिलालेख मे राठौडो को दैत्यवंशी लिखा है (एपि० इन्डि०, जि० ५, पृ० २०)। राठौडो के भाट उनके मूल पुरुष को राक्षस (? असुर) हिरण्यकशिपु की सन्तान कहते है (राजस्थान रत्नाकर, तरंग १ पृ० ८८) कर्नल टॉड ने इन्द्र की राठ (रीढ की हड्डी) से उनके मूलपुरुष का उत्पन्न होना लिखा है (टॉड राजस्थान, कलकत्ते का छपा, जि० २, पृ० २) और वर्तमान समय के राठौड अपने को सूर्य्यवंशी रामचन्द्र के पुत्र कुश की सन्तान मानते हैं।

इसी तरह वर्तमान चौहान अपने को पृथ्वीराजरासो के अनुसार अग्निवंशी मानते है, परन्तु अजमेर के अढाई दिन के झोपडे से, जो वास्तव में चौहान राजा आना (अर्णोराज) के द्वितीय पुत्र राजा वीसलदेव (विग्रहराज) का सरस्वती-मन्दिर था, मिली हुई एक बडी शिला से, जिसपर किसी अज्ञात कवि के बनाए हुए चौहानो के इतिहास के किसी काव्य का प्रारम्भ का भाग खुदा है, पाया जाता है कि उस समय चौहान सूर्य्यवशी माने जाते थे (कोकी रतप्रकियासाक्षी दक्षिण-मीक्षणम् मुररिपोर्देवो रवि पातु व ।।३३।। तस्मात्समालम्बनदण्डयोनिर-भूज्जनस्य स्खलत स्वमार्गे। वश: स दैवोढरसो नृपाणामनुद्गतैनोघुणकीट-रंध्र ।।३४।। समुत्थितोर्कादनरण्ययोनिरुत्पन्नपुन्नागकदबशाख.। आश्चर्य्य-

काम आया और उसका गढ़ बाँसला शत्रुओं ने ले लिया । राणी अंबाजी की जात देकर नागदागाँव में आ ठहरी । वहाँ उसको अपने पति के मारे जाने के समाचार मिले । वह चिता बनवाकर सती होने को तय्यार हुई तो उसे रोकने के लिये ब्राह्मण ने कहा कि सगर्भा स्त्री के सती होने का निषेध है । आपके दिन भी पूरे होने आए है । इससे वह रुक गई । पंद्रह बीस दिन बाद उसके पुत्र हुआ । फिर १५ दिन हो जाने पर उसने स्नान किया और चिता तय्यार करवाई । राणी जलने को चली । लड़का उसकी गोद में था । वहाँ कोटेश्वर महादेव के मदिर में ब्राह्मण विजयादित्य पुत्र के लिये आराधना किया करता था । उसको बुला कर राणी ने वस्त्र में लिपटा हुआ वह लड़का दे दिया । विजयादित्य ने उसे माल (दौलत) समझ कर ले लिया । इतने में लड़का रोया तब ब्राह्मण ने कहा कि में इस राजपूत के लड़के को लेकर क्या करूँ, बड़ा होने पर यह शिकार में जानवर मारेगा और दुनिया से लड़ाई झगड़े करेगा, मै पाप में पड़ूंगा और मेरा धर्म जाता रहेगा, इसलिये यह दान मुझसे लिया नही जाता । इस पर राणी ने उससे कहा कि तुमने कहा सो ठीक

मत प्रसरत्कुशोयम् वशोर्थिनां श्रीफलना प्रयाति ॥३५॥ आधिव्याधिकृवृतदुर्गतिपरित्यक्तप्रजास्तत्र ते सप्तद्वीपभजो नृपा समभवन्निक्ष्वाकुरामादय । . ॥३६॥ तस्मिन्नथारिविजयेन विराजमानो राजानुरजितजनोजनि चाहमान । . ॥३७॥) इसी तरह अजमेर के अन्तिम सम्राट् प्रसिद्ध पृथ्वीराज के समय मे कश्मीरी कवि जयानक (जयरथ) रचित पृथ्वीराजविजय महाकाब्य मे जगह-जगह पर चौहानो को सूर्य, रघु, इक्ष्वाकु आदि का वशज कहा है (काकुस्थमिक्ष्वाकुरघू च यद्दधत् पुराभवत्त्रिप्रवरम् रघो'कुलम् । कलावपि प्राप्य स चाहमानता प्ररूढतुर्यप्रवरम् बभूव तत् ॥२॥७१॥.. .भानोप्रतापोन्नतितन्वगोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना ॥७।५०॥) आबू पर अचलेश्वर के मन्दिर मे लगे हुए सिरोही के राजाओ के पूर्वज लुढदेव (राव लुभा) के समय के वि० सवत् १३७७ के शिलालेख मे चोहानो को चन्द्रवशी कहा है (निजायुधैर्दैत्यवरान्निहत्य सन्तोपयत्क्रोधयुतम् तु वच्छम् [वत्सम्] वच्छचास्तदाराधनतत्पराश्च चन्द्रस्य''''चन्द्रवश्या ॥८) । कर्नल टॉड ने चोहानो को अग्निवश मानकर भी उनके गोत्रोच्चार मे उन्हे सोमवशी कहा है (टॉड राजस्थान, जि० २, पृ० ४८६) ।

यहाँ केवल तीन राजवंशो के उदाहरण ही दिए गए है । अन्य राजवशों की भी उत्पत्ति यो ही भिन्न२ प्रकार से लिखी मिलती है । विस्तार-भय से उसका उल्लेख नही किया गया ।

है, परन्तु यदि मै सती होकर जलती हूँ तो मेरा यह वचन है कि इस लड़के के वंश में जो होगे वे १० पुश्त तक तेरे कुल के आचार का पालन करेंगे और तुझको बड़ा आनन्द देंगे । तब विजयादित्य ने उस लड़के को रख लिया। फिर राणी ने उसको धन, भूषण आदि दिया और वह सती हो गई। विजयादित्य के उस लड़के के वंशजो ने १० पीढी तक ब्राह्मण धर्म का पालन किया और वे नागदा[40] (नागर) ब्राह्मण कहलाए। विजयादित्य का वह सूर्यवंशी पुत्र गुहिलोत (गुहिल) सोमदत (सोमादित्य) कहलाया। उसके पीछे सीलावत (शीलादित्य) आदि हुए[41]।" यही कथा मेवाड़ की पुरानी ख्यातो में भी मिलती है और कर्नल टॉड ने भी बहुत कुछ इसीको उद्धृत किया है[42] परन्तु उसमें गुहादित्य (गुहिल) के पिता को वलभीनगर (काठियावाड़) का अंतिम राजा शीलादित्य माना है, जिसके समय में वलभी का राज्य नष्ट हुआ था और उसकी माता का नाम पुष्पावती दिया है। शीलादित्य का नाम न तो मुंहणोत नैणसी की ख्यात में और न मेवाड़ की ख्यातो में ही मिलता है। गुहिल का वल्लभी के अतिम राजा शीलादित्य के वश में होना भी सभव नही, क्योंकि उसका गुप्त स० ४४७ (वि० स० ८२३ = ई० स० ७६६-६७) का अलीना का ताम्रपत्र मिल चुका है[43] और मेवाड़ के राजवश का शीलादित्य (शील) जो गुहिल से पाँचवी पुश्त में हुआ, वि० स० ७०३ में मेवाड़ का राजा था, यह सामोली गॉव (मेवाड़ के भोमट ज़िले) से मिले हुए उक्त राजा के शिलालेख से निश्चित है। नैणसी के लेख और मेवाड़ की ख्यातो से यही पाया जाता है कि ब्राह्मण विजयादित्य का पालित पुत्र (गुहिल, गुहदत्त), जो मेवाड़ के राजवंश का मूलपुरुष हुआ, सूर्यवशी क्षत्रिय था; जैसा कि बापा रावल के सिक्के और नरवाहन के समय की वि० सं० १०२८ की प्रशस्ति से पाया जाता है। मूंहणोत नैणसी की लिखी कथा कितनी पुरानी है, यह निश्चित नहीं; परन्तु यह कहा जा सकता है कि वह वि० स० १७०५ से पूर्व लोगो में परम्परा से प्रसिद्ध चली आती थी क्योकि नैणसी अपनी ख्यात में, कई जगह, वृत्तान्त भेजने या लिखवानेवाले का नाम और उसके लिखने का संवत् भी

40 नागदा ब्राह्मण नागर है। जैसे प्रष्णोरे नागर ब्राह्मण जो मन्दसौर मे जा बसे मन्दसौर (दशपुर) के नाम से दसोरे (दशपुरे) कहलाए वैसे ही बडनगर (आनन्दपुर) के रहनेवाले नागर जो नागदा में आ बसे, उक्त नगर के नाम से नागदे कहलाए।

41 मूँहणोत नेणसी की मारवाडी भाषा की ख्यात, पृ० १।

42 टॉड राजस्थान, पृ० २३७-३८।

43 फ्लीट, गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १७३-८०।

देता है जिससे पाया जाता है कि उसकी ख्यात वि० सं० १७०६ और १७२५ के बीच में लिखी गई। नैणसी के कथन की छाया राजा शक्तिकुमार के समय के वि० सं० १०३४ के शिलालेख में पाई जाती है क्योकि उसमें लिखा है कि "आनदपुर (बड़नगर) से निकल हुए ब्राह्मणो (नागरो) के कुल को आनन्द देनेवाला महीदेव गुहदत्त जिससे गुहिलवंश चला[44] विजयी है।" 'महीदेव' के अर्थ के विषय में विद्वानो मे विवाद है। कोई उसका अर्थ 'ब्राह्मण' और कोई 'राजा' करते है, परन्तु नैणसी की कथा के अनुसार विजयादित्य के पालित पुत्र (गुहिल) और उसके वंशजों को चाहे ब्राह्मण कहो, चाहे क्षत्रिय कहो, बात एक ही है।

ई० सं० की १५वीं शताब्दी के अन्त के आस-पास तक के शिलालेखों आदि के देखने से यही पाया जाता है कि एक ही समय का एक लेखक तो गुहिल के वशजो को ब्राह्मण लिखता है तो उसी समय का दूसरा लेखक उनको क्षत्रिय बतलाता है।

रावल समरसिंह के समय के वि० सं० १३३१ के चित्तौड़ के और १३४३* के आबू के शिलालेखो के रचयिता नागर ब्राह्मण वेदशर्मा कवि ने पहले लेख में बापा को विप्र[45] (ब्राह्मण) कहा है और दूसरे में कहा है कि "ब्रह्मा के सदृश हारीत से बप्पक (बापा) ने पैर के कड़े के मिस से क्षात्र तेज प्राप्त किया और अपनी सेवा के छल से ब्रह्मतेज मुनि

44 आनन्दपुरविनिर्गतविप्रकुलानन्दनो महोदेव.।
जयति श्रीगुहदत्त प्रभव श्रीगुहिलवंशस्य ॥

(इन्डि० एन्टि०, जि० ३६, पृ० १६१)

45 जीयादानन्दपूर्वं तदिह पुरमिलाखण्डसौदर्यशोभि-
क्षोणीप्र(पृ)ष्ठस्थमेव त्रिदशपुरमध. कुर्व्वदुच्चै समृध्या।
यस्मादागत्य विप्रश्चतुरुदधिमहीवेदिनीक्षिप्तयूपो
बप्पाख्यो वीतरागश्चरणयुगमुपासीत(सीष्ट) हारीतराशेः॥

चित्तौड का लेख, श्लोक ६ (भावनगर इंस्क्रिप्शन्स, पृ० ७५)

इस लेख मे बापा का आनन्दपुर (बडनगर-गुजरात मे) से आकर हारीत राशि की चरण-सेवा करना लिखा है, जो विश्वास योग्य नही, क्योकि शिलादित्य, अपराजित, महेंद्र और बापा (कालभोज) की राज-

* आबू के अचलेश्वर शिवालय के मठ में महारावल समरसिंह के समय की प्रशस्ति है, वह वि० स० १३४२ मार्गशीर्ष सुदि १ (ई० स० १२८५) की है, वि० स०—१३४३ की नही। (सम्पा० टि०)

को दे दिया"[46] अर्थात् बापा ने क्षात्र धर्म धारण किया।[47] परन्तु उसी रावल समरसिंह के समय का वि० सं० १३३५ का एक जैन शिलालेख चित्तौड़ के किले से मिला है जिसमें उक्त रावल के पिता तेजसिंह की राणी जयतल्ल-देवी के द्वारा श्याम पार्श्वनाथ का मदिर बनाए जाने का उल्लेख है। उसमें ऊपर के दोनो लेखो के विरुद्ध गुहिलवंशी राजा सिंह को क्षत्रिय लिखा है[48]। रावल समरसिंह के पीछे महाराणा कुभकर्ण (कुभा) के वि० स०

धानी नागदा नगर ही थी। ऐसी दशा मे बडनगर से आना और हारीत रिशि की सेवा कर राज्य पाना कैसे सम्भव हो सकता है। ऐसे ही उक्त लेख में बापा को गुहिल का पिता बतलाया है वह भी स्वीकार करने योग्य नही है क्योकि उक्त चित्तौड के लेख से ३०३ वर्ष पूर्व की नरवाहन के समय की प्रशस्ति मे बापा का गुहिलवशी राजाओ मे चन्द्रमा के समान होना लिखा है जो अधिक विश्वास योग्य है। अनुमान होता है पुराने इति-हास से परिचित न होने के कारण प्रशस्ति के कर्ता ने गुहिल से भी पहले आकर नागदे मे बसनेवाले विजयादित्य आदि नागरो की कथा का सम्बन्ध मिलाने के लिये नागरो के मूलस्थान आनन्दपुर (बडनगर) से बापा के आने की कल्पना कर डाली हो।

46 हारीतात्किल बप्पकोऽहिवलयव्याजेन लेभे मह
क्षात्र धातृनिभाद्वितीर्य मुनये ब्राह्मं स्वसेवाच्छलात्।
एतेऽद्यापि महीभुज क्षिति तले तद्वंशसंभूतय
शोभते सुतरामुपात्तवपुषः क्षात्रा हि धर्म्मा इव ॥११॥

आबू का शिलालेख (इडि० एटि०, जि० १६, पृ० ३४७)

इस लेख मे बापा का हारीत की सेवा कर राज्यश्री पाना भी लिखा है (हारीत शिवसगमगविगमात्प्राप्त स्वसेवाकृते बप्पाय प्रथिताय सिद्धि-निलयो राज्यश्रिय दत्तवान् ॥१०॥) जो सर्वदा असम्भव है। मेवाड का राज्य तो गुहिलवशियो के अधिकार मे गुहिल से जो, बापा का आठवाँ पूर्वपुरुष था, चला आता था, जैसाकि हमने आगे बतलाया है।

47 नैणसी की ख्यात मे गुहिलवशियो का उसकी माता सती के वचना-नुसार १० पुश्त तक ब्राह्मणो के आचार-विचार का पालना लिखा है। बापा गुहिल का ८वाँ वंशधर था ऐसा हमारे शोध से पाया जाता है। यहाँ दो पुश्त का अंतर पडता है जिसका कारण या तो जो वंशावली शिलालेखो मे मिलती है, उसमे एक नाम का छूट जाना या नैणसी की ख्यात की संख्या में भूल का हो जाना हो।

48 क्षत्रियगुहिलपुत्रसिंह० (इंडि० एंटि०, जि० ३६, पृ० १८६)

१५१७ की कुंभलगढ की बड़ी प्रशस्ति में, जहाँ राजवश-वर्णन के पहले पुरानी प्रसिद्धियो के अनुसार मेवाड के कुछ राजाओ का हाल दिया है वहाँ उपर्युक्त चितौड के वि० स० १३३१ के लेख का वही श्लोक उद्धृत कर[49] बापा को विप्र (ब्राह्मण) कहा है और उसी महाराणा के समय के बने हुए 'एकलिंग-माहात्म्य' में 'उक्त च पुरातनै. कविभि·', कहकर वि० सं० १०३४ के आटपुर (अहाड) के लेख का वही श्लोक उद्धृत किया है जिसमें गुहदत्त को आनन्दपुर (बडनगर) से निकले हुए ब्राह्मणो (नागरो) के वंश को आनन्द देनेवाला लिखा है[50]। परन्तु उसी महाराणा कुभकर्ण के पिता महाराणा मोकल ने अपनी महाराणी वाघेली (बघेली) गौराँबिका के पुण्य के निमित्त एकलिंगजी से ६ मील दूर शृगी ऋषि के स्थान पर वि० सं० १४८५ में एक वापी बनवाई जिसकी प्रशस्ति के रचयिता योगीश्वर कविराज वाणीविलास ने, कुभलगढ़ की प्रशस्ति और एकलिंग-माहात्म्य के विरुद्ध, उक्त महाराणा मोकल के दादा क्षेत्र (क्षेत्रसिह, खेता) को 'क्षत्रियवंशमंडनमणि' लिखा है[51]। महाराणा कुंभकर्ण के द्वितीय पुत्र रायमल के राज्य के समय एकलिंगजी के मन्दिर के दक्षिणद्वार की वि०सं० १५४५ की प्रशस्ति में बापा को 'द्विज'[52] और उसी महाराणा के समय के बने हुए 'एकलिंग माहात्म्य' (एकलिंग पुराण) में 'ब्राह्मण' लिखा है परन्तु उसके विरुद्ध उसी महाराणा के राजत्वकाल के वि० स० १५५७ (न कि १५६७ जैसा कि छपा है) के नारलाई गाँव (जोधपुर राज्य के गोड़वाड़

---

49 जीयादानदपूर्वम्० (देखो ऊपर, टिप्पण ४५)।

50 आनन्दपुरविनिर्गतविप्रकुला० (देखो ऊपर टिप्पण ४४)

51 एव सर्दमकंटक समगमद्भूमंडल भूपति
हमीरो ललनास्मर सुरपद सपाल्य काश्चित्समा. ।
सम्यग्वर्महर तत: स्वतनय सुस्थाप्य राज्ये निजे
क्षेत्र क्षत्रियवंशमडनमर्णि प्रत्यर्थिकालानलं ।।५।।
शृगी ऋषि के स्थान की प्रशस्ति (अप्रकाशित)

52 श्रीमेदपाटभुवि नागह्रदे पुरेभू–
द्बाप्पो द्विजः शिवपदार्चित्तवृत्ति ।
(भावनगर इस्क्रिप्शंस, पृ० ११८)

ऐसे ही महाराणा कुंभकर्ण रचित 'रसिकप्रिया' नामक 'गीतगोविंद' की टीका में बापा को 'द्विज' बतलाया है (श्रीबैजवापेन सगोत्रवर्यं. श्री-बप्पनामा द्विजपुङ्गवोभूत् । हरप्रसादादपसादराज्यप्राज्योपभोगाय नृपो भवद: ।।५।।

जिले में) के जैनमंदिर के शिलालेख में गुहिदत्त (गुहदत्त) बप्पाक (बापा), खुम्माण आदि राजाओ को सूर्यवंशीय लिखा है ।[53]

इस प्रकार एक ही समय के ब्राह्मण-लेखक तो गुहिलवंशियों का ब्राह्मण होना, और जैन तथा साधु-लेखक सूर्यवशी और क्षत्रिय होना बतलाते हैं। इस भिन्नता का कारण मूंहणोत नैणसी की पुस्तक से ऊपर उद्धृत की हुई कथा से स्पष्ट हो जाता है।

बापा रावल का समय ।*

इस सिक्के के समय के लिये बापा रावल का समय निश्चय करना आवश्यक है। पुराने राजाओ का समय निर्णय करने में उनके शिलालेख और दानपत्र बड़ी सहायता देते हैं क्योकि उनमें बहुधा उनका निश्चित संवत् दिया हुआ होता है परन्तु बापा के राजत्वकाल का कोई शिलालेख या दानपत्र अब तक उपलब्ध नही हुआ। अतएव अन्य साधनो से उसका निर्णय करना पड़ता है। उपर्युक्त वि० सं० १०२८ की राजा नरवाहन के

---

53 श्रीमेदपाटदेशे । श्रीसूर्यवंशीयमहाराजाधिराजश्रीसि(शी)लादित्यवंशे श्रीगुहिदत्तराउलश्रीबप्पाकश्रीखुमाणादिमहाराजान्वये । राणाहमीरश्रीषे(खे) तसिंह श्रीलखमसिंहपुत्रश्रीमोकलमृगाकवंशोद्योतकारक. अतुलमहाबलराणा श्रीकुम्भकर्ण-पुत्रश्रीरायमलविजयमानप्राज्यराज्ये ...
(भावनगर इंस्क्रिप्शंस, पृ० १४१)

---

* मेवाड के गुहिलवशी नरेश और बापा रावल क्षत्रिय वर्ण का था या विप्रवंशी, इस विषय मे यथेष्ट चर्चा हो चुकी है। दसवी शताब्दी के पूर्व के शिलालेखो आदि मे तो इस विषय का कुछ भी उल्लेख नही मिलता। ग्यारहवी शताब्दी के शिलालेखो मे से एकलिंगजी के नाथो के मन्दिर की वि० सं० १०२८ की प्रशस्ति मे गुहिलवंश के राजा रघुवंशी होने का सकेत है, जो सूर्यवंश की उपशाखा है। अभी थोडे ही वर्ष हुए सम्भवतः मेवाड़ के नागदा से ही एक त्रुटित प्रशस्ति मिली है, जिसका कुछ भाग नष्ट हो गया है, परन्तु उक्त प्रशस्ति मेवाड के राजा वैरट ? के समय की पाई जाती है, जो मालवा के प्रसिद्ध परमार राजा भोज का समकालीन था। सौभाग्य से इस प्रशस्ति का संवत् का भाग सुरक्षित रह गया, जिससे पाया जाता है कि वह प्रशस्ति वि० सं० १०८३ (ई० स० १०२६) की है। उसमे उसको सूर्यवंशी बतलाया है। यह प्रशस्ति उदयपुर के विक्टोरिया म्यूजियम मे सुरक्षित है और अप्रकाशित है।

(संपा० टि०)

समय की प्रशस्ति के राजवर्णन के प्रारम्भ में बप्पक (= बापा) का वर्णन होने से इतना तो निश्चित है वि बापा उक्त सवत् से पहले किसी समय हुआ। मेवाड़ का राजा महाराणा कुभकर्ण (कुंभा) बड़ा ही वीर तथा विद्वान् भी था। उसके समय से पहले ही मेवाड़ के प्राचीन राजाओ की शुद्ध और शृंखलाबद्ध वशावली अलभ्य हो गई थी और जनश्रुति या किस्से कहानियों में उनके जो नाम मिलते थे वे ही उपलब्ध थे। इसलिये उसको ठीक करने का यत्न वि० सं० १५१७ में जब कुभलमेर (कुंभलगढ़) में मामादेव के मन्दिर की विस्तृत प्रशस्ति बनाई गई, किया गया था। क्योकि उस प्रशस्ति में जनश्रुति के आधार पर पहले कुछ प्रसिद्ध राजाओं का हाल लिखने के बाद 'अनेक प्राचीन प्रशस्तियों के आधार पर राजवश का वर्णन करना' लिखा है[54]। परन्तु जितनी प्रशस्तियाँ उक्त वश की इस समय मालूम हुई है उतनी उस समय देखी और पढी गई हो ऐसा पाया नही जाता। क्योकि उसके 'राजवर्णन' में जो वशावली दी है उसमें पुराने राजाओं की नामावली अपूर्ण ही है। उसके पीछे उसी राजा[55] ने कन्ह व्यास[56] की सहायता से "एकलिंग-माहात्म्य" बनाया जिसमें कितने एक राजाओं के वर्णन में तो पहले की प्रशस्तियो के कुछ श्लोक ज्यों के त्यो धरे है और बाकी के नए बनाऊ है। कही-कही तो "यदुक्त पुरातनैः कविभिः" (जैसा कि पुराने कवियो ने कहा है) लिखकर उन श्लोको की प्रामाणिकता दिखाई है। महाराणा कुभकर्ण (कुभा) को किसी प्राचीन प्रशस्ति या पुस्तक से बापा रावल का समय ज्ञात हो गया था जो उक्त 'माहात्म्य' में नीचे लिखे अनुसार दिया है—

यदुक्त पुरातनैः कविभि ॥

आकाशचन्द्रदिग्गजसख्ये सवत्सरे बभूवाद्यः।
श्रीएकलिंगशकरलब्धवरो बाप्पभूपालः ॥

---

54 अथ राजवर्ण्णनं ॥
अत. श्रीराजवंशोत्रप्रव्यक्त. [प्रोच्यते] धुना।
चिरंतनप्रशस्तीनामनेकानामत. क्षणात (? मवेक्षणात्) ॥१३८॥
(कुम्भलगढ की प्रशस्ति)

55 इति महाराजाधिराजरायरायाराणेरायमहाराणाश्रीकुम्भकर्णमहेंद्रेण बिरचिते मुखवाद्यक्षीरसागरे राजवर्णनो नाम [अध्यायः]।
महाराणा कुम्भकर्ण के समय का 'एकलिङ्गमाहात्म्य'।

56 श्रीकुम्भदत्तसर्वार्थी गोविंदकृतसत्पथा। पंचाशिकार्थम् (? केयं) बासेन कह्नव्यासेन कीर्तिता॥ (वही)

अर्थ—जैसा कि पुराने कवियों ने कहा है—

सवत् ८१० में श्रीएकलिंग शकर से प्राप्त वर राजा बाप्प (बापा) पहला [प्रसिद्ध राजा] हुआ।

इस श्लोक से इतना ही पाया जाता है कि बापा सं० ८१० में हुआ। यह निश्चय नहीं होता कि उक्त संवत् में उसकी गद्दीनशीनी हुई या उसने राज्य छोड़ा या उसकी मृत्यु हुई। इतना ही निश्चिय है कि उक्त पुस्तक की रचना के समय बापा का सं० ८१० में होना माना जाता था और यह स० पहले के किसी शिलालेख, ताम्रपत्र या पुस्तक से लिया गया था क्योकि उसके साथ यह स्पष्ट लिखा है कि 'पुराने कवि ऐसा कहते है।'

महाराणा कुभकर्ण (कुंभा) के दूसरे पुत्र रायमल के राज्य समय में 'एकलिंग माहात्म्य' नाम की दूसरी पुस्तक बनी जिसको 'एकलिंग पुराण' भी कहते है। उसमें बापा के समय के विषय में यह लिखा है कि—

राज्यं दत्त्वा स्वपुत्राय आथर्वणमुपागतः।
खचन्द्रदिग्गजाख्ये च वर्षम् नागह्रदे मुने ॥२१॥
क्षेत्रे च भुवि विख्याते स्वगुरोर्गुरुदर्शनम्।
चकार स समित्पाणिश्चतुर्थाश्रममाचरन् ॥२२॥

(एकलिंग-माहात्म्य, अध्याय २०)

अर्थ—हे मुनि, सँवत् ८१० में, अपने पुत्र को राज्य देकर संन्यास ग्रहण कर हाथ में समिध[57] लिए वह (बापा) अपने गुरु के पृथ्वी में प्रसिद्ध नागहृद क्षेत्र (नागद) अथर्व—विद्याविशारद[58] [गुरु] के पास पहुँचा और उसने गुरु का दर्शन किया।

इस कथन से पाया जाता है कि वि सं० ८१०[59] में बापा ने अपने पुत्र को राज्य देकर सन्यास धारण किया। बापा के राज्य छोड़ने का यह

57 तद्विज्ञानार्थम् स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणि श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। (मुण्डकोपनिषद् १।२।१२) जिज्ञासु ज्ञान के लिये गुरु के होम की अग्नि के लिये समिध (लकडी) हाथ मे लेकर उसके पास जाया करते थे।

58 राजाओं के गरु और पुरोहितो के लिये अथर्व विद्या (मंत्र, अभिचार आदि) में निपुण होना आवश्यक गुण माना जाता था (रघुवंश १।५९, ८।४, कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ० १५)

59 बीकानेर दरबार के पुस्तकालय मे फुटकर बातो के संग्रह की

संवत् स्वीकार करने के योग्य है क्योंकि प्रथम तो महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के एकलिंग-माहात्म्य से पाया जाता है कि यह संवत् कपोल-कल्पित नहीं किंतु प्राचीन आधार पर लिखा गया है। दूसरी बात यह है कि बापा ने मोरियों (मौर्यवंशियों) से चित्तौड़ का किला लिया यह प्रसिद्धि चली आती है[60]। चित्तौड़ के किले के निकट 'मानसरोवर' नामक तालाब है जिसको लोग राजा मान मोरी का बनाया हुआ बतलाते हैं।

एक पुस्तक है जिसमें मुहणोत नैणसी की ख्यात का एक भाग भी है। उसमें चन्द्रावतों (सीसोदियों की एक शाखा) की बात भी है, जहाँ राणा भावणसी (भुवनसिंह) के पुत्र चन्द्रा से लगाकर अमरसिंह हरिसिंघोत तक की वंशावली दी है और अन्त में दो छोटे २ संस्कृत काव्य हैं। इनमें से पहले में रावल बापा से लगाकर राणा प्रताप तक की वंशावली है जिसमें बापा का शक संवत् ६८५ (वि० सं० ८२०) में होना लिखा है—

बापाभिधः समभ(भ)वत् वसुधाधिपोसौ
पंचाष्ठषट्परिमितेथ स(श)कद्रकालो(ले)।

डॉ० टेसीटोरी सम्पादित 'डिसक्रिप्टिव कॅटलाग ऑफ बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मनुस्क्रिप्ट्स्', भाग २ (बीकानेर स्टेट) पृ० ६३।

इसमें दिया हुआ बापा का समय ऊपर दिये हुए दोनों एकलिंग-माहात्म्यों के समय से १० वर्ष पीछे का है और उसके लिये कोई प्रमाण नहीं दिया।

60 हर हारीत पसाय सातवीसाँ वर तरणी
मंगलवार अनेक चैत वद पंचम परणी।
चित्रकोट कैलास आप वस परगह कीधो
मोरीदल मारेव राज राया गुर लीधो।

मुहणोत नेणसी की ख्यात, पत्रा दूसरा, पृ० १॥

नागह्रदपुरे तिष्ठन्नेकलिंगशिवप्रभोः।
चक्रे बाप्पोऽर्चनं चास्मै वरान् रुद्रो ददौ ततः॥९॥
चित्रकूटपतिस्त्वं स्यात्वद्वंश्यचरणाद्ध्रुवम्।
मा गच्छताच्चित्रकूटं संततिः स्यादखण्डिता॥१०॥

ततः स निर्जित्य नृपं मोरी-
जातीयभूपम् मनुराजसंज्ञम्।
गृहीतवांश्चित्रितचित्रकूटं
चक्रेत्र राज्यं नृपचक्रवर्ती॥१८॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३।

उस पर वि० सं० ७७० का उक्त राजा का शिलालेख कर्नल टॉड के समय विद्यामान था जिसका अंग्रेजी अनुवाद 'टॉड राजस्थान' के अन्त में छपा है और जिसमें उक्त राजा मान के पूर्वजों की नामावली भी दी है। उक्त लेख से निश्चित है कि चित्तौड़ का किला सं० ७७० तक तो मान[61] मोरी के अधिकार में था जिसके पीछे किसी समय बापा ने उसे मोरियों से लिया हो। यह समय ऊपर दिए हुए बापा के राज्य छोड़ने के संवत् ८१० के निकट आ जाता है। कर्नल टॉड ने वि० सं० ७८४ में बापा का चित्तौड़ लेना माना है, वह भी करीब-करीब मिल जाता है। तीसरी बात यह है कि मेवाड़ में यह जनश्रुति चली आती है कि बापा ने 'सवत् एके एकाणुए' अर्थात् सं० १९१[62] में राज पाया। मेरे संग्रह में संवत् १७३८ भाद्रपद शुक्ला ८ गुरुवार की लिखी हुई महाराणा कुंभकर्ण के समय के एकलिंग माहात्म्य की पुस्तक है। उनमें जहाँ बापा का समय ८१० दिया है वहाँ हंसपद (टूटक का चिह्न) देकर हाशिये पर किसी ने "ततः शशिनन्दचन्द्र स० १९१ वर्षे" लिखा है जो उक्त जनश्रुति के अनुसार ही है। यदि इस जनश्रुति का प्रचार किसी वास्तविक संवत् के आधार पर हुआ हो तो उसके लिये केवल यही कल्पना की जा सकती है कि प्राचीन लिपि में ७ का अंक पिछले समय के १ के अंक का सा होता था जिससे किसी प्राचीन पुस्तक आदि में बापा का समय ७९१ लिखा हुआ रहा हो जिसको पिछले समय में १९१ पढ़ कर बापा का उक्त संवत् में राज पाना मान लिया गया हो। मेवाड़ के राजा शीलादित्य के संवत् ७०३ के शिलालेख में ७ का अंक वर्तमान १ के अंक से ठीक मिलता

61 मेवाड मे यह प्रसिद्धि चली आती है कि बापा ने चित्तौड का राज्य मानमोरी से लिया था। राजप्रशस्ति मे भी वैसा ही लिखा है (देखो टिप्पण ६०, श्लोक १८)। वहाँ 'मनुराज' लिखा है जो 'राजा मान' का सूचक है।

62 यह जनश्रुति पुरानी है क्योंकि 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' में बापा का सवत् १९१ मे राज्य पाना लिखा है—

चित्रकूटपस्तिसत्वम् स्या ॥१०॥ (ऊपर टिप्पण ६० में)
प्राप्येत्यादिवरान् बाष्प एकस्मिन् शतके गते।
एकःग्रनवतिसृष्टे माघे पक्षवलक्षके ॥११॥
सप्तमीदिवसे बाष्प स पंचदशवत्सर ।
एकलिंगेशहारीतप्रसादाद्भाग्यवानभूत् ॥१२॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३।

हुआ[63] है जिसको प्राचीन लिपियों से परिचय न रखने वाला पुरुष एक का अक ही पढ़ेगा। कर्नल टॉड ने स० ७६६ में बापा का जन्म होना और १५ वर्ष की अवस्था मे वि स० ७८४ में मोरियों से चित्तौड़ का किला लेना माना है। यदि उक्त कर्नल का दिया हुआ बापा के जन्म का संवत् ७६६ ठीक हो तो १५ वर्ष की छोटी अवस्था में चित्तौड का किला लेना न मान कर यदि २२ वर्ष की युवावस्था में उस घटना का होना मानें तो वि० सं० ७९१ में बापा का चित्तौड का राज्य लेना संभव हो सकता है। ऐसी दशा में बापा का राजत्वकाल संवत् ७९१ से ८१० तक आता है और यही समय उक्त सिक्के का है।

मेवाड के राजाओ की वशावली मे बापा का स्थान।

मेवाड़ के राजाओ की वंशावली में बापा का ठीक स्थान निश्चित नही हुआ। उक्त वश के राजा अल्लट तक के अर्थात् वि० स० १०१० तक के जो शिलालेख मिले है उनमें तो उस एक ही राजा का नाम दिया है जिसका लेख है। अल्लट के उत्तराधिकारी नरवाहन के समय की उपर्युक्त

63 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' लिपिपत्र ७४ के दूसरे खण्ड मे मेवाड के राजा शीलादित्य के संवत् ७०३ के लेख से ७०० का अक उद्धृत किया है जिसमे १०० का चिह्न तो 'सु' अक्षर (प्राचीन) के समान है। उसकी दाहिनी ओर ७ का अंक है जो वर्तमान १ के अंक के सदृश ही है। इस प्रकार से अंक लिखने की शैली प्राचीन है।

* मेवाड के गुहिलवंशी नरेशो की वंशावली भिन्न-भिन्न रूप से मिलती है। कितनी वशावलियो मे 'बापा रावल' का नाम है और कितनी मे बापा रावल का नामोल्लेख ही नही है। इन पर विचार करते हुए विद्वानो ने 'बापा' उपनाम मानकर उसका कोई वास्तविक नाम होना माना है, परन्तु नाम स्थिर करने मे मतभेद है। कोई शील, कोई अपराजित, कोई महेंद्र और कोई खुम्माण को बापा होना मानते है। डॉ० ओझा भी बापा उपनाम मानते हुए उसका नाम काल भोज होने की कल्पना करते है, जिसका आधार यह है कि ख्यातो मे खुम्माण का पिता बापा होने का उल्लेख है और राजप्रशस्ति महाकाव्य मे भी खुम्माण का पिता बापा होना लिखा है। इसके अतिरिक्त डूंगरपुर राज्य के ऊपरगाँव नामक ग्राम के श्रेयासनाथ के दिगम्बर जैन मन्दिर की प्रशस्ति मे भी जो वि० सं० १४६१ (चैत्रादि वि० सं १४६२) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १४०५) शुक्रवार की रावल कान्हडदेव के पुत्र प्रताप-

वि० सं० १०२८ की प्रशस्ति में तीन नाम दिए थे जिनमें से बीच का नष्ट हो गया है । उसके पीछे की कितनी एक प्रशस्तियो में प्रारम्भ से वशावली देने का यत्न किया है । उनमे प्रारम्भ से शक्तिकुमार तक की नामावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है––

सिह (पाता रावल) के समय की है, खुम्माण बापा का पुत्र होने का वर्णन है––

श्रीमद्बप्मात्मजोभूत्सुसित गुणगणादालिग कुंदकीर्त्ति-
श्चोडश्चुडामणि (त्वं) नृपकुलशिरसि (प्रा) प्तवान्संगरेय ।।
(खु) म्माणःक्षुण्णशत्रु (पृ) थु रिपुभुजगो वैरडागास्यद्रभूत
जा (तु) श्रीवैरसिह क्षितितल सरसीपद्मसिहोवनीश. ।।११।।

(मूल प्रशस्ति की छाप से)

यह प्रशस्ति महारावल समरसिह के समय की चित्तौड तथा आबू की प्रशस्तियो से केवल १३० वर्ष पीछे की है और महाराणा कुंभकर्ण (कुम्भा) के बनाये हुए कुंभलगढ की वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) की प्रशस्ति से लगभग ६५ वर्ष पूर्व की है । इससे डूगरपुर के राजाओ की वंशावली का क्रम भी ठीक हो जाता है, अतएव वह उपेक्षणीय नही है । एवम् इससे भी डॉ० ओझा का बापा का पुत्र खुम्माण होने की भीत्ति पर कालभोज को बापा मानना समुचित है, क्योकि आट्पुर की वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) की और कुम्भलगढ की वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) की प्रशरितयो मे कालभोज के बाद खुम्माण नाम दिया है । उपरोक्त प्रशस्ति अबतक अप्रकाशित है । डॉ० ओझा ने राजपूताना म्युजिअम अजमेर की वार्षिक रिपोर्ट में संक्षेप से इसका उल्लेख किया है एवम् डूगरपुर राज्य के इतिहास मे भी इस लेख का सवत् मात्र ही दिया है.। (संपा० टि०)

संख्या	आटपुर (अहाड) का लेख[64] वि० स० १०३४ का	चित्तौड़ का लेख[65] वि० सं० १३३१ का	आबू का लेख[66] वि० स० १३४२ का	राणपुर का लेख[67] वि० सं० १४९६ का	कुभलगढ का लेख[68] वि० स० १५१७ का	शिलालेखो से ज्ञात निश्चित समय
१		बप्प	बप्प (बप्पक)	बप्प		
२	गुहदत्त	गुहिल	गुहिल	गुहिल	गुहिल	
३	भोज	भोज	भोज	भोज	भोज	
४	महेंद्र				महींद्र	
५	नाग				नाग	
६	शील	शील	शील	शील	बप्प	वि०सं० ७०३[69] (शीलादित्य का लेख) वि०सं० ७१८[70]
७	अपराजित				अपराजित	
८	महेंद्र (दूसरा)				महीद्र (दूसरा)	
९	कालभोज	कालभोज	कालभोज	कालभोज	कालभोज	
१०	खोम्माण				खुम्माण	
११	मत्तट	मल्ल [त्त ?] ट			मत्तट	

64 इडि० एंटी०, जि०३९, पृ०१९१। 65 भावनगर इंस्क्रिप्शन्स, पृ० ७४–७७। 66 इडि० एंटी०, जि० १६, पृ० ३४७-५१। 67 भावनगर इंस्क्रिप्शन्स, पृ० ११४–१५। 68 उदयपुर के विक्टोरिया हॉल मे रखा हुआ है, अब तक छपा नही है। कुभलगढ का। 69 देखो ऊपर, टिप्पण ३०। 70 देखो ऊपर, टिप्पण ३१। वि० स० १५१७ का लेख श्री अक्षयकीर्ति व्यास द्वारा ए० इ० मे सम्पादित हो चुका है। (सं० टि०)।

संख्या	आटपुर (अहाड का लेख[64] वि० सं० १०३४ का	चित्तौड़ का लेख[65] वि० सं० १३३१ का	आबू का लेख[66] वि० सं० १३४२ का	राणपुर का लेख[67] वि० स० १४९६ का	कुंभलगढ का लेख[68] वि० सं० १५१७ का	शिलालेखो से ज्ञात निश्चित समय
१२	भर्तृपट्ट	भर्तृभट	भर्तृभट	भर्तृभट	भर्तृभट	
१३	सिंह	सिंह	सिंह	सिंह		
१४	खोम्माण (दूसरा)					
१५	महायक	महायक	महायक	महायक		
१६	खोम्माण (तीसरा)	खुम्माण	खुम्माण	खुम्माण		
१७	भर्तृपट्ट (दूसर ा)					वि० सं० ९९९, [71] १०००[72]
१८	अल्लट	अल्लट	अल्लट	अल्लट	अल्लट	वि० सं० १००८, १०१०[73]
१९	नरवाहन	नरवाहन	नरवाहन	नरवाहन	नरवाहन	वि० सं० १०२८[74]
२०	शालिवाहन				शालिवाहन	
२१	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	वि० सं० १०३४,[75]

64 65 66 67 68. देखो पृ० १२५ । 71. देखो ऊपर, टिप्पण ३२ । 72 देखो ऊपर, टिप्पण ३३ । 73. देखो ऊपर, टिप्पण ३४ । ये दोनो सवत् एक ही शिलालेख से हैं । 74. देखो ऊपर, टिप्पण ३५ । 75. देखो ऊपर, टिप्पण ६४ ।

इन पाँचो वशावलियो में से पहली राजा शक्तिकुमार के समय के वि० सं० १०३४ क लेख से है जो सबसे पुरानी और पूर्ण है। उसमें तो 'बापा' (बप्प) का नाम ही नही है। परन्तु उसके पूर्व की उपर्युक्त नरवाहन की प्रशस्ति में, जो वि० स० १०२८ की है, बापा को गुहिलवंश के राजाओं में चन्द्र के समान (प्रकाशमान) लिखा है जिससे शक्तिकुमार के पहले बापा का होना निश्चित है । ऊपर हम बतला चुके है कि प्राचीन प्राकृत बप्प शब्द प्रारम्भ में पिता का सूचक था और पीछे से नाम के लिये तथा अन्य अर्थों में भी उसका प्रयोग होता था[76]। अतएव यह सभव है कि शक्तिकुमार के लेख में बप्प नाम का प्रयोग न कर वास्तविक नाम का प्रयोग किया हो परन्तु उसका वास्तविक नाम क्या था इसका उक्त लेख से कुछ भी निश्चय नहीं हो सकता।

दूसरी वंशावली चित्तौड़ के किले पर की रसिया की छत्री के द्वार के भीतर लगे हुए रावल समरसिंह के समय के वि० स० १३३१ के शिलालेख से है । तीसरी वंशावली उसी रावल समरसिंह के समय के वि० स० १३४२ के शिलालेख से है ।* ये दोनो शिलालेख चित्तौड के रहनेवाले नागर

76 देखो ऊपर, टिप्पण १६ ।

* महारावल समरसिंह के समय की चित्तौड की वि० सं० १३३१ आषाढ़ सुदि ३ शुक्रवार (ई० स० १२७४) की और आबू के अचलेश्वर के शिवालय के मठकी वि० सं० १३४२ मार्गशीर्ष सुदि १ (ई० सं०१२९५) की प्रशस्तियो मे मेवाड के गुहिलवंशी नरेशो को ब्राह्मण होना बतलाया है और बापा रावल को गुहिल से पूर्व स्थान दिया है। यह दोनो बाते कुडा गाँव की वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) और एकलिंगजी की वि० सं० १०२८ (ई० स० ९७१) की प्रशस्तियो से निर्मूल पाई जाती है। किंतु इन दोनो बातो से उक्त प्रशस्तियो का महत्व नष्ट नही होता । गुहिल से सातसौ और बापा रावल से लगभग साढे पाँचसौ वर्ष पीछे ये दोनो प्रशस्तियाँ निर्मित हुई, अतएव इनमे कुछ स्थल पर भूले भी होना सम्भव है ।

आटपुर की वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) की प्रशस्ति (जिसका अब पता ही नही है) के आधार पर गुहिल राजवंश की वंशावली का क्रम ठीक होता है। उक्त प्रशस्ति में आरम्भ मे 'आनन्दपुरविनिर्गतविप्रकुलानंदनो महीदेव । जयति श्रीगुहदत्त· प्रभव श्रीगुहिलवंशस्य' श्लोक है। इससे उक्त राजवंश का आनन्दपुर से निकलने वाले ब्राह्मण वश से कुछ सम्बन्ध अवश्य पाया जाता है । वह सम्बन्ध किस प्रकार का था,

ब्राह्मण प्रियपटु के पुत्र वेदशर्मा के रचे हुए हैं । ये दोनों वंशावलियाँ अपूर्ण हैं । चित्तौड के ही रहनेवाले ब्राह्मण कवि को वही के राजाओ का वंशवर्णन करते समय उनकी पूरी वंशावली का न मिलना यही बतलाता है कि उस समय मेवाड के राजवंश का प्राचीन इतिहास ठीक-ठीक उपलब्ध न था ।

यहाँ उसके विवेचन का स्थल नही है । इस प्रशस्ति को हो सकता है कि महारावल समरसिंह के समय की प्रशस्तियो के रचयिता वेदशर्मा ने जो नागर ब्राह्मण था, मूलभूत आधार मानकर उसके उपरोक्त श्लोक का अर्थ ब्राह्मण वाचक समझ मेवाड के राजाओ को ब्राह्मणवंशी लिख दिया हो, जो आश्चर्य की बात नही है । गुहिल के पूर्व बापा का नाम उल्लिखित होने का कारण यह जान पडता है कि वेदशर्मा ने जैन विद्वानो के कथन को मान्य किया, जो मेवाड के राजवंश को वल्लभी से इधर आना मानते रहे । वल्लभी के राजाओ के दानपत्रो मे नरेश के मे नाम के पूर्व 'बप्प-पादानुध्यात्' वाक्य प्रयोग करने की प्रथा होने से वेदशर्मा ने यह क्रम ग्रहण कर मेवाड के राजाओ की वंशावली को आरम्भ किया और आरम्भ मे बापा रावल का वर्णन कर आगे गुहिल से वंशावली तथा इतिहास को वर्णित करने का यत्न किया ।

आटपुर की प्रशस्ति तथा इन दोनो प्रशस्तियो मे उल्लिखित वंशा-वलियो का मिलान करने पर अधिक अन्तर नही पाया जाता, जैसा कि डॉ० ओझा के इस निबन्ध मे दिये हुए वशक्रम से प्रकट है । इन दोनो प्रशस्तियो में आटपुर मे उल्लिखित प्रशस्ति के कुछ नाम नही है, जिसका कारण यही जान पडता है कि वेदशर्मा ने उन राजाओ के नाम छोड दिये, जिनका वंश नही चला और जिनमे क्रमपूर्वक वंश चला वे ही नाम रखे । ऐसा बहुधा अन्य प्रशस्तियो और वंशावलियो मे भी मिलता है, कि जिनका वश अवशेष नही रहना, उनके नामो को वर्णन मे लिया ही नही जाता । ।

उस समय के लिये ही नही, यह अब भी सर्वथा असम्भव है कि ग्रन्थ निर्माण के समय खोजपूर्वक सम्पूर्ण रूप से सामग्री प्राप्त की जाय और तद-नन्तर ही रचना की जाय । यही बात इन प्रशस्तियो के लिये भी हो सकती है एव जब विभिन्न मत और जनःश्रुतियाँ होती है, रचनाकार के लिये कठिन समस्या हो जाती है । और वेदशर्मा के लिये भी यही स्थिति थी । अतएव उसने चित्तौड की प्रशस्ति मे बापा को विप्र होना लिखकर आबू की प्रशस्ति मे हारीत से क्षात्रत्व प्राप्त करने का उल्लेख किया । प्राय यह नियम है कि जितने साधन प्राप्त होते है, उन ही के आधार पर रचना होती है

यही नहीं, उसकी शुद्ध वंशावली भी ज्ञात न थी, क्योंकि उसमें बापा को, जो गुहिल के वंश में अर्थात् उससे कई पुश्त बाद हुआ, गुहिल का पिता लिख दिया है जो सर्वथा असंभव है। उसी राजा समरसिंह के समय का वि० स० १३३२ का चीरवा गाँव के मंदिर का शिलालेख ‡ चित्तौड के ही रहनेवाले

और रचनाकार काल्पनिक बुद्धि का हुआ तो वह कल्पना का भी अपनी तरफ से पुट दे देता है। अस्तु, वेदशर्मा को जितने साधन सुलभ थे, उसके आधार पर उसने उभय प्रशस्तियो की देववाणी सस्कृतभाषा मे रचना की, जो महारावल समरसिंह के सातसौ वर्ष पूर्व के इतिहास पर कुछ न कुछ प्रकाश अवश्य डालती है।

ऐसा पाया जाता है कि युद्धजनक परिस्थितियो के कारण उस समय भी 'गुहिलवशी नरेशो को कितनी ही बार राजधानियाँ बदलनी पडी थी। शत्रुओ द्वारा राजधानिया नष्ट-भ्रष्ट हुई। कभी नागदा, कभी आहाड और कभी चित्तौड इस प्रकार राजधानियो के परिवर्त्तन एवम् फिर शत्रुओ का आक्रमण हो तो इतिहास की सम्पूर्ण सामग्री सुरक्षित रहना असम्भव है। इस अवस्था मे महारावल समरसिंह (जो प्राप्त शिलालेखो के आधार पर पाया जाता है कि आठवी शताब्दी से चवदहवी तक के गुहिलवशी नरेशो मे विद्वान् और इतिहास-प्रेमी राजा था) नष्ट होते हुए स्ववश के इतिहास को सुरक्षित रखने के लिये प्रेरित हुआ और उसने चित्तौड के निवासी वेदशर्मा नामक ब्राह्मण विद्वान् द्वारा बडी-बडी प्रशस्तियो की रचना करवा चित्तौड तथा आबू मे स्थापित करवाई, कम महत्व की बात नही है। इनमे से चित्तौड की प्रशस्ति का तो पूर्व भाग जिसमे राजा नरवर्मा तक का वर्णन है विद्यमान है और आगे का भाग दूसरी पट्टिका नष्ट हो जाने से अप्राप्य है, जिससे दो सो वर्ष तक का वर्णन ठीक-ठीक नही मिलता है और इसकी पूर्ति अबतक नही हो सकी है। यह डॉ० ओझा के परिश्रम का फल है कि उन्होने अपनी खोज से इस अवधि का इतिहास भी दिया है। आबू की प्रशस्ति इस समय भी विद्यमान है और यह प्रकट करती है कि महारावल समरसिंह का आबू पर भी अधिकार रहा हो।

चित्तौड़ और आबू की प्रशस्तियो की ऐतिहासिक दृष्टि से अबतक परीक्षा नही की गई है। ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो उसमे गुहिलवश के इतिहास की बहुत सी सामग्री मिलेगी। (सम्पा० टि०)

‡ चीरवा गाँव की प्रशस्ति वि० सं० १३३२ की नही होकर वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) की है। (संपा० टि०)

चैत्रगच्छ के जैन साधु भुवनसिंह सूरि के शिष्य रत्नप्रभसूरि ने तैयार किय जिसमें उपर्युक्त नरवाहन के लेख की नाईं बप्पक (बप्पक = बापा) का गुहिल के पुत्र के वंश में अर्थात् गुहिलोत वंश में होना बतलाया है[77] जिससे यह कहना अनुचित न होगा कि रावल समरसिंह के समय में भी ब्राह्मण विद्वानों की अपेक्षा जैन विद्वानो में इतिहास का विशेष ज्ञान था।

चौथी वशावली महाराणा कुभकर्ण (कुंभा) के समय के राणपुर के जैन मन्दिर के वि० स० १४९६ के लेख से है, जिसमें शक्तिकुमार तक की वशावली उपर्युक्त आबू के वि० सं० १३४२ के लेख के अनुसार ही है। उसमें भी बप्प (बापा) को गुहिल का पिता लिखा है जो स्वीकार करने योग्य नहीं है।

पाँचवी वंशावली महाराणा कुभकर्ण के समय के कुंभलमेरु (कुंभलगढ़) के किले के मामादेव के मदिर की वि० सं० १५१७ की बड़ी प्रशस्ति से है। उक्त प्रशस्ति की रचना के समय के बहुत पूर्व से ही मेवाड़ के राजवंश की संपूर्ण और शुद्ध वंशावली उपलब्ध नही थी। उसको ठीक करने का यत्न उस समय अनेक प्राचीन प्रशस्तियों के आधार से किया गया[78]। बापा को उसमें कहाँ स्थान देना इसका भी विचार हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है, क्योकि चित्तौड़, आबू और राणपुर के मंदिर के लेखो में बापा को गुहिल का पिता माना था जिसको स्वीकार न कर गुहिल के पाचवें वशधर शील (शिलादित्य) के स्थान पर बप्प[79] (बापा) का नाम धरा। उसीके आधार पर कर्नल टॉड ने भी शील को ही बापा और उसका वि० सं० ७८४ में चित्तौड लेना माना। परन्तु यदि उस समय उक्त शील (शिलादित्य) का वि० सं० ७०३ का शिलालेख मिल जाता तो सम्भव है कि कर्नल टॉड शील को बापा न मान कर उसके किसी वंशधर को बापा मानते।

बापा का वि० सं० ८१० में सन्यास लेना ऊपर बतलाया जा चुका है और पिछले कितने एक शिलालेखों[80] तथा ख्यातों[81] में खुंमाण को

77 देखो ऊपर, टिप्पण १०।

78 देखो ऊपर, टिप्पण ५४।

79 तस्मिन् गुहिलवंशेभूदभोजनामावनीश्वर।
तस्मान्महींद्रनागाह्वो बप्पाख्यश्चापराजितः ॥१३९॥
(कुम्भलगढ की प्रशस्ति)

80 ता रावलख्या पदवी दधानो बापाभिधान स रराज राजा ॥१९॥
तत खुमाणाभिधरावलोस्मात् ....॥२०॥
(राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३)

81 रावल खूमाण बापा रो तिणरो कवित (मूंहणोत नैणसी की ख्यात, पत्रा १, पृ० २)।

बापा का पुत्र बतलाया है अतएव कालभोज[82] का नाम बापा होना चाहिए । ऐसा मानने में अपराजित, महेंद्र (दूसरा) और कालभोज इन तीन राजाओ का काल अनुमान १०० वर्ष मानना पड़ता है जो ऐतिहासिक दृष्टि से विरल होने पर भी असभव नही है क्योकि अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ इन तीन बादशाहो का राज्य-समय शाहजहाँ के कैद होने तक १०२ वर्ष और उसकी मृत्यु तक १०६ वर्ष से कुछ अधिक ही आता है ।

बापा और कालभोज एक ही राजा के नाम मानने पर इस सिक्के के

---

82 महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी ने 'वीरविनोद' नामक मेवाड के बृहत् इतिहास मे (भाग १, पृ० २५०) अपराजित के उत्तराधिकारी महेंद्र (दूसरे) का नाम बापा होना माना है जिससे मैं सहमत नही हो सकता क्योकि ऐसा मानने मे उन दो राजाओ के लिये अनुमान १०० वर्ष का समय मानना पडता है और वह कथन मेवाड की जनश्रुति के जो बापा के पुत्र को खुमाण बतलाती है, विरुद्ध है । श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने राजा शक्तिकुमार के समय का आटपुर (आहाड) का लेख छापते समय मेवाड के राजाओ की वंशावली मे बप्प (बापा) का स्थान निश्चय करने का यत्न इस तरह किया है कि अपराजित के लेख के वि० सं० ७१८ और अल्लट के सं० १०१० के बीच २९२ वर्ष का अन्तर है जिसमे १२ राजा हुए । अतएव प्रत्येक राजा का राज्य-समय औसत हिसाब से २४⅓ वर्ष माना । फिर बापा का वि० सं० ८१० मे राज्य छोडना स्वीकार कर अपराजित के सं० ७१८ और बापा के स० ८१० के बीच के ९२ वर्ष के अन्तर के लिये भी वही औसत लगा कर अपराजित से चौथे राजा खुम्माण को बापा ठहराया (इंडि० एंटि० जि० ३९ पृ० १९०) । परन्तु हम उनके कथन को ठीक नही समझते, क्योकि मेवाड मे बापा का पुत्र खुमाण होना माना जाता है जैसा कि ऊपर (टिप्पण ८०, ८१ मे) बतलाया गया है । दूसरा यह भी कारण है कि जो औसत १२ राजाओ के लिये आई उसी को चार राजाओ के लिये भी मान लेना इतिहास स्वीकार नही करता क्योकि कभी-कभी दो या तीन राजाओ के १०० या उससे अधिक वर्ष राज्य करने के उदाहरण मिल जाते हैं । बूंदी के महाराब रामसिहजी की गद्दीनशीनी वि० स० १८७८ मे हुई और वर्तमान वि० सं० १९७७ मे उनके पुत्र श्रीमान् महाराव रघुवीरसिहजी बूंदी का शासन कर रहे हैं । इन ९९ वर्ष में वहाँ दूसरी पुश्त चल रही है । अकबर से शहजहाँ के कैद होने तक के तीन बादशाहो का राज्य समय १०२ वर्ष निश्चित ही है ।

विषय में यह शका हो सकती है कि कालभोज मुख्य नाम है और बापा प्रेम या महत्त्व का प्रसिद्ध नाम । ऐसे उपाधि के नाम की राजा के पीछे प्रसिद्धि हो सकती है किंतु उसी समय के सिक्के पर तो प्रधान नाम ही होना चाहिए । इसका उत्तर यह है कि एक ही राजा के एक या अधिक उपनाम उसके जीवित काल में प्रचलित होने पर सिक्के और शिलालेखो में अकेले उपनाम का भी प्रयोग मिलता है । जैसे कन्नौज के प्रतिहार (पडिहार) राजाओ के दानपत्रो में भोजदेव (प्रथम) का नाम भोजदेव ही मिलता है और उसीके विक्रम सवत् ९०० के दानपत्र (एपि० इंडि० जिल्द ५ पृ० २११–१२) में तथा उसी के ग्वालियर से मिले हुए संवत् ९३३ के लेख (एपि० इंडि० जिल्द १, पृ० १५९) में उसका नाम भोजदेव ही है, परन्तु वहीं से मिले हुए विक्रम संवत् ९३२ के उसीके लेख (वहीं, पृ० १५६) में उसका उपनाम 'आदिवराह' ही दिया है और उसीके सिक्के पर भी 'श्रीमदादिवराह' लेख है 'भोजदेव' नही (स्मिथ, इडियन म्यूज़ियम, कलकत्ते के सिक्को की सूची, पृ० २४१) ।

बापा से सबध रखनेवाली दत कथाओं की जाॅच ।

(१) एक कथा ऐसी है कि जिस समय बापा का पिता ईडर के भीलों के हमले में मारा गया उस समय बापा की अवस्था तीन वर्ष की थी । जिस बडनगरा (नागर) जाति की कमलावती ब्राह्मणी ने पहले गुहादित्य की रक्षा की थी बापा की माता भी उसे लेकर उसीके वशजो के शरण में चली गई । वे उसको पहले भाॅडेर के किले में और कुछ समय पीछे नागदा में ले गए । वहाँ का राजा सोलकी राजपूत था । बापा वहाँ के जंगलो और झाडियो में फिरा करता था । एक दिन उसकी भेंट हारीत नामक साधु से हुई जो एक झाड़ी में स्थापित एकलिंगजी की मूर्ति की पूजा किया करता था । हारीत ने अपने तपोबल से उसका राजवंशी एव भविष्य में बड़ा राजा होना जान लिया और उसको अपने पास रक्खा । बापा हारीत की गौ (कामधेनु) को चराया करता था । उसकी एकलिंगजी में पूर्णभक्ति तथा अपने गुरु (हारीत) में बडी श्रद्धा थी । गुरु ने उसकी भक्ति मे प्रसन्न हो उसके क्षत्रियोचित यज्ञोपवीत आदि सस्कार किए और जब वह अपने तपोबल से विमान में बैठ कर स्वर्ग में जाने लगा उस समय बापा कुछ देर से वहाँ पहुँचा । विमान पृथ्वी से कुछ ऊँचा चला गया । इतने में हारीत ने बापा को देखते ही कहा कि मुँह खोल । बापा ने वैसा ही किया । गुरु ने ऊपर से पान थूका परन्तु बापा को उसे मुँह में लेने से घृणा हो गई जिससे वह कुछ हट गया और पान उसके पैर पर गिरा ।

गुरु ने कहा कि पान तेरे पैर पर गिरा है इस लिये मेवाड की भूमि तेरे वंशजो के पैरो से कभी न निकलेगी । यह आशीर्वाद पाने के बाद बापा अपने नाना मोरीराजा (मान) क पास चित्तौड़ में जा रहा और अन्त में चित्तौड़ का राज्य उससे छीन कर मेवाड़ का राजा हो गया[83] ।

(२) दूसरी कथा यह है कि हारीत ने बापा की सेवा से प्रसन्न होकर स्वर्ग में जाते समय उससे कहा कि अमुक जगह १५ करोड़ मोहरें गडी है उनको वहाँ से निकाल कर सेना तैयार कर और चित्तौड के मोरी राजा को मार कर चित्तौड ले ले । बापा ने वैसा ही किया और उससे चित्तौड का राज्य ले लिया[84] ।

(३) तीसरी कथा ऐसी है कि बापा ने हारीत से राज्य-चिन्ह रूपी पैर का सोने का कडा पाया और वह राजा बना[85] ।

ये दतकथाएँ और ऐसी ही दूसरी कथाएँ, जिनमें बापा का देवी के बलिदान के समय एक ही झटके से दो भैंसो के सिर उडाना, बारह लाख बहत्तर हज़ार सेना रखना, चार बकरे खा जाना, पैंतीस हाथ की धोती और सोलह हाथ का दुपट्टा धारण करना ३२ मन का खड्ग रखना,[86] वृद्धावस्था में खुरासान आदि देशो को जीतना, वही रहकर वहाँ की अनेक स्त्रियों से विवाह करना, वहाँ उसके अनेक पुत्रो का होना, वही मरना, मरने पर उसकी अंतिम क्रिया के लिये हिंदू और वहाँ वालो में झगड़ा होना और अन्त में कबीर की तरह शव की जगह फूल ही रह जाना आदि लिखा मिलता है; ये बातें अतिशयोक्ति के साथ लिखी हुई होने के कारण विश्वासयोग्य नहीं मानी जा सकतीं । उन कथाओ का आशय यही है कि बापा के पास राज्य नही था। वह अपने गुरु हारीतराशि की गौएँ चराया करता था, गुरु की कृपा से उसको राज्य मिला और वह गुहिल वंश में पहला प्रतापी राजा हुआ । इससे उसको 'आद्यः' (पहला) कहा है । ऐसी कथाओ पर विश्वास कर कोई-कोई यह अनुमान करते है कि

83 यह कथा कुछ हेर-फेर के साथ कर्नल टॉड ने लिखी है (राजस्थान, पृ० २३९-४१) । कर्नल टॉड ने शील को बापा मान लिया था जिससे शील के पिता नागादित्य (नाग) का भीलो के हाथ से मारा जाना लिखा है ।

84 मुहणोत नैणसी की ख्यात, पत्रा १, पृ० २ ।

85 वि० स० १३४२ का आबू का लेख, श्लोक १०-११ ।

86 मुहणोत नैणसी की ख्यात, पत्रा २, पृ० १० ।

हारीत ने अन्त समय अपने शिष्य बापा को अपनी जागीर देकर राजा बनाया। कोई हारीत के दिए हुए धन से चित्तौड का राज छीनना मानते है। परन्तु हम उनसे सहमत नही हो सकते क्योकि गुहिल वंश का राज्य तो गुहिल (गुहदत्त गुहादित्य) के समय से चला आना निश्चित है। ई० स० १८६९ में राजा गुहिल के २००० से अधिक चॉदी के सिक्के आगरे से गडे हुए मिले जिनपर 'श्री गुहिल'[87] लेख है। इन सिक्को से पाया जाता है कि गुहिल स्वतन्त्र राजा था। जयपुर राज्य के चाकसू नामक प्राचीन स्थान से वि० स० ११०० के आस-पास का गुहिलवंशियो का एक शिलालेख मिला है जिसमें गुहिलवंशी राजा भर्तृभट (प्रथम) से बालादित्य तक के १२ राजाओ के नाम दिए है[88]। वे चाकसू के आस-पास के इलाके पर, जो आगरे के प्रदेश के निकट था, राज्य करते थे। सिक्के एक जगह से दूसरी जगह चले जाते है यह निर्विवाद है, परन्तु एक ही जगह एक साथ एक ही राजा के २००० से अधिक सिक्को के मिलने से यह भी संभव हो सकता है कि वे सिक्के वहाँ चलते हो और वहाँ तक उसका राज्य हो, जैसा कि मि० कार्लाइल का अनुमान है[89]। चाकसू का शिलालेख ई० स० की ग्यारहवी शताब्दी तक पूर्व में मेवाड़ से बहुत दूर गुहिलवंशियो का राज्य होना सिद्ध करता है। गुहिल के उन सिक्को से यह भी संभव हो सकता है कि गुहिल के पहले से भी इस वंश का राज चला आता हो जिसका कोई हाल अब तक हमको निश्चय के साथ नही मिला। काल पाकर पिछले लेखको ने गुहिल के प्रतापी होने से उससे ही वंशावली लिखी हो। गुहिल से चौथा राजा शिलादित्य हुआ जिसके समय का वि० स० ७०३ का शिलालेख मिला है जिसे पत्रिका की इसी संख्या में पडित रामकर्ण जी ने संपादित किया है। इसमें उस राजा को शत्रुओं को जीतनेवाला, देव-द्विज और गुरुजनो को आनन्द देनेवाला और अपने कुल रूपी आकाश के लिये चन्द्रमा के समान बतलाता है। उक्त लेख से यह भी पाया जाता है कि उसके राज्य में शाँति थी जिससे बाहर के महाजन लोग आकर वहाँ आबाद होते थे तथा लोग धन-संपन्न थे[90]। शिलादित्य (शील) के पुत्र या उत्तराधिकारी राजा अपराजित का वि० सं० ७१८ का शिलालेख नागदे के निकट के कुडेश्वर के मंदिर से

87 कनिगहाम, आर्किऑलॉजिकल् सर्वे रिपोर्ट, जि० ४, पृ० ९५।

88 एपि० इडि० जि० १२ पृ० १३–१७।

89 कनिगहाम, आर्किऑलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, जि० ४, पृ० ९५।

90 जयति विजयी रिपूना (णा) देवद्विजगुरुजणा (न।) नन्दी (न्दी)।
श्रीशिलादित्यो नरपति(ति)स्वकुलाव(लॉव)रचन्द्रमापृथ्वी (थ्याम)।।

मिला है, जिसमें लिखा है कि अपराजित ने सब दुष्टो को नष्ट किया, राजा लोग उसको शिर से वंदन करते थे, और उसने महाराज वराहसिंह को (जो शिव का पुत्र था, जिसकी शक्ति को कोई तोड नही सका था, और जिसने भयंकर शत्रुओ को परास्त किया था) अपना सेनापति बनाया था[91] इसी अपराजित का पौत्र बापा (कालभोज) बड़ा प्रतापी और पराक्रमी था और उसके सोने के सिक्के चलते थे। अपराजित और बापा के बीच के समय के लिये कोई ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि गुहिलवंशियों का राज्य नष्ट हो गया हो। ऐसी दशा में बापा के पिता का मारा जाना और उसकी माता का अपने पुरोहित नागर ब्राह्मणो के यहाँ जाकर नागदे में शरण लेना कैसे सभव हो सकता है? दंतकथाओ को देखते हुए यही प्रतीत होता है कि गुहिल के पिता के मारे जाने और उसकी माता के अपने नवजात पुत्र सहित नागर ब्राह्मणो के यहाँ जाकर शरण लेने की पुरानी कथा को ही फिर बापा के नाम के साथ चिपका दिया हो। गुहिल सबधी कथा में नागदा के राजा का सोलकी[92] होना लिखा मिलता है। शिलादित्य (शील) अपराजित और बापा का नागदे में राज्य करना निश्चित है तो फिर बापा के पिता के समय में वहाँ पर सोलंकियो का राज्य होना कैसे संभव हो सकता है। नागदा बापा के समय से पूर्व ही मेवाड के राजाओं की

---

91 राजा श्रीगुहिलान्वयामलपयोराशौ स्फुरद्दीधिति-
ध्वस्तध्वान्तसमूहदुष्टसकलव्यालावलेपान्तकृत ।
श्रीमानित्यपराजित क्षितिभृतामभ्यर्चितो मूर्धभि-
र्वृत्तस्वच्छतयैव कौस्तुभमणिर्जातो जगद्भूषणम् ॥
शिवात्मजोखण्डितशक्तिसप-
द्धुर्यः समाक्रान्तभुजंगशत्रु. ।
तेनेन्द्रवत्स्कन्द इव प्रणेता
वृतो महाराजवराहसिह· ॥
एपि० इडि०, जि० ४, पृ० ३१।

92 वि० सं० १७२४ के बने हुए राजविलास नामक काव्य मे रघुवंशी गुहादित्य (गुहदित्त, गुहिल) का मेवाड में नागद्रहा (नागदा) नगर के सोलंकी राजा की पुत्री धनवती से विवाह होना लिखा है——
राजत श्रीरघुनाथंश पाट रघुनाथ परम्पर ।
गृहादित्य नृप गरुअ धरा रक्षिपाल धर्मधुर ॥२४॥
मनहि ईस सुनि भूप राज रघुवशी राजन ।
सुत व्हैहै तुअ सकल सबल जसु वषत सुजानन ॥२६॥

राजधानी थी, उसीके पास एकलिंगजी का मंदिर है, जिसके पुजारी साधु वहाँ के राजाओ के गुरु थे । यदि बापा के हारीतराशि की गौ चराने की कथा की कोई जड़ हो तो यही हो सकती है कि उसने पुत्र-कामना या किसी अन्य अभिलाषा से अपने गुरु हारीतराशि की आज्ञा से गौ-सेवा का व्रत ग्रहण किया हो, जैसा कि राजा दिलीप ने अपने गुरु वसिष्ठ की आज्ञा से किया था जिसका उल्लेख महाकवि कालिदास ने अपने रघुवश में किया है । ऐसे ही बापा के चित्तौड लेने की कथा के सबंध में यह कह सकते है कि उसने गुरु के बतलाए हुए गडे हुए द्रव्य से नही, किंतु अपने बाहुबल से, चित्तौड़ का किला मोरियो से लिया हो और अपनी गुरुभक्ति के कारण इसे गुरु के आशीर्वाद का फल माना हो ।*

मेदपाट महिमण्डले नागद्राहपुर नाम ।
सोलंकी संग्रामसी धनवति सुता सुधाम ।।२९।।
निरखि बाल्हिका नाथ निज दिय पुत्री वरदान ।
राजन बरि आये रमनि सुन्दर सची समान ।।३०।।

नागरीप्रचारिणी सभा का छपवाया हुआ राजविलास, पृ० १८–२० ।

---

* बापा रावल के चित्तौड लेने के विषय मे श्री ओझाजी ने यहाँ केवल स्थूल रूप से अनुमान किया है, जो परम्परागत जनश्रुतियो के आधार पर ही अवलम्बित है । वस्तुत बापा द्वारा चित्तौड पर गुहिल-वंशियो का अधिकार होने का तत्समयक कोई विश्वसनीय प्रमाण नही मिलता । चित्तौड दुर्ग के कुकडेश्वर शिवालय के समीप मिले हुए वि० सं० ८११ माघ सुदि ५ (ई० स० ७५५) गुरूवार के राजा कुकडेश्वर के समय के शिलालेख का उल्लेख करते हुए कर्नल टॉड ने उक्त मन्दिर तथा कुण्ड राजा कुकडेश्वर का बनवाना लिखा है (टॉड, एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑव राजस्थान, जि०३, पृ० क्रुक्स सम्पादित) । एकलिंग-माहात्म्य के आधार पर बापा रावल का राज्य त्याग का समय वि० सं० ८१० (ई० स० ७५३) माना गया है और इस ही निबन्ध मे वर्णित एक संस्कृत काव्य मे जिसमे महाराणा प्रतापसिंह तक का वर्णन है, बापा रावल के लिये उल्लेख है—

'बापाभिध सम(म)वत् वसुधाधिपोसौ
पंचाष्ठषट्परिमितेव स(श)केंद्र कालौ (ले) ।'

इन विभिन्न बातो से सन्देह होता है कि बापारावल ने चित्तौड लिया होता तो उसके सन्यास ग्रहण करने के केवल एक वर्ष पीछे अथवा उसके जीवित काल मे कुकडेश्वर वहाँ अपनी तरफ से शिवालय नही

७-मध्यकालीन भारत का एक अज्ञात राजवंश

भारतवर्ष का प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास अभी तक अधिकाश अधकार में ही है । अनेक विद्वानो के अगाध परिश्रम से असख्य ताम्रपत्र, शिलालेख, सिक्के, प्राचीन ग्रन्थ आदि उपलब्ध हुए है, जिनसे अनेक अज्ञात राजवशो का अल्पाधिक इतिहास ज्ञात हुआ है । फिर भी अभी असे अनेक अज्ञात वंश होगे, जिनका वृत्तात नही मिला है । विक्रम की तैरहवी शताब्दी की बनी हुई कल्हण-कृत राज-तरगिणी में छत्तीस राजवशो का उल्लेख है, परन्तु उसमे उन के नाम नही दिये है। पद्रहवी शताब्दी के बने हुए कुमारपाल-प्रबन्ध में तथा पृथ्वीराज-रासो मे भी, जिस का वर्त्तमान रूप सौलहवी शताब्दी से पुराना नही है, छत्तीस राजवशो के नाम मिलते है। इन्ही के आधार पर कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान के बृहत् इतिहास में उन के नाम दिये है । कुमारपाल-चरित और रासो के कर्त्ताओं ने अपने समय के आसपास के उन्ही राजवशो के नाम दिये है, जो उन के समय मे ज्ञात थे । बहुत पहले होने वाले राजवंशो में से अनेक का उल्लेख उन मे नही है, जैसे—शुग, काण्व, आध्र, क्षत्रप, गुप्त, मौखरी, वाकाटक, पाल, सेन, गग, कदब आदि । ऐसे वशो में कई प्रकाश में आ चुके है, और कई अभी तक अज्ञानाधकार मे पडे है । ऐसे ही एक अज्ञात वंश का परिचय इस निबध में दिया जायगा ।

अनुमानत· सत्तार वर्ष पूर्व गुप्त संवत् ५८५ (विक्रम सवत् ९६१) फाल्गुन सुदि ५, का एक दानपत्र—दो पत्रो का काठियावाड़ के मोरवी राज्य में मिला था परन्तु पीछे से उसका पहला पत्र खो गया। दूसरा पत्र इतिहास-प्रेमी मेजर (पीछे कर्नल) वाटसन ने प्रोफेसर (पीछे डाक्टर सर) रामकृष्ण गोपाल भांडारकर के पास भेजा । उनहोने इस ताम्रपत्र को पढ़कर उसे ईसवी सन् १८७३ में "इण्डियन अेंटिक्वेरी"* मे प्रकाशित कराया । केवल दूसरा ही पत्रा होने से

* इण्डियन अेंटिक्वेरी, जिल्द २, पृष्ठ २५७-२५८ ।

बनवा सकता ? कुकडेश्वर के विषय मे अधिक पता लगाने का साधन नही है, तथापि स्थूल रूप से इसको कन्नोज के रघुवशी प्रतिहार राजा नागभट्ट (प्रथम) का पुत्र ककुस्थ (कक्कुक) मानना पडेगा। क्योकि यह समय रघुवंशी प्रतिहारो के उत्थान का था, एवम् नागभट्ट तथा कक्कुस्थ बापा रावल के सम-सामयिक थे। इस शिलालेख का अब पता ही नही है यही कारण है कि वीरविनोद के कर्ता महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास और डॉ० ओझा उस पर अपना अभिमत प्रकट नही कर सके है, तथा साधन के अभाव मे परम्परागत कथाओ को ही उन्होने ग्रहण किया है (सम्पा० टि०) ।

ताम्रपत्र का पूरा हाल ज्ञात न हो सका, परन्तु उसके अंत में दान देनेवाले राजा के हस्ताक्षर—स्वहस्तोयं श्रीजाईकस्य--खुदे थे जिससे इतना तो ज्ञात हुआ कि यह दानपत्र "जाईक" नाम के किसी राजा का दिया हुआ है। "जाईक" किस वंश का था, इस विषय में उस समय कुछ भी ज्ञात न हो सका।

सात वर्ष पीछे काठियावाड के ओखामंडल के "धिनिकि" गाँव से एक ताम्रपत्र दो पत्रो मे खुदा हुआ "जाईकदेव" नाम के राजा का मिला जिस को प्रसिद्ध पुरातत्त्व-वेत्ता डाक्टर ब्यूहलर (Buhler) ने "इंडियन ऐंटिक्वेरी" * मे प्रकाशित किया। इस के प्रारम्भ का अंश इस प्रकार है—

ॐ स्वस्ति विक्रमसंवत्सरशतेषु सप्तसु चतुर्नवत्यधिकेष्वंतक: ७९४ कार्तिकमास अपरपक्षे अमावास्याया आदित्यवारे ज्येष्ठानक्षत्रे रविग्रहणपर्व्वणि। अस्या संवत्सरे मास पक्ष दिवस पूर्व्वाया तिथावद्येह भूमिलिकायां सो (सौ) राष्ट्रमडलाधिपतिः परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वरः श्री जाईकदेवः

इस से ज्ञात होता है कि जाईकदेव नाम का राजा विक्रम संवत् ७९४ मे विद्यमान था और वह सौराष्ट्रमंडल (दक्षिणी काठियवाड़) का स्वामी था और उस के विरुद परमभट्टारक, महाराजाधिराज और परमेश्वर थे। डॉक्टर भांडारकर का प्रकाशित किया हुआ ताम्रपत्र गुप्त संवत् ५८५ (विक्रम संवत् ९६१) का था और यह विक्रम संवत् ७९४ का। परन्तु इन दोनो की लिपियो मे बडा अन्तर पाया गया। डाक्टर भाडारकर के प्रकाशित किये हुए ताम्रपत्र की लिपि अधिक प्राचीन थी। लिपि तथा संवत् पर विचार करने से डॉक्टर ब्युहलर का प्रकाशित किया हुआ ताम्रपत्र पीछे से बनावटी माना गया। डॉक्टर ब्युहलर ने "जाईकदेव" को "जेठवा" वंश का अनुमान किया था। जेठवा वंश के राजाओ को उन के भाट हनुमान के वंशज बतलाते है जिस से लोग उन्हे "पूछडिया" भी कहते है।

कुछ वर्ष पूर्व काठियावाड के जामनगर (नवानगर) राज्य के "गूंमली" (भूमली) नामक प्राचीन नगर के निकट सडक के पास खुदाई करते समय बारह ताम्रपत्र जमीन से निकल आये जो छः अलग-अलग दानो के सूचक है। इन से जाईक के वंश और उस के पूर्वजो का निश्चय हो गया। पहले दानपत्र का केवल पहला ही पत्रा मिला है, दूसरे के तीन पत्रे है और बाकी प्रत्येक के दो-दो पत्रे है। इन तमाम पत्रो की भाषा कादंबरी की भाषा के सदृश प्रौढ़ दीर्घ-समास-युक्त संस्कृत है। इनका नागरी अक्षरांतर जामनगर राज्य ने अपने यहाँ के सुप्रसिद्ध विद्वान महामहोपाध्याय हाथी भाई हरिशंकर शास्त्री द्वारा

* इण्डियन ऐंटिक्वरी, जिल्द १२, पृष्ठ १५५।

राणक का पुत्र कृष्ण राज हुआ और उसका ज्येष्ठ पुत्र अग्गुक हुआ। कृष्णराज का वैमात्र भाई जाईक अग्गुक को सिंहासनच्युत करके गद्दी पर बैठा। चापि-रिपु-समुदाय को पराभव करने वाला श्री जाईक अपने सब मंत्रियो, पुरोहित, अमात्य, जनपद, युवराज आदि समस्त राजपुरुषों, ब्राह्मणो, वणिक, महत्तरों, कुटुंबी लोगो को प्रकट करता है कि मै ने ढंकतीर्थ ग्राम गुलिमका गॉव की आय के दशांश सहित सोमेश्वर के निवासी चतुर्वेदी साकृत्यगोत्री ब्राह्मण कल्याण के पुत्र माधव को दान में दिया। नीचे राणक के पुत्र महासामंत जाईक के हस्ताक्षर है। इस दानपत्र का दूतक महत्तम बाण कवि है। यह दानपत्र गुप्त सवत् ५१२ (विक्रम संवत् ८८८) का है।

तृतीय दानपत्र

यह तेरह इंच लंबे और दस इच चौड़े दो पत्रों पर खुदा हुआ है। प्रत्येक पत्रे में दो-दो छेद है और दो तांबे की कड़ियो से दोनो शामिल जुडे हुए है। पहले पत्रे में अट्ठारह और दूसरे में उन्नीस पक्तियाँ है और दूसरे पत्रे के अन्त में मत्स्य का चिह्न है। साराश यो है—

भूताबिलिका नगरी में अपरसुराष्ट्रा-मडल-मडन सैधव-वश-शिरोमणि श्री अग्गुक हुआ। उस का पुत्र राणक हुआ। वह चापि-रिपुओ से लड़ा। उस का पुत्र जाईक हुआ। वह अपने सब अधिकारियो, ब्राह्मणो, वणिक, वैश्य, महत्तर, कुटुंबी आदि को सूचित करता है कि मैंने अपने राज्यान्तर्गत पच्छत्री प्रदेश का दधिपद्र नाम का गांव श्री भिन्नमाल के निवासी चतुर्वेदी वत्सगोत्री ब्राह्मण भट्टस्वामी को दिया। अन्त में महासामत जाईक के हस्ताक्षर है और इस दानपत्र का दूतक प्रतिहार कृष्ण है।

चतुर्थ दानपत्र

यह पौने तैरह इच लबे और पौने नव इच चौड़े दो पत्रो मे खुदा हुआ है। ये दोनो पत्रे एक कड़ी में जुडे हुए है। पहले पत्रे में चौबीस और दूसरे में बीस पक्तियां है। दूसरे पत्रे के नीचे मत्स्य का चिह्न है।

सारांश—भूतांबिलिका नगरी मे अपरसुराष्ट्रामडल का मडन सैधव-वंश शिरोमणि महासामन्त श्रीजाईक हुआ। उसका पुत्र महासामन्त अग्गुक हुआ और उसका पुत्र महासामन्त राणक हुआ। वह अपने मंत्री; पुरोहित, अमात्य युवराज, सेनापति आदि समस्त राजपुरुषो तथा वहाँ के रहने वाले ब्राह्मण, महाजन, बध्य, महत्तर कुटुम्बी आदि को सूचित करता है कि सुवर्ण-मञ्जरी जिले के बीपलपद्र नाम के ग्राम का आधा भाग दण्डिलभट्ट गॉव के भट्टशखधर के पौत्र, पूर्ण के पुत्र, वशिष्ठगोत्री, ऋग्वेदी, कार्पटिक शिवरुद्र ने हरि, हर,सूर्य, गणपति तथा मातृकाओ के प्रति भक्त होने के कारण दान कर दिया था।

उसी गाँव का दूसरा आधा भाग एक देवालय के मठपति को इस अभिप्राय से दिया जाता है कि अब इस सारे गाव की आय वहाँ के टूटे हुए देवालय, मठ, बावली, कूए तालाब की मरम्मत में लगायी जावे। इस के नीचे राणक के हस्ताक्षर हैं। इस का दूतक युवराज जाईक है। समय गुप्त सवत् ५५५ है।

पञ्चम दानपत्र

यह साढे चौदह इंच लबे और साढ़े नव इञ्च चौडे दो पत्रों में खुदा हुआ है। ये पत्रे दो कड़ियो में जुडे हुए हैं। पहले पत्रे में अट्ठारह और दूसरे में उन्नीस पक्तियां हैं। अन्त में मत्स्य का चिह्न है।

सारांश-- सत्रत्र वश का शिरोमणि अपर-सुराष्ट्रा-मंडल-मंडन महासामन्त जाईक हुआ। उस का पुत्र महासामन्त चामुंडराज हुआ। उस का पुत्र अग्गुक हुआ। गुप्त संवत् ५६७ की आषाढ शुल्क पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण के समय अग्गुक ने अपने राज्य के स्वर्णमञ्जरी जिले का हरिषेणालक ग्राम कच्छ-देश के गोमूत्रिका ग्राम के रहने वाले वत्सगोत्री, यजुर्वेदी, गुहेश्वर के पुत्र रुद्र और सागर को दान किया।

षष्ट दानपत्र

यह साढ़े तेरह इंच लबे और साढे दस इंच चौडे दो पत्रों में खुदा हुआ है। ये दोनों पत्रे दो कड़ियो से जुड़े हुए हैं। पहले पत्रे में इक्कीस और दूसरे में बीस पंक्तियाँ हैं।

सारांश--जयद्रथ के वंश में अपरसुराष्ट्रा-मंडल का मंडन श्री पुण्यदेव हुआ उसका पुत्र कृष्णराज हुआ। उसका पुत्र अग्गुक और उसका पुत्र राणक हुआ। राणक का पुत्र जाईक और जाईक का पुत्र चामुडराज हुआ। उसका पुत्र अग्गुक हुआ और अग्गुक का पुत्र महासामन्त जाईक हुआ। वह अमात्य, युवराज, राजपुत्र, देशाधिपति आदि समस्त राजपुरुषो को विदित करता है कि उसने स्वर्ण स्वर्णमंजरी जिले का छंपाणक गाँव भिन्नमाल देश से आये हुए नन्न सेठ के बनवाये हुए नन्नाम्बिका मन्दिर के खर्च के लिए भेंट किया। इस गांव की आय का चतुर्थांश प्रतिदिन ब्राह्मण-विद्यार्थियों के भोजन-खर्च में लगाने और बाकी का तीन चतुर्थांश कभी कोई अधिक खर्च होने पर लगाने के लिए रखने का आदेश किया गया। गुप्त सवत् ५९६, आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा।

टिप्पण

१--इन ताम्रपत्रों में सैधव अर्थात् सिंध के राजा जयद्रथवंशीय बारह राजाओं के वंशक्रम के अतिरिक्त उनके शासन आदि के संबंध में कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। केवल कहा गया है कि उनमें से कई-एक चापि-रिपुओ

से लडे थे। चापि-रिपुओं का अभिप्राय चापि-वंशीय शत्रु भी हो सकता है और चापियों के शत्रु भी। प्रथम अर्थ अधिक सभव है। ये चापि, चाप या चापोत्कट अर्थात् चावडा ही होने चाहिए, जो उस समय काठियावाड़ में थे और रघुवंशी प्रतिहारो के अधीन थे।

२—वंश-परिचय—पांच दानपत्रो में इन राजाओ के वंश का नाम सैंधव वंश लिखा है परन्तु छठे में सैंधव के स्थान पर जयद्रथवंश लिखा है। जयद्रथ सिंध का राजा था। इसी से उस के वंश को सैंधव वंश भी कहा गया है। वह सिंध देश के राजा वृद्धक्षत्र का पुत्र था और उसका विवाह धृतराष्ट्र की पुत्री दुःशला से हुआ था। तथा महाभारत युद्ध में कौरवो के पक्ष में रहकर लड़ा था और उसका शिरच्छेद अर्जुन ने किया था।*

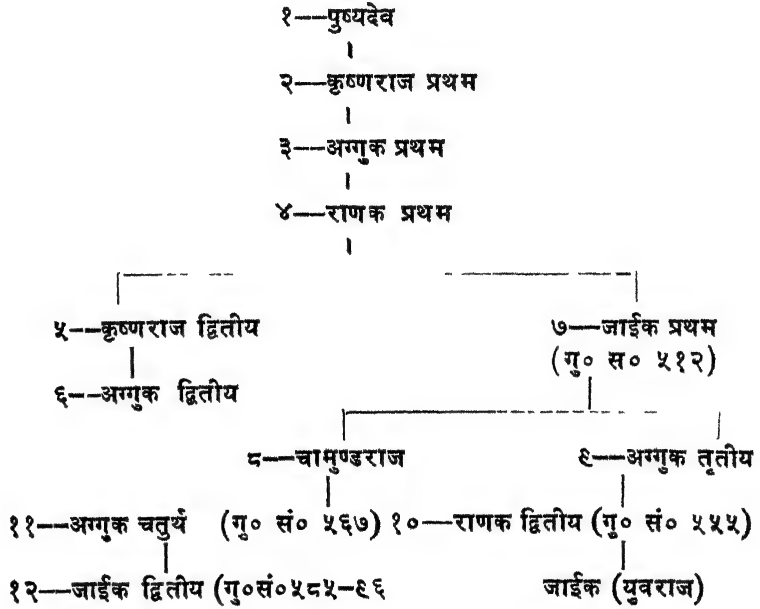
सभव है कि सिंध पर मुसलमानों का अधिकार होने के समय ये जयद्रथ वंशीय क्षत्रिय राजा सिंध छोड़कर काठियावाड़ मे आ रहे हों और वहाँ उन को जागीर मिली हो। ये राजा अपने को महासामंताधिपति लिखते है जिस से निश्चिय है कि ये दक्षिणी काठियावाड़ में रहते समय किसी स्वतन्त्र राजा के सामंत थे। यद्यपि इन ताम्रपत्रो में उस राजा का या उसके वंश का नाम नहीं दिया गया है तो भी यह निश्चित है कि ये कन्नौज के रघुवंशी प्रतीहारों के सामंत थे जिन का राज्य उन दिनो सारे काठियावाड पर भी था।

अलग-अलग दान-पत्रों के अनुसार वंशक्रम इस प्रकार है—

दानपत्र	६	१	२		३	५	४
वंशक्रम	पुष्यदेव	—	—		—	—	—
	कृष्णराज	कृष्णराज	—		—	—	—
	अग्गुक	अग्गुक	अग्गुक		अग्गुक	—	—
	राणक	राणक	राणक		राणक	—	—
	जाईक	+	कृष्णराज	जाईक (५१२)	जाईक	जाईक	जाईक
	चामुण्डराज		अग्गुक	+	+	चामुण्डराज	अग्गुक
	अग्गुक		×			अग्गुक (५६७)	राणक (५५५)
	जाईक (स० ५९६)					+	जाईक युवराज

* महाभारत, आदिपर्व, अध्याय ९८, श्लोक ११०; अध्याय १३१, श्लोक १८, द्रोणपर्व, अध्याय १४७, श्लोक ७१-७५।

सब को एक साथ मिलाने से वंशवृक्ष इस प्रकार बनता है—



पुष्यदेव के प्रपौत्र राणक प्रथम के दो पुत्र हुए—कृष्णराज और जाईक। कृष्णराज के बाद उस का पुत्र अग्गुक द्वितीय गद्दी पर बैठा, जिसको हराकर जाईक राजा बन गया। जाईक प्रथम के दो पुत्र हुए और उनसे दो शाखाएं चली हों। दोनों में कौन सी शाखा बड़ी थी, इसका निश्चय नहीं हो सकता, परन्तु अग्गुक की शाखा को बड़ी मानने से कठिनाई नहीं रहती। अग्गुक के बाद राणक राजा हुआ। उसके जाईक नामक युवराज था। जो सं० ५५५ में वर्त्तमान था। वह संभवत राजा नही हो सका। इसलिए राणक द्वितीय के पश्चात् राज्य, चामुडराज-वाली शाखा के हाथ में चला गया। चामुंडराज का लड़का अग्गुक चतुर्थ सं० ५६७ में विद्यमान था। उसके पश्चात् छठे दानपत्र में उल्लिखित जाईक द्वितीय राजा हुआ; जो डाक्टर भांडारकर-वाले दानपत्र का जाईक है।

३—भौगोलिक नामों का विवरण—

(१) अपर-सुराष्ट्रा-मंडल—काठियावाड़ का वह दक्षिणी हिस्सा जो समुद्र के निकट है।

(२) भूतांबिलिका—आजकल इसे घूमली कहते हैं। यह शब्द भूंमली से बना है। भूंमली और उसका प्राचीन रूप भूमिलिका दोनों भूताबिलिका के अपभ्रंश हैं।

(३) स्वर्णमंजरी यह घूमली से पश्चिम में ओखामंडल की तरफ है।

(४) पिप्पलपद्र—इसका आधुनिक नाम पीपली है।

(५) हरिषेणालक—इसे अब हरियासण कहते हैं।

राजस्थानी (मा. प.), कलकत्ता, भाग ३, अंक १ जुलाई १९३९ (वि.सं. १९९६)

८—गुजरात देश और उस पर कन्नौज के राजाओं का अधिकार

प्राचीन काल में भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रदेशों अथवा विभागों के नाम विशेषतः उनके राज्यकर्त्ता क्षत्रियों के नाम से प्रसिद्धि में आए जैसे कि यदु के भाई अनु के वंशधर राजा बलि के पाँच पुत्रो–अंग, वग, कलिग, पुड्र और सुह्म—से अनेक अधीनस्थ देशो के नाम अग, वंग कलिंग, पुंड्र और सुह्म हुए*। इसी प्रकार यदुवशी प्रतापी राजा शूरसेन के अधीन का देश शूरसेन, राजा शिवि के नाम से शिवि देश और आनर्त के नाम से आनर्त देश कहलाया। पिछले समय में भी ऐसा ही होता रहा है, जैसा कि जयपुर के कछवाहो के वंशधर शेखा तथा उनके वशजों का देश-शेखावाटी, झाला के वंशजों अर्थात् झालों से झालावाड़ (राजपुताने में) और मेवाड के राजा गुहिल के वंशजो का अधीनस्थ प्रदेश गोहिलवाड़ (काठियावाड़ में) कहलाया। जिस देश पर काठियों का अधिकार रहा, वह काठियावाड नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी तरह भिन्न-भिन्न देशो पर राज्य करनेवाले राजा के लिये भी–चाहे वह किसी वश का क्यो न हो–पीछे से संस्कृत साहित्य में वही देशवाची शब्द प्रयुक्त होने लगा †। फिर

---

* अगो वग. कलिगश्च पुड्र सुह्यश्च ते सुता।
तेषा देशाः समाख्याताः स्वनामकथिता भुवि ॥ ५३ ॥
अगस्यागो भवेद्देशो वगो बगस्व च स्मृत :।
कलिंगविषयश्चैव कलिंगस्य च स स्मृतः ॥ ५४ ॥
पुड्रस्य पेंड्राः प्रख्याताः सुह्माः सुह्मस्य च स्मृतः।
—महाभारत आदिपर्व, अध्याय १०३।

† अपारपौरुषोद्‌गार खगार गुरुमत्सरः।
सौराष्ट्र पिष्टवानाजौ करिण केसरीव यः ॥ २४ ॥
—कीर्त्तिकौमुदी, सर्ग १।

उन देशो के समस्त निवासी भी उसी नाम से प्रसिद्ध होते रहे। इसीलिये सस्कृत में देशो के नामो के साथ जब 'देश' या उसका पर्यायसूचक कोई दूसरा शब्द नही रहता तब वे बहुधा बहुवचन में मिलते है, जैसे कि 'नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्' (उत्तररामचरित), 'एको ययौ चैत्ररथ: प्रदेशान् सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान्' (रघुवश) तथा 'पाचाला:', 'जागला:,' 'दशार्णा:' आदि। अब भी भिन्न-भिन्न देशो के निवासी सामान्यत: उनके देश के नाम से ही पहचाने जाते है, जैसे मारवाड़ से 'मारवाड़ी', पजाब से 'पजाबी' और काठियावाड़ से 'काठियावाड़ी' इत्यादि।

गुजरातके भिन्न-भिन्न विभागोके प्राचीन कालमें पृथक् पृथक् नाम थे। काठियावाडका उत्तरी भाग 'आनर्त' तथा दक्षिणी भाग 'सौराष्ट्र' कहलाता था। साबरमती के आस-पास के प्रदेश का नाम 'श्वभ्र' था, और नर्मदा एव ताप्ती नदियो के मध्यका देश 'लाट' नाम से प्रसिद्ध था। कभी-कभी उसकी सीमा उत्तर मे आनदपुर तक पहुँच गई हो, ऐसा उल्लेख भी मिलता है। गुजरात का नाम पीछे से प्रसिद्ध हुआ है। प्राचीन काल मे गुर्जर नामक एक राजवश था जिसके मूल पुरुष के नाम से उसके वंशधर 'गुर्जर' कहलाए और उनके अधीन का देश गुर्जर देश अथवा 'गुर्जरत्रा' (गुर्जरो से रक्षित देश) नाम से प्रसिद्ध हुआ। पजाब का एक जिला अब भी 'गुजरात' कहलाता है, जो किसी समय में उस देश पर गुर्जरवशी राजाओ का आधिपत्य होना प्रकट करता है। देशो की सीमा उनके स्वामियो के राज्य की घटा-बढ़ी के साथ सदा घटती बढ़ती रहती है। इसीलिये गुजरात के किसी प्राचीन विभाग की सीमा स्थिर रूप से निश्चित नही की जा सकती।

वर्तमानकाल में राजपुताने से दक्षिण के जिस देश को गुजरात कहते हैं, उसकी सीमा पालनपुर राज्य की उत्तरी सीमा से लेकर दक्षिण मे थाणा जिले की उत्तरी सीमा तक है,और पश्चिम स्थित काठियावाड भी उसी के अतर्गत माना जाता है। तात्पर्य यह है कि जिस देश मे गुजराती भाषा बोली जाती है वही इस समय गुजरात कहलाता है। परन्तु प्राचीन काल में यह देश बडा विस्तृत था और वर्तमान जोधपुर राज्य का उत्तर से दक्षिण तक सारा पूर्वी भाग गुजरात के अंतर्गत था।

विक्रम संवत् ६९७ (ईसवी सन् ६४०) के आस-पास चीनी यात्री हुएन्त्सग राजपूताने में आया। वह गुर्जर देश की राजधानी भीनमाल (श्रीमाल) बतलाता है,* जो वर्तमान गुजरात में नहीं, किंतु जोधपुर राज्य के दक्षिणी

इस श्लोक मे 'सौराष्ट्र' पद सौराष्ट्र देश के राजा (खगार) का सूचक है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है।

* सेम्युअल बील ; 'बुद्धिस्ट रेकर्ड्ज आफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड'; जिल्द २, पृष्ठ २६९—७०।

विभाग में है । हुएन्त्संग के आगमन से पूर्व ही वहाँ का गुर्जरवंशियो का राज्य अस्त हो चुका था और चापवंशी (चावड़े) शासन करते थे, जैसा कि शक सवत् ५५० (विक्रम संवत् ६८५) अर्थात् हुएन्त्संग के वहाँ आने से १३ वर्ष पूर्व, बने हुए भीनमाल निवासी ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त के 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' नामक ग्रंथ से ज्ञात होता है †। लाट देश के सोलंकी राजा जयसिंह वर्मा के तृतीय पुत्र पुलकेशी (अवनिजनाश्रय) के कलचुरि संवत् ४९० (विक्रम संवत् ७९६) के ताम्रपत्र से जान पड़ता है कि चापवंश गुर्जरवश से भिन्न था§।

चावडावशियों ने गुर्जरों से भीनमाल का राज्य कब लिया, यह अनिश्चित ह, तो भी इतना तो निश्चित है कि महाक्षत्रप रुद्रदामा के गिरनार के पास-वाले चट्टान पर के शिलालेख के खोदे जाने के समय अर्थात् शक संवत् ७२ (विक्रम संवत् २०७) तक तो भीनमाल के आस-पास के प्रदेश पर गुर्जरों (गूजरों) का राज्य स्थापित नहीं हुआ था। इसका कारण यह है कि उक्त लेख मे जहाँ रुद्रदामा के अधीनस्थ देशो के नाम गिनाए है, उनमे गुर्जर नाम न होकर श्वभ्र और मरु* (मारवाड) नाम मिलते है। उसके पीछे किसी समय गुर्जर-राज्य की स्थापना का अनुमान किया जा सकता है।

कन्नौज के प्रतिहार राजा भोजदेव प्रथम के वि सं० ९०० के दानपत्र में गुर्जरत्रा‡ भूमि (गुजरात देश) के डेड्वानक विषय (जिले) के 'सिवा' ग्राम का उल्लेख है। उसमें लिखा हुआ डेंड्वानक विषय जोधपुर राज्य के उत्तर पूर्वी भाग का डीडवाना परगना ही है और 'सिवा' गाँव डीडवाने से सात मील दूर का 'सैंवा' गाँव है, जहाँ से वह ताम्रपत्र मिला है। कालिंजर से प्राप्त विक्रम

† श्रीचापवशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणाम्।
पचाशत्सयुक्तैर्वर्षशते. पचभिरतीतै: (५५०) ॥ ७ ॥
ब्राह्म. स्फुटसिद्धात: सज्जनगणितगोलवित्प्रीत्यै।
त्रिशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ॥ ८ ॥

§ तरलतरतारतरवारिदारितोदितसैन्धवकच्छेल्लसौराष्ट्रचावोटकमौर्यगुर्जरादिराज्ये '(नागरीप्रचारिणी पत्रिका—नवीन सस्करण, भाग २, पृष्ठ २११)।

*पूर्वापराकरावन्त्यनूपनवृदानर्त्तसुराष्ट्रश्वभ्रमरुकच्छसिंधुसौवीरकुकुरापरांतनिषादादीना समग्राणा'…। (रुद्रदामा गिरनार का शिलालेख; एपिग्राफिया इडिका, जिल्द ८, पृष्ठ ४४)।

‡ गुर्जरत्राभूमौ डेड्वानकविषयसम्व (म्ब) द्धसिवाग्रामग्रहारे…।
—एपिग्राफिया इडिका जिल्द ५, पृष्ठ २११।

संवत् की नवी शताब्दी के आस-पास एक शिलालेख मे गुर्जरत्रा मंडल § के मंगलानक गांव का नामोल्लेख है। यह मंगलानक जोधपुर राज्य के उत्तारी विभाग का मंगलाना गांव है, जो मारोठ से १६ मील पश्चिम और डीडवाने से थोडे ही अंतर पर है। हुएन्त्संग के कथन और इन दोनों लेखो से ज्ञात होता है कि विक्रम संवत् की सातवी से नवी शताब्दी तक जोधपुर राज्य का उत्तार से दक्षिण तक सारा पूर्वी भाग गुर्जर देश (गुर्जरत्रा, गुजरात) के अन्तर्गत था। इसी प्रकार दक्षिण और लाट के राठोड़ों तथा मारवाड एवं कन्नौज के प्रतिहारों के बीच के युद्धों के वृत्तान्त से जाना जाता है कि गुर्जर देश की दक्षिणी सीमा लाट देश से जा मिली थी। अतएव जोधपुर राज्य का सारा पूर्वी भाग तथा उससे दक्षिण मे लाट देश तक का वर्तमान गुजरात भी उस समय गुर्जर देश के अंतर्गत था। अब तो केवल राजपुताने के दक्षिण का प्रदेश ही गुजरात कहलाता है।

मारवाड़ पर से गुर्जरों का राज्य शीघ्र ही अस्त हो गया, परन्तु उस वंश की एक शाखा (जो भड़ौंच Broach तथा उसके आस-पास के प्रदेश पर शासन करती थी) का राज्य वहाँ पर विक्रम सवत् की आठवीं शताब्दी के मध्य के आस-पास तक बना रहा *। इस प्रकार गुर्जरवशियो के अधिकार मे रहने से

§ श्रीमद्गुर्ज्जरत्रमडलात:पातिमगलानकविनिर्गत…।
वही, जिल्द ५, पृ० २१० टिप्पण ३।

जोधपुर राज्य के घटियाला गाँव से मिले हुए मडोर के प्रतिहार राजा कक्कुक के विक्रम सवत् ६१८ चैत्र शुदि २ के सस्कृत शिलालेख मे 'गुर्ज्जरत्रा' और वही से मिले हुए उसी राज्य के उसी सवत् के प्राकृत (महाराष्ट्री) लेख में 'गुज्जरत्ता' नाम मिलता है, जो 'गुर्जरत्रा' का ही प्राकृत रूप है। इन दोनो लेखों के 'गुर्जरत्रा' शब्द का सबध जोधपुर राज्य के अतर्गत गुजरात के भाग से है। मेवाड के महाराणा कुभकर्ण के समय के वि० स० १४९६ के राणपुर के शिलालेख में गुजरात के सुलतान को 'गुर्जरत्रा सुरत्राण' कहा है। (प्रबलपराक्रमाक्रातढिल्लीमडलगुर्जरत्रासुरत्राणदत्तातपत्रप्रथितहिंदुसुरत्राणविरुदस्य....। एन्युअल रिपोर्ट आफ दी आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इडिया, ईसवी सन १९०७–८ पृष्ठ २१४–१५) इस लेख का 'गुर्जरत्रा' शब्द वर्तमान गुजरात का और गुर्जरत्रासुरत्राण, अहमदाबाद के सुलतान का सूचक है। 'कुमारपालप्रबध' में बढियार प्रदेश और पचासर नगर (गुजरात और कच्छ के बीच का) का गुर्जरत्रा देश के अन्तर्गत होना लिखा है (पत्र १)। यहाँ भी गुर्जरत्रा शब्द वर्तमान गुजरात का सूचक है।

* बम्बई गैजेटियर, जिल्द १, भाग१, पृ० ११३-११८
(जेम्स केंपबेल द्वारा सपादित)

ही इस देश का गुजरात नाम प्रसिद्ध हुआ।

अब हम गुजरात पर राज्य करने वाले कन्नौज के राजाओं के संबंध में कुछ लिखते हैं। प्राचीन जनश्रुति के आधार पर लिखित महोपाध्याय जिनमंडनगणि रचित 'कुमारपालप्रबध' मे लिखा है कि छत्तीस राजवंशों में से चौलुक्य (सोलंकी) वश का राजा भूयड ३६ लाख गाँव वाले कान्यकुब्ज (कनौज देश) के कल्याण कटकपुर में राज्य करता था। उस राजा ने अपनी पुत्री महणल्लदेवी को गुजरात देश कंचुक (काँचली) के निमित्त दे दिया'*। शास्त्री व्रजलाल कालिदास ने प्राचीन जैन ग्रन्थों का अवलोकन कर गुजरात के पुरातन इतिहास-संबंधी कई जनश्रुतियाँ प्रकाश में लाईं। व्रजलालजी ने लिखा है कि कन्नौज के आम नामक राजा ने अपनी पुत्री रत्नगंगा का विवाह वलभी के सूर्यवंशी राजा ध्रुवपट्ट से किया था, और अपना प्राप्त किया हुआ गुर्जर देश का राज्य रत्नगंगा के काँचली के निमित्त दे दिया †। शास्त्री जी ने कन्नौज के राजा आम को राष्ट्रकूट वंश का और 'कुमारपाल-प्रबंध' के कर्त्ता ने कन्नौज राज्य के कल्याणकटक के राजा को चौलुक्य अथवा सोलंकी माना है। केवल जनश्रुति पर आश्रित होने के कारण ये दोनों कथन विश्वास योग्य नहीं है। फिर भी इन दोनो कथनो से इतना तो निश्चित है कि कन्नौज के किसी राजा का गुजरात पर अधिकार अवश्य रहा था।

जेम्स कैंपबेल द्वारा संपादित बंबई गैजेटियर की पहली जिल्द के प्रथम भाग में प्रकाशित डाक्टर भगवानलाल इंद्रजी द्वारा लिखित, मि० ए. एम. टी जैक्सन द्वारा संशोधित गुजरात के प्राचीन इतिहास में गुजरात पर शासन करने वाले कन्नौज के राजाओं का कोई इतिहास नही दिया गया। हड्डाला से मिले हुए वढवाण के महासामंताधिपति चापवशी धरणीवराह के शक संवत ८३६ पौष सुदि ४ (वि० स० ९७१) के दानपत्र में राजाधिराज महीपालदेव का नामोल्लेख है, जिसका सामंत धरणीवराह था। महीपालदेव का ठीक-ठीक पता न लगने के कारण इस लेख का संपादन करते समय प्रो० बूलर ने उसको काठियावाड़ का चूडासमा (यादव) राजा महीपाल मान लिया, ‡ जो वास्तव में कन्नौज का राजा था। कनाड़ी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि पंप के रचे हुए 'विक्रमार्जुनविजय' (पंपभारत) नामक काव्य में चोल के

* तत्र वशा: षट्त्रिंशत्. तेषु चौलुक्यवंशे षट्त्रिंशल्लक्षग्रामाभिरामे कान्यकुब्जदेशे कल्याणकटकपुरे श्रीभुवडराजा राज्य करोति। तेन राज्ञा स्वपुत्र्या महणल्लदेव्या गुर्जरधरित्री कचुकपदे दत्ता (कुमारपाल प्रबध, पत्र १)।

† रासमाला का गुजराती अनुवाद (द्वितीय सस्करण), पृ० ३७, टिप्पण।

‡ इडियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द १२, पृष्ठ १९२।

सोलंकी राजा अरिकेसरी द्वितीय तथा उसके पूर्व पुरुषो का परिचय दिया गया है। उसमें पंप कवि ने लिखा है कि अरिकेसरी द्वितीय के पिता नरसिंह दूसरे ने (जो राठोड़ों का सामंत था) गुर्जरराज महीपाल को परास्त कर उसकी राज्यश्री छीन ली और उसका पीछा कर अपने घोडो को गगा के सगम पर स्नान कराया† । पंपभारत की रचना पर उस कवि को अरिकेसरी द्वितीय ने शक सवत् ८६३ (वि सं० ६६८) में एक गांव दिया था‡ हड्डाला के दानपत्र में केवल महीपाल का ही उल्लेख मिलता है, परन्तु पपभारत से उसके विषय में यह अधिक ज्ञात हुआ कि वह गुजरात देश का राजा था और उसकी राजधानी गगा के निकट थी।

पंपभारत मे महीपाल को गुर्जरराज लिखा हुआ देखकर मि० जैक्सन ने भूल से यह मान लिया कि यह महीपाल गुर्जर अर्थात् गूजर वंश का था। 'गुर्जरराज' का वास्तविक अर्थ 'गुजरात (देश) का राजा' है। पीछे से कन्नौज के राजा भोजदेव का ग्वालियर से एक शिलालेख मिला। उक्त लेख से भोजदेव और उसके पूर्वपुरुषों का कन्नौज के स्वामी, प्रतिहारवंशी, और रामचन्द्र के भाई लक्ष्मण के वशज होना ज्ञात हुआ। इस लेख का अँग्रेजी में आशय प्रकाशित कर डाक्टर कीलहार्न ने कन्नौज के प्रतिहारवशियों के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश डाला, क्योंकि इसी लेख में वहाँ के राजाओं को प्रतिहार लिखा मिलता है। जब मि० जैक्सन ने महीपाल के गुर्जरवशी होने की कल्पना की, तब उसी के आधार पर श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भडारकर ने भिन्न-भिन्न प्रतिहारवशियो का गूजरवशी होना मान लिया। तब से कई अन्य ऐतिहासिको ने अधपरपरा के अनुसार इस बात पर विश्वास कर सब वर्ण के प्रतिहारो का गूजर (गुर्जर) होना स्वीकार कर लिया, जो सर्वथा अविश्वसनीय है। आगे चलकर हम बतलावेंगे कि कन्नौज के प्रतिहारवशी गुर्जर (गूजर) नहीं किंतु सूर्यवशी क्षत्रिय थे।

ईस्वी सन् १६०२ में दिल्ली दरबार के साथ होने वाली प्रदर्शनी के समय मैंने जूनागढ़ (काठियावाड़ में) राज्य के ऊना गांव से मिले हुए दो ताम्रपत्र देखे और उन्हें महत्त्वपूर्ण जानकर मैंने वहीं उनके फोटो उतरवा लिए। फिर इन दोनो ताम्रलेखो का सारांश लिखकर मैंने अपने मित्र डाक्टर कीलहार्न (स्वर्गीय) के पास भेजा और उक्त पुरातत्त्ववेत्ता के विशेष आग्रह करने पर मैंने वे फोटो भी उनके पास भेज दिए; जिनके आधार पर उन्होने वे दोनो ताम्रपत्र एपिग्राफिया इंडिका जिल्द ६, में प्रकाशित कर दिए। उनमें से पहला वलभी

† मेरा सोलकियो का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग पृष्ठ २०७।
‡ वही पृष्ठ २०७।

संवत् ५७४ (विक्रम सवत् ६५०) का सोलकी राजा बलवर्मा के समय का है। यह बलवर्मा सोरठ पर शासन करने वाले सोलकियो की एक शाखा का पाँचवाँ वशधर था। और कन्नौज के परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमहेद्रायुधदेव (महेंद्रपाल) का सामंत था* वि० स० ६५६ का दूसरा दानपत्र उपर्युक्त बलवर्मा के पुत्र महासामत अवनिवर्मा द्वितीय (योग) का है। यह अवनिवर्मा, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर भोजदेव का पुत्र और परमभट्टारक महाराजाधिराज महेंद्रपाल देव का सामँतA था†। बलवर्मा नें नक्षिसपुर की चौरासी (चौरासी गाँववाला प्रदेश) का जयपुर नामक ग्राम तरुणादित्यदेव नाम के सूर्यमदिर को भेट किया, और अवनिवर्मा द्वितीय ने सौराष्ट्रमडल के नक्षिसपुर की चौरासी का (अबुलक) ग्राम जयपुर गाँव के निकटवाले उसी (तरुणादित्यदेव) सूर्यमंदिर को भेट किया। इन दोनों ताम्रपत्रो से यह निश्चिय हो गया कि पूर्वोक्त सवतो में सोरठ पर सोलकी राज्य करते थे और वे कन्नौज के राजा भोजदेव के पुत्र महेद्रपाल के सामत थे। इससे यह भी निश्चित हो गया कि हड्डाला के ताम्रपत्र का महीपाल भी कन्नौज का ही राजा था और कन्नौज के राजाओ की अधीनता से चावड़े तथा सोलकी दोनो वशवाले काठियावाड़ मे शासन करते थे।

गुजरात पर राज्य करने वाले कन्नौज के प्रतिहारवंशी राजाओं का संक्षिप्त परिचय देने से पूर्व हम प्रतिहार नाम के विषय में कुछ लिखना आवश्यक समझते है, क्योंकि इस विषय को आधुनिक शोधको ने बहुत कुछ भ्रमपूर्ण बना दिया है।•

जिस प्रकार गुहिल, चौलुक्य (सोलंकी), चाहमान (चौहान) आदि राजवशो के नाम उनके मूल पुरुषो के नाम से प्रचलित हुए है, वैसे प्रतिहार नाम वंशकर्त्ता के नाम से चलाया हुआ नही, राज्याधिकार पद से बना हुआ है। राज्य के भिन्न-भिन्न अधिकारियो में एक प्रतिहार भी था, जिस पर राजा के बैठने के स्थान अथवा निवास के महल के द्वार पर रहकर उसकी रक्षा करने का भार होता था। इस पद के लिये किसी जाति अथवा वर्ण विशेष का विचार नहीं रहता था. किंतु राजा के विश्वासपात्र पुरुष ही इस पद पर नियुक्त होते थे। प्रतिहार पद पाने के योग्य वही पुरुष समझा जाता था जो चेष्ठा एवं आकार

* एपिग्राफिया इडिका; जिल्द ६, पृष्ठ ४—६।

† एपिग्राफिया इडिका, जिल्द ६ पृष्ठ ६—१०।

A. 'यह अवनिवर्मा परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर भोजदेव के पुत्र-परम भट्टारक महाराजाधिराज महेंद्रपालदेव का सामत था,' पढना चाहिये। (सपा० टि०)

से ही मनुष्य को पहिचान जाय और बलवान्, रूपवान्, समय का ज्ञाता तथा स्वामिभक्त हो *। प्राचीन शिलालेखादि में प्रतिहार नाम मिलता है और भाषा में उसे पड़िहार कहते हे। प्रतिहार नाम वैसा ही है जैसा कि पचकुल (पंचोली)। पंचकुल राजकर वसूल करने वाले राजसेवकों की एक सस्था थी, जिसका प्रत्येक व्यक्ति पंचकुल कहलाता था। प्राचीन दानपत्रो में, शिलालेखो तथा 'प्रबंधचिंतामणि' आदि ग्रंथो में पचकुल का उल्लेख मिलता है। राजपूताने में ब्राह्मण-पंचोली. कायस्थ-पंचोली, महाजन-पचोली और गूजर-पचोली हैं, जिनमें अधिकतर कायस्थ-पचोली है, जिसका कारण यह है कि ये लोग विशेष कर राजाओ के यहाँ अहलकारी का पेशा ही करते थे। पंचकुल का पंचउल (पंचोल) और उससे पंचोली शब्द बना है। जैसे पंचोल नाम किसी जाति का सूचक नही, किंतु पद का सूचक है, वैसे ही प्रतिहार शब्द से किसी जाति-विशेष का नही किंतु पद का बोध होता है। इसी कारण शिलालेखादि में ब्राह्मण-प्रतिहार, चावड़ा-प्रतिहार, गुर्जर (गूजर)-प्रतिहार और रघुवंशी-प्रतिहारो का नामोल्लेख मिलता है। आधुनिक शोधकों ने प्रतिहार मात्र को गुर्जर (गूजर) मान लिया है, जो सर्वथा भ्रममूलक है।

मंडोर के प्रतिहार ब्राह्मण थे। उनके शिलालेखो से ज्ञात होता है कि हरिश्चन्द्र नामक विप्र (ब्राह्मण), जिसको रोहिल्लद्धि भी कहते थे, वेद और शास्त्रों का अर्थ जानने में पारंगत था। उसके दो स्त्रियाँ थीं—एक द्विज (ब्राह्मण) वंश की और दूसरी क्षत्रिय कुल की—जो बड़ी गुणवती थी। ब्राह्मणी से जो पुत्र उत्पन्न हुए वे ब्राह्मण-प्रतिहार कहलाए, और क्षत्रिय वर्ण की राज्ञी भद्रा से जो पुत्र जन्मे वे मद्य पीने वाले (अर्थात् क्षत्रिय) हुए †। मडोर के प्रतिहारो के तीनो शिलालेखो से हरिश्चन्द्र का ब्राह्मण, एवं किसी राजा का प्रतिहार होना पाया जाता है। उसकी दूसरी स्त्री भद्रा को राज्ञी लिखा है, जिससे संभव है, कि हरिश्चन्द्र के पास जागीर भी हो। उसकी ब्राह्मण वंश की स्त्री के पुत्र ब्राह्मण-प्रतिहार कहलाए। जोधपुर राज्य में अब तक प्रतिहार

---

* इङ्गिताकारतत्त्वज्ञो बलवान्प्रियदर्शनः।
समयज्ञः स्वामिभक्तः प्रतिहारः स इष्यते ॥ चाणक्यसग्रह।

† विप्रः श्रीहरिचन्द्राख्य पत्नी भद्रा च क्षत्रिया।....।
तेन श्रीहरिश्चन्द्रेण परिणीता द्विजात्मजा।]
द्वितीया क्षत् (त्रि) या भद्रा महाकुलगुणान्विता।
प्रतिहारा द्विजा भूता ब्राह्मण्या ये भवन्सुताः।
राज्ञी भद्रा च यान्सूते भूता मधुपायिनः॥
राजपूताना म्यूजियम अजमेर मे रखे हुए मूल लेख से।

ब्राह्मण * है, जो उसी हरिश्चन्द्र प्रतिहार के वंशज होने चाहिएँ। उसकी क्षत्रिय वर्णवाली स्त्री भद्रा के पुत्रों की गणना उस समय की प्रथा के अनुसार मद्य पीनेवालों अर्थात् क्षत्रियों में हुई †। उन्होंने अपने बाहुबल से

---

* ईसवी सन् १९११ की जोधपुर राज्य की मनुष्य-गणना की हिन्दी रिपोर्ट हिस्सा, तीसरा, जिल्द पहली, पृष्ठ १६०।

† प्राचीन काल मे प्रत्येक वर्ण का पुरुष अपने तथा अपने से नीचे वर्णों मे विवाह कर सकता था, और ब्राह्मण पति का अन्य वर्ण की स्त्री से उत्पन्न हुआ पुत्र ब्राह्मण ही माना जाता था। ऋषि पराशर के पुत्र वेदव्यास की, जो धीवरी सत्यवती (योजनगधा) से उत्पन्न हुए थे, गणना ब्राह्मणो मे हुई। ऋषि जमदग्नि ने इक्ष्वाकुवंशी (सूर्यवशी) क्षत्रिय रेणु की पुत्री रेणुका से विवाह किया, जिससे परशुराम का जन्म हुआ और उनकी भी गणना ब्राह्मणो में हुई। मनु के समय मे कामवश ब्राह्मण चारो वर्णों मे विवाह कर सकता था, क्षत्रिय जाति की स्त्री से उत्पन्न ब्राह्मण-पुत्र-ब्राह्मण के समान माना जाता था, परन्तु वैश्य जाति की स्त्री से उत्पन्न होने वाला 'अबष्ठ' और शूद्रा से उत्पन्न होनेवाला 'निषाद' कहलाता था।

स्त्रीष्वनतरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान् ।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥ ६ ॥
अनन्तरासु जाताना विधिरेषः सुजात्तनः ।
द्वयेकान्तरासु जाताना धर्म्यं विद्यादिम बिधिम् ॥ ७ ॥
ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ।
निषाद. शूद्रकन्याया यः पारशव उच्यते ॥ ८ ॥

मनुस्मृति, अध्याय १०।

पीछे से याज्ञवल्क्य ने द्विजो के लिये शूद्रवर्ण की कन्या से विवाह करने का निषेध किया—

यदुच्यते द्विजातीना शूद्राद्दारोपसग्रहः ।
नैतन्मम मतं यस्मात्तत्रायं जायते स्वयम् ॥ ५६ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय।

फिर तो क्षत्रिय वर्ण की स्त्री से उत्पन्न होनेवाले ब्राह्मण के पुत्र की गणना क्षत्रियवर्ण मे होन लगी, जैसा कि शंख और औशनस आदि स्मृतियो से पाया जाता है।

यत्तु ब्राह्मणेन क्षत्रियायामुत्पादित. क्षत्रिय एव भवति क्षत्रियेण वैश्याया-मुत्पादितो वैश्य एव वैभवति वैश्येन शूद्रायामुत्पादित: शूद्र एव भवतीति शंखस्मरणम् ।

मांडव्यपुर (मंडोर) का दुर्ग लेकर* वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। ये प्रतिहार पीछे से कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहारों के सामंत हुए †' ऐसा पाया जाता है। 'संगीतरत्नावली' से ज्ञात होता है कि उसका कर्ता चापोत्कट (चावड़ा) वंशी सोमराज, गुजरात के चौलुक्य राजा अजयपाल का प्रतिहार था ‡। अलवर राज्य के राजोरगढ नामक प्राचीन किले से मिले हुए विक्रम संवत् १०१६ माघ सुदि १३ के शिलालेख से पता लगता है कि उस समय राज्यपुर (राजोरगढ़) तथा आस-पास के प्रदेश पर गुर्जर वंश के प्रतिहार महाराजाधिराज सावट का पुत्र महाराजाधिराज परमेश्वर मथनदेव राज्य करता था, और वह परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर क्षितिपाल (महीपाल) के पुत्र विजयपाल का सामंत था §। यह विजयपाल कन्नौज का रघुवंशी प्रतिहार राजा था। उस शिलालेख में मथनदेव को 'महाराजाधिराज परमेश्वर' लिखा है, जिससे अनुमान होता है कि उसे कन्नौज के राजा विजयपाल के बडे सामतो मे से होना चाहिए।

—याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय, श्लोक ९१ पर मिताक्षर टीका।

नृपाया विधिना विप्राज्जातो नृप इति स्मृत.।

पूना की आनदाश्रम ग्रथावली मे प्रकाशित 'स्मृताना समुच्चय', में औशनस् स्मृति; पृ० ४७, श्लोक २८।

* चत्वारश्चात्मजास्तस्यां जाता भूधरणक्षमा
श्रीमान्भोगभटः क्कको रज्जिलो दद्द एव च ॥
माण्डव्यपुरदुर्गोस्मिन्नेभिर्निजभुजार्ज्जिते।···॥

एपिग्राफिया इडिका, जिल्द १८, पृ० ९५।

† मेरा 'राजपूताने का इतिहास;' जिल्द १ पृ० १५०–५१।

‡ क्षोणिकल्पतरुः समीकसुभश्चापोत्कटग्रामणीः
योगीन्द्रो नवचद्र निर्मलगुणः स्फूर्जत्कलानैपुणः॥
श्रीचौलुक्यनरेन्द्र वेत्रितिलकः श्रीसोमराजः स्वय
विद्वन्मण्डलमडनाय तनुते सगीतरत्नावलीम्॥ ५ ॥

§ परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीक्षितिपालदेवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीविजयपालदेवपादानामभिप्रवर्द्धमान कल्याणविजयराज्ये, संवत्सरशतेषु दशसु षोडशोत्तरकेषु माघमाससितपक्ष-त्रयोदश्या शनियुक्तायामेवं स० १०१६ माघसुदि १३ शनावद्य श्रीराज्यपुराव-स्थितो महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमथनदेवो महाराजाधिराज श्रीसावटसूनु-र्गुर्ज्जरप्रतिहारान्वयः कुशली ··।

एपिग्राफिया इडिका, जिल्द ३, पृ० २६६।

कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहार राजाओं का, जिनका राज्य गुजरात पर था, वृत्तान्त आगे लिखा जायगा। राजोरगढ़ के शिलालेख में गुर्जर प्रतिहार शब्द देखकर आधुनिक शोधकों ने कन्नौज के इन राजाओ को गुर्जर अथवा गूजर वंश के मान लिया है, जो सर्वथा भ्रमपूर्ण है और इसका सक्षिप्त विवेचन नीचे किया जाता है—

१—ग्वालियर से मिली हुई कन्नौज के प्रतिहार राजा भोजदेव (प्रथम) के समय की प्रशस्ति से जाना जाता है कि' सूर्यवंश में मनु, इक्ष्वाकु, ककुत्स्थ आदि राजा हुए, उनके वंश में पौलस्त्य (रावण) को मारने वाले राम हुए; जिनका प्रतिहार* उनका छोटा भाई सौमित्र (लक्ष्मण) था, जो इंद्र का मानमर्दन करने वाले मेघनाद आदि के हराने वाला था†'। उसके वंश में नागभट आदि राजा हुए, जिनका वर्णन उक्त प्रशस्ति में किया गया है। आगे चलकर उसी प्रशस्ति में वत्सराज को इक्ष्वाकु वंश को उन्नत करनेवाला ‡ कहा है। इससे निश्चित है कि कन्नौज के प्रतिहार राजा रघुवंशी क्षत्रिय थे, न कि गुर्जरवंशी।

२—'काव्यमीमांसा' आदि अनेक ग्रंथो के रचयिता सुप्रसिद्ध कवि राजशेखर ने, जो कन्नौज के प्रतिहार राजा भोज (प्रथम) के पुत्र महेन्द्रपाल (प्रथम) का गुरु (उपाध्याय) था और महेंद्रपाल तथा उसके पुत्र महीपाल के समय में भी कन्नौज मे रहा था, अपनी 'विद्धशालभंजिका' नाटिका में अपने शिष्य महेंद्रपाल (निर्भयनरेंद्र) को 'रघुकुलतिलक' और 'बालभारत' में 'रघुग्रामणी

---

* यहाँ प्रतिहार शब्द का अर्थ द्वाररक्षक है।

† मन्विक्ष्वाकुककुस्थ (त्स्थ) मूलपृथवः क्ष्मापालकल्पद्रुमाः ॥ २ ॥
तेषा वंशे सुजन्मा क्रमनिहतपदे धाम्नि वज्रेषु घोर
रामः पौलस्त्यहिंस्र (हिंस्र) क्षतविहितसमित्कर्म्म चक्रे पलाशे।
श्लाघ्यस्तस्यानुजोसौ मघवमदमुषो मेघनादस्य सख्ये
सौमित्रिस्तीव्रदंड, प्रतिहरणविधेर्य्य, प्रतिहार आसीत् ॥ ३ ॥

एन्युअल रिपोर्ट ऑफ दी आर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, ईस्वी सन् १९०३—४, पृष्ठ २८०।

‡ तत्सूनु. प्राप्य राज्य निजमुदयगिरिस्पर्द्धि भास्वत्प्रताप
क्ष्मापालः प्रादुरासीन्नतसकलजगद्वत्सलो वत्सराजः ।। ६ ॥
" एकः क्षत्रियपुङ्गवेषु च यशोगुर्वीं धुरं प्रोब्दहन्
इक्ष्वाकोः कुलमुन्नत सुचरितैश्चक्रे स्वनामाकितम् ॥ ७ ॥
वही, पृ० २८०—८१।

(रघुवंशियो में अग्रणी), कहा है* । उसी कवि ने 'बालभारत' नाटक मे महेंद्रपाल के पुत्र महीपाल को रघुवश मुक्तामणि (रघुवशी रूपी मोतियों में मणि के समान), एवं आर्यावर्त का महाराजाधिराज लिखा है† । राजशेखर के ये सब कथन ग्वालियर की प्रशस्ति के कथन की पुष्टि करते है ।

३—शेखावाटी (जयपुर राज्य) के प्रसिद्ध हर्षनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति में, जो संवत् १०३० आषाढ़ सुदि १५ की साँभर के चौहान राजा विग्रहराज के समय की है, उक्त विग्रहराज के पिता सिंहराज के वर्णन में लिखा है कि 'उस विजयी राजा ने सेनापति होने के कारण उद्धत बने हुए तोमर (तवँर) नायक सलखण को मारा (या हराया, मूल लेख में 'हत्वा' या 'जित्वा' शब्द होगा जो जाता रहा है, केवल 'आ' की मात्रा बची है) और चारो ओर युद्ध में राजाओ को मारकर बहुतेरो को उस समय तक कैद में रखा, जब तक कि उनको छुडाने के लिये पृथ्वी पर का चक्रवर्ती रघुवंशी (राजा) स्वय उसके यहाँ न आया‡ ।

इससे स्पष्ट है कि साँभर का चौहान राजा सिंहराज किसी चक्रवर्ती अर्थात् बडे राजा का सामंत था । उस समय उत्तरी भारत मे प्रबल राज्य प्रतिहारों का ही था, जिसके अधीन राजपूताने का अधिकाश ही नही, किंतु गुजरात, काठियावाड, मध्यभारत (मालवा) एव सतलज से लगाकर बिहार तक के प्रदेश थे । साँभर के चौहान भी पहले कन्नौज के प्रतिहारो के अधीन थे, क्योंकि उसी हर्षनाथ की प्रशस्ति में सिंहराज के पूर्वज गूवक (प्रथम) के संबंध में लिखा है कि उसने बड़े राजा नागावलोक (कन्नौज का राज्य छीननेवाला प्रतिहार राजा नागभट दूसरा) की सभा मे 'वीर' कहलाने की प्रतिष्ठा पाई थी **। ऐसी दशा में सिंहराज की कैद से उन राजाओं को छुड़ाने वाला

* रघुकुलतिलको महेंद्रपालः (विद्धशालभजिका, १, ६) ।
देवो यस्य महेंद्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणिः—
('बालभारत' १, ११)

† तेन (= महीपालदेवेन) च रघुवशमुक्तामणिना आर्यावर्तमहाराजाधिराजेन श्रीनिर्भयनरेन्द्रनंदनेनाधिकृता: सभासदः—(बालभारत) ।

‡ ...तोमरनायकं सलव (ख?) र्णं सैन्याधिपत्योद्धतं
युद्धे येन नरेश्वरा प्रतिदिशं निर्न्ना(र्णा) शिता जिष्णुना ।
कारावेश्मनि भूरयश्च विधृतास्तावद्धि यावद्गृहे
तन्मुक्तचर्थमुपागतो रघुकुले भूचक्रवर्ती स्वयम् ।
एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द २, पृ० १२१-२२ ।

** आद्यः श्रीगूवकाख्या प्रथितनरपतिश्चाहमानान्वयोभूत्

रघुवंशी राजा कन्नौज का प्रतिहार राजा ही हो सकता है। सिंहराज का समकालीन कन्नौज का प्रतिहार राजा देवपाल या उसका छोटा भाई विजयपाल होना चाहिए। अत: उक्त प्रशस्ति से स्पष्ट है कि वि० सं० १०३० में साँभर के चौहान भी कन्नौज के प्रतिहारो को रघुवशी मानते थे।

ऊपर उद्धृत किए हुए इन प्रमाणो से निश्चित है कि कन्नौज के प्रतिहार राजा रघुवंशी थे। इस प्रकार ब्राह्मण, चावडे, गुर्जर और रघुवशी, इन चार वंशो के प्रतिहारो का अब तक पता चला है। राजाओ के परम विश्वासपात्र पुरुषो को ही प्रतिहार पद दिया जाता था, उनको जागीरें भी मिलती थी और समय पाकर कोई-कोई स्वतंत्र राजा भी बन जाते थे। कुतबुद्दीन एबक शहाबुदीन गोरी का गुलाम था, परन्तु पीछे से स्वतंत्र सुलतान होने पर उसका वंश गुलामवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी तरह ब्राह्मण, चावड़ा, गुर्जर आदि प्रतिहार प्रारंभ में प्रतिहार थे, परन्तु पीछे से सामत अथवा स्वतत्र राजा हो गए, जिससे उनसे भिन्न-भिन्न प्रतिहार वश प्रसिद्ध हुए, किंतु प्रतिहारवंश मूलपुरुष से; नहीं प्रत्युत पद से ही प्रसिद्ध हुआ, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके है।

रघुवंशी प्रतिहारों ने प्रथम चावड़ा से भीनमाल का राज्य छीना। फिर कन्नौज के महाराजा को अपने हस्तगत कर वही अपनी राजधानी स्थिर की, जिससे उनको कन्नौज के प्रतिहार भी कहते है। अब तक के शोध के अनुसार उनकी नामावली तथा संक्षिप्त वृत्तांत नीचे लिखा जाता है—

(१) नागभट—शिलालेखादि में कन्नौज के प्रतिहार राजाओ की नामावली नागभट से ही आरभ होती है। उसको 'नागावलोक' भी कहते थे। भड़ौच जिले के अंक्लेश्वर तालुके के हाँसोट गाँव से विक्रम संवत् ८१३ का चौहान राजा भर्तृवृढ्ढ (भर्तृवृद्ध) दूसरे का एक दानपत्र मिला है, जिससे भर्तृवढढ् दूसरे के नागावलोक का सामंत होने का पता लगता है*। इस दानपत्र का नागावलोक यही प्रतिहार नागभट (नागावलोक) होना चाहिए। यदि यह अनुमान ठीक हो तो उसका राज्य उत्तर में मारवाड़ से लगाकर दक्षिण में भडौंच जिले तक माना जा सकता है। मुसलमान बलचो (बिलोचो) ने उसके राज्य पर आक्रमण किए, परन्तु उसमें वे परास्त हुए†। इन बिलोचो ने सिंध की तरफ से मारवाड़ पर चढाई की होगी।

·श्रीमन्नागावलोकप्रवरनृपसभालब्ध (ब्ध) वीरप्रतिष्ठ·।

एपिग्राफिया इडिका, जिल्द २, पृ० १२१।

* एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द १२, पृ० २०२—३।

† तद्वन्शे (वंशे) प्रतिहारकेतनभृति त्रैलोक्यरक्षास्पदे

(२) ककुस्थ (संख्या १ का भतीजा)—वह कक्कुक भी कहलाता था।

(३) देवराज (सख्या २ का छोटा भाई) उसको देवशक्ति भी कहते थे और वह परम भागवत (वैष्णव) था। उसकी रानी भूयिकादेवी से वत्सराज उत्पन्न हुआ।

(४) वत्सराज (संख्या ३ का पुत्र)—उसने गौड और बंगाल के राजाओ को विजय किया। गौड के राजा के साथ की गई लडाई में उसका सामत मडोर का प्रतिहार कक्क भी उसके साथ था। जिस समय उसने मालवा के राजा पर चढ़ाई की उस समय दक्षिण का राष्ट्रकूट (राठोड़) राजा ध्रुवराज अपने सामंत लाट देश के राठोड राजा कक्कर्कराज सहित, जो इन प्रतिहारो का पड़ोसी था, मालवा के राजा को बचाने के लिये गया, जिससे वत्सराज को हारकर मरु (मारवाड़) देश में लौटना पडा और गौड देश के जो दो श्वेत छत्र उस (वत्सराज) ने छीने वे राठोड़ो ने उससे ले लिए *। उस क्षत्रियपुगव

देवो नागभट पुरातनमुनेर्मूर्तिब्बभूवाद्भुतम् ॥
येनासौ सुकृतप्रमाथिबलच म्लेच्छाधिपाक्षौहिणी. ।
क्षुन्दानस्फुरदुग्रहेतिरुचिरैर्दोर्भिश्चतुर्भिर्बभौ ॥ ४ ॥

प्रतिहार राजा भोजदेव की ग्वालियर की प्रशस्ति; रिर्पोट आफ दी आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इडिया; ईस्वी सन् १९०३-४ पृ० २८०।

* गौडेंद्रवगपतिनिर्ज्जयदुर्व्विदग्ध-
सद्गूर्ज्जरेश्वरदिग्गर्गलता च यस्य ।
नीत्वा भुज विहतमालवरक्षणार्थं
स्वामी तथान्यमपि राज्यछ (फ) लानि भुक्ते ॥

—बडौदे का दानपत्र, इडियन ऐटिक्वेरी, जि० १२, पृ० १६०।

हेलास्वीकृतगौडराज्यकमलामत्त प्रवेश्याचिरा-
द्दूर्मार्गं मरुमध्यमप्रतिव (ब) लैर्यो वत्सरो (रा) जं व (ब) लैः।
गौडीय शरदिन्दुपादधवल छत्रद्वय को (के) वल
तस्मान्नाहृततद्यशोपि कुकुंभा प्राते स्थित तत्क्षणात् ॥

—इंडियन ऐटिक्वेरी, जिल्द ११, पृष्ठ १५७।

हम ऊपर बतला चुके है कि वि० स० ८१३ मे भडौच जिले के अक्लेश्वर तालुके पर चौहानो का राज्य था, और चौहान भर्तृवड्ढ (दूसरा) नागावलोक (नागभट) का सामत था। पीछे से दक्षिण के राठोडो ने लाट देश अपने अधीन कर लिया, इसलिये दक्षिण के राठोडो और वत्सराज के बीच लडाई हुई होगी। इसके विशेष वृत्तात के लिये देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ० ३४५-४६ और पृ० ३४५ का टिप्पण (१)।

ने बलपूर्वक भंडि* के वंश का राज्य छीनकर इक्ष्वाकु वंश उन्नत किया। शक संवत् ७०५ (विक्रम संवत् ८४०) में दिगंबर जैन आचार्य जिनसेन ने 'हरिवंश-पुराण' लिखा जिसमें उक्त संवत् मे उत्तर (कन्नौज) में इंद्रायुध और पश्चिम (मारवाड) में वत्सराज का राज्य करना लिखा है†। वह परम माहेश्वर (शैव) था, और उसकी रानी सुंदरीदेवी से नागभट का जन्म हुआ। वत्सराज का मारवाड़ से दक्षिण में जाकर दक्षिण के राठोडो से लडना निश्चित है, अतएव वर्तमान गुजरात के किसी न किसी विभाग पर उसका अधिकार होना माना जा सकता है।

(४) नागभट दूसरा—(संख्या ४ का पुत्र) उसको 'नागावलोक' भी कहते थे। उसने चक्रायुध‡ को परास्त कर कन्नौज का साम्राज्य उससे छीना। उसी के समय से गुर्जर देश के इन प्रतिहारो की राजधानी कन्नौज स्थिर होनी चाहिए। उसने आंध्र, सैंधव, विदर्भ (वराड़), कलिंग और बंग के राजाओं को जीता, तथा आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स और मत्स्य आदि देशो के पहाडी किले ले लिए, ऐसा उपर्युक्त ग्वालियर की प्रशस्ति में लिखा मिलता है¶। राजपूताने मे जिस नाहड़राव पडिहार का नाम बहुत

---

* ख्याताद्भण्डिकुलान्मदोत्कटकरिप्राकारदुर्ल्लंघतो
य. साम्राज्यमविज्यकार्म्मुकसखा संख्ये हठादग्रहीत् ।

राजा भोजदेव की ग्वालियर की प्रशस्ति, रिपोर्ट आफ दी आर्कियालॉजिकल सर्वे आफ इडिया, ईस्वी सन् १९०३-४, पृ० २८०। भंडि का वंश कहाँ राज्य करता था, इसका ठीक-ठीक निर्णय नही हो सका। एक भडि तो प्रसिद्ध वैसवशी राजा हर्षवर्द्धन के मामा का पुत्र और उक्त राजा का मंत्री था। यहाँ उससे अभिप्राय हो ऐसा पाया नही जाता। यह चावडा वंश का कोई राजा हो तो आश्चर्य नही।

† शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पंचत्तरेषूत्तरा
पातीन्द्रायुधि नाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्।
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्सादि (धि) राजेऽपराम् ।।
बंबई गैजेटियर, जिल्द १, भाग २, पृ० १९७, टिप्पण २।

‡ चक्रायुध कन्नौज के उपर्युक्त राजा इन्द्रायुध का उत्तराधिकारी था। ये दोनो किस वंश के थे यह ज्ञात नही हुआ, परन्तु संभव है कि ये राठोड हो।

¶ आद्य. पुमान्पुनरपि स्फुटकीर्तिरस्मा-
ज्जातस्स एव किल नागभटस्तदाख्य.।
यत्रान्ध्रसैन्धवविदर्भकलिंगभूपै
कौमारधामनि पतंगसमैरपाति ।। ८ ।।

प्रसिद्ध है और जिसके विषय में पुष्कर के घाट बनवाने की ख्याति चली आती है, वह यही नागभट (नाहड़) होना चाहिए, न कि उक्त नाम का मंडोर का प्रतिहार। उसके समय का विक्रम संवत् ७७२ का एक शिलालेख जोधपुर राज्य के बीलाड़ा परगने के बुचकला ग्राम से मिला है†B। नागभट भगवती (देवी) का परम भक्त था। उसकी रानी ईसटादेवी से रामभद्र उत्पन्न हुआ। नागभट का स्वर्गवास वि०सवत् ८६० भाद्रपद सुदि५ को होना जैन चन्द्रप्रभसूरि ने अपने 'प्रभावकचरित' में लिखा है‡C। कई जैन लेखकों ने कन्नौज के राजा

ग्रय्यास्पदस्य सुकृतस्य समृद्धिमिच्छु-
 र्यं क्षत्रधामविधिबद्धबलिप्रबंध ।
जित्वा पराश्रयकृतस्फुटनीचभाव
 चक्रायुध विनयनम्रवपुर्व्यराजत ।। ९ ।।
दुर्वारवैरिवरवारणवाजिवार-
 याणौघसवटनघोरघनान्धकारम् ।
निर्ज्जित्य बगपतिमा विरभूद्विवस्वा-
 नुद्यन्निव त्रिजगदेकविकासकोष· ।। १० ।।
आनर्तमालवकिराततुरुष्कवत्स-
 मत्स्यादिराजगिरिदुर्गहठापहारै. ।
यस्यात्मवैभवमतीन्द्रियमाकुमार-
 माविर्बभूव भुवि विश्वजनीनवृते ।।११।।

रिपोर्ट आफ दी आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इडिया, ईसवीं सन् १९०३-४ पृ० २८१।

† एपिग्राफिया इडिका, जिल्द ९, पृ० १९९-२००।

‡ विक्रमतो वर्षाणा शताष्टके सनवती च भाद्रपदे ।
शुक्रे सितपचम्या चन्द्रे चित्राख्यऋक्षस्थे ।। ७२ ।।
माभूत्संवत्सरोऽसौ वसुशतनवतेर्मा-च ऋक्षेषुचित्रा
धिग्मासं तं नभस्य क्षयमपि स खल' शुक्लपक्षोपि यातु ।
' सक्रान्तिर्या च सिंहे विशतु हुतभुज पंचमी यातु शुक्रे

B. बुचकला का उपरोक्त शिलालेख वि० स० ८७२ (ई० स० ८१५) का है। डा० ओझा ने भी अपने राजपूताना का इतिहास जिल्द१, पृ. १८१ द्वि० सं० में तथा अन्यत्र इस शिलालेख का संवत् ८७२ (ई० स० ८१५) ही दिया है। यहां लेखक तथा छापे के दोष से वि० स० ७७२ छपा है। (स० हि०)।

C. जैन चन्द्र प्रभसूरि ने अपने 'प्रभावक चरित' में लिखा है, पढ़ना चाहिए। (स० हि०)।

नागभट के स्थान में आम नाम लिखा है; परन्तु चन्द्रप्रभसूरि ने 'आम' और 'नागावलोक' दोनों एक ही राजा के नाम होना बतलाया है* ।

(६) रामचन्द्र (संख्या ५ का पुत्र)--उसको राम तथा रामदेव भी कहते थे। उसने बहुत थोड़े समय तक राज्य किया। वह सूर्य का भक्त था और उसकी रानी अप्पादेवी से भोज का जन्म हुआ।

(७) भोजदेव (संख्या ६ का पुत्र) उसको 'मिहिर' और 'आदिवहार' भी कहते थे। वह अपने पड़ोसी लाट देश के राठोड राजा ध्रुवराज (दूसरे) से लड़ा, जिसमे राठोड़ो के कथनानुसार उसकी हार हुई थी। उसके समय के विक्रम संवत् ९०० से लेकर ९३८ तक पाँच † शिलालेखादि मिले है और चाँदी और ताँबे के सिक्के भी मिले है जिनके एक तरफ 'श्रीमदादिवराह' लेख और दूसरी ओर 'वराह' (बरवराह) की मूर्त्ति बनी है‡। वह भगवती (देवी) का भक्त था। उसकी रानी चंद्रभट्टारिकादेवी से महेंद्रपाल उत्पन्न हुआ था। भोजदेव के युवराज नागभट का नाम मिलता है, परन्तु महेंद्रपाल और विनायकपाल के दान-पत्रो में उसका नाम राजाओ की नामावली में न मिलने से अनुमान होता है कि उसका देहांत भोजदेव की विद्यमानता में ही हो गया हो, जिससे भोजदेव का उत्तराधिकारी उसका दूसरा पुत्र महेंद्रपाल हुआ हो। काठियावाड से मिले हुए भोजदेव के एक शिलालेख का फोटो श्रीयुत दत्तात्रेय बालकृष्ण डिस्कलकर ने हमारे पास भेजा है। यह शिलालेख उल्लिखित शिलालेखो से भिन्न है और उससे भोजदेव का काठियावाड पर अधिकार होना निश्चित है।

(८) महेंद्रपाल (संख्या ७ का पुत्र)—उसे 'महेंद्रायुध' 'महेद्रपाल', 'निर्भयराज' और 'निर्भयनरेंद्र' भी कहते थे। उसके समय के दो शिलालेख और तीन ताम्रपत्र मिले है, जो वि० सं० ९५० से ९६४ तक के है। उन तीन ताम्रपत्रो में से दो जूनागढ़ राज्य के ऊना गाँव से मिले है, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इससे निश्चित है कि काठियावाड़ के दक्षिण

गगातोयाग्निमध्ये त्रिदिवमुपगतो यत्र नागावलोक ।। ७२५ ।।
'प्रभावकचरित' मे बप्पभट्टिप्रबध; पृ० १७७ ।

* निर्णयसागर प्रेस मे मुद्रित प्रभावकचरित के अतर्गत बप्पभट्टिप्रबन्ध के श्लोक ७९ तथा ११६ मे 'आम' नाम है और श्लोक १८८, ७२२ तथा ७२५ मे 'नागावलोक' नाम मिलता है ।

† मेरा 'राजपूताने का इतिहास', जिल्द १, पृ० १६२ ।

‡ स्मिथ, कैटेलाग आफ दी कॉइस इन दी इंडियन म्यूजियम, पृ० २४१-४२, प्लेट २५ संख्या १८ ।

विभाग पर भी उसका राज्य था, जहाँ उसके सोलंकी सामंतों की जागीरें थीं*। काठियावाड में महेंद्रपाल की तरफ से धीइक नामक शासक या सूबेदार रहता था, जैसा कि उक्त दानपत्रों से जान पड़ता है। 'काव्यमीमांसा' 'कर्पूरमंजरी' 'विद्धशालभंजिका', 'बालरामायण', 'बालभारत' आदि ग्रंथो का कर्त्ता सुप्रसिद्ध कवि राजशेखर उसका गुरु था। अपने पिता के समान महेंद्रपाल भी भगवती (देवी) का परम भक्त था। उसके तीन पुत्रों—महीपाल (क्षितिपाल), भोज और विनायकपाल—के नामो का पता लगा है। भोज की माता का नाम देहनागदेवी और विनायकपाल की माता का नाम महीदेवी मिला है।

(९) महीपाल (संख्या ८ का पुत्र)—उसको क्षितिपाल भी कहते थे। उसके समय में 'काव्यमीमासा' आदि का कर्त्ता राजशेखर कवि कन्नौज मे विद्यमान था, वह उसको आर्यावर्त का महाराजाधिराज तथा मुरल, मेकल, कलिंग, केरल, कुलूत, कुतल और रमठ देशवालो को पराजित करनेवाला लिखता है†। महीपाल दक्षिण के राठोड़ इंद्रराज (तीसरे, नित्यवर्ष) से भी लड़ा था, जिसमें राठोड़ो के कथनानुसार उसकी हार हुई थी। उसके समय का एक दानपत्र हड्डाला गाँव (काठियावाड़) से शक सवत् ८३६ (विक्रम संवत् ९७१) का मिला, जिससे पाया जाता है कि उस समय बढवाण में उसके सामत चाप (चावड़ा) वंशी धरणीवराह का अधिकार था। विक्रम सवत् ९७४ का एक और शिलालेख ' मिला है।

(१०) भोज दूसरा (सख्या ९ का छोटा भाई)—उसने थोडे ही समय तक राज्य किया। अब तक यह निश्चित रूप से ज्ञात नही हुआ कि भोज (दूसरा) बड़ा था या महीपाल।

(११) विनायकपाल *(संख्या १० का छोटा भाई)—उसके समय का एक दानपत्र विक्रम संवत् ९८८† का मिला है। उसकी रानी प्रसाधनादेवी से महेंद्रपाल (दूसरे) का जन्म हुआ। उसके अंतिम समय से कन्नौज के प्रतिहारों का राज्य निर्बल होता गया और सामंत लोग स्वतंत्र बनने लग गए।

---

* नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग १, पृ० २१२-१५।

† नमितमुरलमौलि पालको मेकलाना रणकलितकलिंग केलितृट् केरलेंदो।
अजनि जितकुलूतः कुतलाना कुठारो हठहृतमठश्री श्रीमहीपालदेव·।
—बालभारत की प्रस्तावना।

* इंडियन ऐटिक्वेरी, जिल्द १६, पृ० १७४-७५।

† इंडियन ऐटिक्वेरी; जिल्द १५, पृ० १४०-४१। छपी हुई प्रति में संवत् १८८ पढा जाकर उसको हर्ष संवत् माना है जो अशुद्ध है; उसके फोटो मे शुद्ध सवत् ९८८ है।

(१२) महेंद्रपाल दूसरा (संख्या ११ का पुत्र)—उसके समय का विक्रम सवत् १००३ का एक शिलालेख प्रतापगढ़ से मिला है। उससे ज्ञात होता है कि घोटावर्षिका (घोटार्सी, प्रतापगढ से अनुमान ६ मील पर) का चौहान इंद्रराज उसका सामंत था; उस समय मंडपिका (मांडू) में बलाधिकृत (सेनापति) कोक्कट का नियुक्त किया हुआ श्रीशर्मा रहता था और मालवा का तंत्रपाल (शासक हाकिम) महासामत, महादंडनायक माधव (दामोदर का पुत्र) था, जो उज्जैन में रहता था। चौहान इंद्रराज के बनवाए हुए घोंटावर्षिका के 'इद्रराजादित्यदेव' नामक सूर्यमदिर को 'खर्परपद्रक' गाँव महेद्रपाल (दूसरे) ने भेट किया, जिसकी सनद (दानपत्र) पर उक्त माधव ने हस्ताक्षर किए थे* ।

महेंद्रपाल द्वितीय के पीछे संभवतः काठियावाड़के उपर्युक्त सोलंकियों के वंशधर मूलराज ने प्रबल होकर अनहिलवाडे (पाटण) के अंतिम चावड़ावंशी राजा सामतसिह को जो उसका मामा माना जाता है, विक्रम संवत् १०१७ में मारकर पाटण का राज्य उससे छीन लिया। फिर उसने आबू के परमारो का राज्य भी अपने अधीन किया और कच्छ के जाडेचा (यादव) राजा लाखाफूलाणी को मारकर उसने कच्छ के राज्य पर अपना आधिपत्य जमाया। कल्याण के चौलुक्य राजा तैलप के सामत वारप को युद्ध मे मारकर उसने लाट देश अपने अधीन किया और सौराष्ट्र के चूडासमा राजा ग्रहरिपु पर चढ़ाई कर काठियावाड़ को अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार वर्तमान गुजरात के प्रतिहार राजाओ का राज्य अस्त हो गया।

उधर कन्नौज में महेद्रपाल दूसरे के पीछे क्रमश देवपाल और विजयपाल राजा हुए; ये दोनो निर्बल राजा थे। फिर विजयपाल के पुत्र राज्यपाल के समय में वि० स० १०७५ (ईसवी सन् १०१८) में गजनी के सुलतान महमूद ने कन्नौज पर आक्रमण किया, तब उसने सुलतान की अधीनता स्वीकार करली, जिस पर वह अपने सामतो के हाथ से मारा गया। उसके पीछे त्रिलोचनपाल और यशपाल का कन्नौज पर अधिकार होना पाया जाता है। अत में विक्रम सवत् ११३५ के आस-पास गाहड़वालवशी महीचन्द्र का पुत्र चन्द्रदेव कन्नौज का राज्य प्रतिहारों से छीनकर वहाँ का स्वामी बन गया। इस प्रकार कन्नौज के महाराज्य की इतिश्री हो गई।

ना. प्र. त्रै. पत्रिका नवीन संस्करण, भाग ६, सं. ३,
वि. स १९८५ (ई. स. १९२८)

---

* एपिग्राफिया इडिका, जिल्द १४, पृ० १८२-८४ ।

९—राजपूताना के गुर्जर राजाओं का संक्षिप्त वृत्तान्त

इस समय गुर्जर अर्थात् गूजर जाति के लोग विशेष कर खेती या पशुपालन से अपना निर्वाह करते हैं; परन्तु पहिले इनकी गणना राजवंशियो में थी। अब तो केवल इनका एक राज्य समथर (बुन्देलखड में) और कुछ ज़मीदारियाँ युक्तप्रदेश आदि में रह गई है परन्तु पहिले पंजाब, राजपूताना तथा गुजरात में इनके राज्य थे। चीनी यात्री हुएन्तसंग विक्रम संवत् की सातवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दुस्थान में आया। वह अपने यात्रा की पुस्तक में गुजर देश का वर्णन करता है और उसकी राजधानी भीनमाल (भिल्लमालश्रीमाल—जोधपुर राज्य के दक्षिणी विभाग में) होना लिखता है। हुएन्तसंग का बतलाया हुवा गुर्जर देश महाक्षत्रप रुद्रदामा के राज्य के अन्तर्गत था, तो भी उक्त राजा के गिरनार के शक सं० ७२ (वि० सं० २०७) के कुछ ही बाद के शिलालेख में उसके अधीन के जो देशो के नाम दिये हैं उनमें गुजर नाम नही; किन्तु उसके स्थान में श्वभ्र* और मरु‡ नाम दिये है जिससे अनुमान होता है कि उक्त लेख के खोदे जाने तक गुर्जर देश (गुजरात) नाम प्रसिद्धि में नहीं आया था।

क्षत्रपों के राज्य के बाद किसी समय गुर्जर (गूजर) जाति के अधीन का देश गुर्जर देश या गुर्जरत्रा (गुजरात) कहलाया होगा।

हुएन्तसंग गुर्जर देश की परिधि ८३३ मील बतलाता है जिससे पाया जाता है कि वह देश बहुत बड़ा था और उसकी लम्बाई अनुमान ३०० मील या उससे भी अधिक होना चाहिए। प्रतिहार (पड़िहार) राजा भोजदेव (प्रथम) के विक्रम सं० ९०० के दानपत्र में लिखा है कि उसने गुर्जरत्रा (गुजरात) भूमि (देश) के डेंड्वानक विषय (ज़िले) का सिवागांब दान किया। वह दानपत्र जोधपुर राज्य के डीडवाना ज़िले के सिवागांव के एक टूटे हुए मन्दिर से मिला था। उक्त दानपत्र का डेंड्वानक ज़िले जोधपुर राज्य के उत्तर पूर्वी हिस्से का डीडवाना ही है और सिवागांव डीडवाने से ७ मील पर का सेवागांव ही है जहाँ से वह ताम्रपत्र मिला है। कालिंजर से मिले हुए विक्रम संवत् की नवीं शताब्दी के आस-पास के एक शिलालेख में गर्जरत्रा मंडल (देश) के मंगलानक गाव से निकले हुए जेंबुक के बेटे देद्दुक की बनाई हुई मंडपिका के प्रसंग में उसकी स्त्री लक्ष्मी के द्वारा उमा महेश्वर के पट्ट की प्रतिष्ठा किये जाने का उल्लेख है।

* उत्तरीय गुजरात, साबरमती नदी के तट का सारा प्रदेश।

‡ मारवाड़।

मंगलानक जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग का मंगलाना गाँव है जो मारोठ से १६ मील पश्चिम में और डींडवाने से थोड़े से ही अन्तर पर है। हुएन्तसंग के कथन और इन दोनों शिलालेखों से पाया जाता है कि विक्रम सवत् की ७वीं से ६वी शताब्दी तक जोधपुर राज्य का सारा उत्तार पूर्वी हिस्सा गुर्जर देश (गुर्जरत्रा, गुजरात) के अन्तर्गत था। इसी तरह दक्षिण और लाट * के राठौड़ो तथा प्रतिहारो के बीच की लड़ाइयो के वृत्तान्त से पाया जाता है कि गुर्जर देश की दक्षिणी सीमा 'लाट' देश से जा मिलती थी ।

अतएव गुर्जर देश के अन्तर्गत उस समय जोधपुर राज्य का सारा उत्तर पूर्वी हिस्सा तथा उससे दक्षिण का लाट देश तक का वर्तमान गुजरात देश था । अब तो राजपूताने का वह हिस्सा गुजरात नहीं कहलाता परन्तु पहिले गुजरात के अन्तर्गत था । देशो के नाम बहुधा उनपर अधिकार करनेवाली जातियो के नाम से प्रसिद्ध होते रहे है जैसे कि मालवों से मालवा, शेखावतों से शेखावाटी, राजपूतो से राजपूताना आदि ऐसे ही गुर्जरों (गुर्जरो) के अधिकार होने से गुर्जर देश (गुजरात) नाम से प्रसिद्ध हुआ । गुर्जर देश के राजपूताने के विभाग पर गुर्जरो (गुजरो) का राज्य कब हुआ और कब तक रहा यह ठीक निश्चित नहीं, तो भी यह तो निश्चित है कि रुद्रदामा के समय अर्थात् विक्रम संवत् २०७ तक तो गुर्जरो का राज्य भीनमाल में नहीं हुआ था । सम्भव है कि क्षत्रपों का राज नष्ट होने पर गुर्जरों का राज्य वहा हुआ हो ।

विक्रम संवत् ६८६ के पूर्व उसका राज्य वहाँ से उठ गया था क्योंकि उक्त संवत् में वहाँ पर चाप (चावड़ा) वंशी राजा व्याघ्रमुख का राज्य होना भीनमाल के ही रहनेवाले (भिल्लमालकाचार्य) प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त के "ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त" से पाया जाता है। लाट देश के चालुक्य (सोलंकी) सामन्त पुलकेशी (अवनिजनाश्रय) के कलचुरि संवत् ४६० (विक्रम संवत् ७६६) के दानपत्र से पाया जाता है कि चावोटक (चाप-चावड़े) गुर्जर वंश से भिन्न वंश था । भीनमाल का गुर्जरों का राज्य चावड़ों के हाथ में चला जाने के बाद विक्रम संवत् की ११वीं शताब्दी के आरम्भ के आस-पास के प्रदेश पर गुर्जरों का एक राज्य होने का भी

* लाट देश की उत्तरी सीमा बम्बई हाते के खेडा ज़िले में बहनेवाली सेढी नदी तक और दक्षिणी सीमा तापी नदी से कुछ दक्षिण तक होना ताम्रपत्रादि से पाया जाता है, सामान्य रूप से मही और तापी नदियो के बीच का देश 'लाट' माना जाता है ।

पता चलता है। अलवर राज्य के राजोरगढ नामक प्राचीन क़िले से एक शिलालेख विक्रम संवत् १०१६ माघ सुदी १३ का मिला है जिससे पाया जाता है कि उस समय राज्यपुर (राजोरगढ) पर प्रतिहार गोत्र के गुर्जर महाराजाधिराज सावट का पुत्र महाराजाधिराज परमेश्वर मथनदेव राज्य करता था और वह परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर क्षितिपाल कन्नौज का रघुवंशी प्रतिहार राजा था। उस शिलालेख में मथन देव को महाराजाधिराज परमेश्वर लिखा है जिससे अनुमान होता कि वह क्षितिपाल देव (महीपाल) के बड़े सामन्तों में से हो। उसी शिलालेख से यह भी जाना जाता है कि उस समय वहाँ पर गुर्जर (गूजर) जाति के किसान भी थे।

वर्तमान गुजरात में भडौच पर भी गुर्जरो का विक्रम संवत् ६४५ से ७९३ तक रहने का पता तो उनके दानपत्रो से ही लगता है। संभव है कि उक्त संवतो के पहिले और पीछे भी उसका राज्य वहाँ रहा हो। इससे यह यह भी संभव है कि भीनमाल के गुर्जरो का राज्य भडौच तक फैला हुआ हो और भीनमाल का राज्य उनके हाथ से निकल जाने पर भी भड़ौच के राज्य पर उनका अधिकार बना रहा हो। भड़ौच के गुर्जर राजाओं के दानपत्रो से पाया जाता है कि भड़ौच के गुर्जर राज्य के अन्तर्गत भडौच जिला सूरत जिले के ओरपाड 'चोरासी' और बारडोली ताल्लुके तथा उनके पास के बड़ौदा राज्य, रेवाकांठा और सचीन राज्य के इलाके होने चाहियें।

गूजर जाति की उत्पत्ति के विषय में आधुनिक प्राचीन शोधको ने अनेक कल्पनायें की है, जनरल कनिंगहॉम ने इनका यूची अर्थात् कुशन वंशी होना अनुमान किया है। वी० ए० स्मिथ ने इनकी गणना हूणो में की है। सर जेम्स कैंपबेल का कथन है कि ईस्वी सन् की छठी शताब्दी में खज़र नाम की एक जाति जहां यूरोप और ऐशिया की सीमा मिलती है, वहा रहती थी। उसी जाति के लोग गुर्जर या गूजर है। श्रीयुत देवदत रामकृष्ण भण्डारकर ने कैंपबेल का कथन स्वीकार किया है* यह सब कल्पना ही है क्योंकि

---

* भण्डारकर महाशय ने साथ मे यह भी लिखा है कि बम्बई अहाते मे गूजर (गुर्जर) नही है। पाया जाता है कि यह जाति हिन्दुओ मे मिल गई। वहा गूजर (गुर्जर) बाणिये (बणिये, महाजन) और बाणिये (महाजन) गूजर (गुर्जर) कुम्भार और गूजर (गुर्जर) सिलावट और सिलावट है। खानदेश में देशी कुनबी और गूजर (गुर्जर) कुनबी है। एक मराठा कुटम्ब गुर्जर कहलाता है जो महाराष्ट्र के आधुनिक इतिहास मे प्रसिद्ध

उनमें से कोई भी यह सप्रमाण नहीं बतला सका कि अमुक समय में अमुक कारण से यह जाति बाहर से यहाँ आई। खज़र से गुर्जर या गूजर जाति की उत्पति मानना वैसी ही कपोल कल्पना है, जैसाकि कोई यह कहे सक्सेने कायस्थ यूरोप की सेक्सन जाति से है।

नवसारी से मिले हुऐ भड़ौच के गुर्जर वंशी राजा जयभट (तीसरे) के कलचुरि संवत् ४५६ (विक्रम संवत् ७६२) के दानपत्र में गुर्जरो का महाराज कर्ण (भारत प्रसिद्ध) से होना लिखा है।

रहा है। करहाडा ब्राह्मणो मे भी गुर्जर नाम मिलता है। राजपूताने में भी गुजर गौड ब्राह्मण है, ये सब गूजर (गुजर) है। भण्डारकर महाशय को इन नामो की उत्पत्ति को जानने मे भ्रम हुआ है और उसी से इन सबको गूजर (गुर्जर) ठहरा दिया; परन्तु वास्तव मे ऐसी बात नही है जैसे श्रीमाल नगर (भीनमाल जोधपुर राज्य में) के ब्राह्मण, महाजन, जडिये आदि बाहर जाने पर अपने मूल निवास स्थान पर से वहा के ब्राह्मणो आदि से भिन्न बतलाने के लिये श्रीमाली ब्राह्मण श्रीमाली महाजन, आदि कहलाये, ऐसे ही मारवाड के दधिमति (दाहिमा) क्षेत्र के रहनेवाले ब्राह्मण, राजपूत, जाटादि, दाहिमे ब्राह्मण, दाहिमे राजपूत, दाहिमे जाट आदि कहलाये और गौड देश के ब्राहम्ण, राजपूत, कायस्थ आदि बाहर जाने पर अपने मूल निवासस्थान के नाम से गौड ब्राह्मण गौड़ राजपूत, और गौड कायस्थ कहलाये वैसे ही प्राचीन गुर्जर देश के रहनेवाले ब्राह्मण, महाजन, कुम्हार, सिलावट आदि गुर्जर ब्राह्मण गुर्जर बनिये, गुर्जर कुम्हार, गुर्जर सिलावट कहलाये है। अतएव गुर्जर ब्राह्मण आदि का अभिप्राय यह नही है कि (गूजर गुर्जर) जाति के ब्राह्मण आदि। उनके नाम के पूर्व लगने वाला गुर्जर नाम उनके आदि निवास के देश का सूचक है, न कि जाति का। उक्त महाशय ने एक करहाडा ब्राह्मण कुटुम्ब के यहाँ के ई० स० ११६१ (वि० स० १२४८) के दानपत्र से थोडा सा अवतरण भी दिया है जिसमे दान देने वाले गोविन्द ब्राह्मण को काश्यप, अवत्सार और नैध्रुव इन तीन प्रवर वाले नैध्रुव गोत्र का और गुर्जर उपनाम वाला (गुर्जर समुपाभिधान) कहा है।

यदि गूजर जाति का एशिया की खज़र जाति से होना माना जावे तो क्या उनके यहाँ भी जाति और प्रवर का प्रचार था? उन्होने गूजर गौड उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि इस नाम का तात्पर्य गूजर जाति के गौड़ ब्राह्मण से है परन्तु वास्तव मे गुर्जरगौड का अर्थ यही है कि

बड़गूजर

कर्नल टॉड ने लिखा है कि "बडगूजर सूर्य्य वंशी है और गुहिलोतों को छोड़कर केवल यही एक वंश ऐसा है जो अपने को रामचन्द्र के बेटे लव (?) से निकला बतलाते हैं। बड़गूजर लोगो के बड़े-बड़े इलाके ढूंढाड़ (जयपुर राज्य) में थे और माचेड़ी अलवर के राजाओ का मूल स्थान) के राज्य में राजोर (राजोरगढ़) का पहाड़ी क़िला उनकी राजधानी थी, राजगढ़ और अलवर भी उनके इलाके थे। बडगूजर लोगों को कछवाहो ने इन निवास स्थानों से निकाल दिया। इस वंश के एक दल ने गंगा किनारे जाकर शरण ली और वहाँ पर नया निवास स्थान अनूप शहर बसाया"। कर्नल टॉड ने बड़गूजरों की राजधानी राजोरगढ़ बतलाया है और हम ऊपर वि० सं० १०१६ के शिलालेख से बतला चुके है कि गुर्जरवश के राजा मथनदेव के वंशधर हो। इनका राज्य उस प्रदेश पर बहलोल लोदी के समय तक रहना तो उनके शिलालेख से निश्चित है, जिसके पीछे कछवाहो ने उनकी जागीरें छीनी हों। 'बड़गूजर' नाम शिलालेख लेखों में पहिले-पहल माचेड़ी की बावड़ी के वि० सं० १४३६ के शिलालेख में देखने में आया, जिसमें उक्त सवत् में वैशाख सुदि ६ को खन्डेलवाल महाजन के द्वारा सुरताण (सुलतान) पेरोज-साहि (फिरोजशाह तुग़लक) के राज्य समय, जब कि माचाड़ी (माचेड़ी) पर बडगूजर वंश के राजा आसलदेव के पुत्र महाराजाधिराज गोगदेव का राज्य था, उक्तबावड़ी के बनाये जाने का उल्लेख है। इसी गोगदेव के शिलालेख वि० सं० १४२१ और १४२६ के भी देखने में आये। गोगदेव फिरोजशाह तुग़लक का सामंत था। वही की एक दूसरी बावड़ी में एक शिलालेख वि० सं० १५१५, शाके १३८० का सुरताण (सुल्तान) बहलोलसाहि (बहलोल लोदी) के समय का बिगड़ी हुई दशा में है। उस समय माचेड़ी में बड़गूजर वंशी महाराज रामसिंह के पुत्र महाराज रजपालदेव (राज्यपालदेव) का राज्य होना लिखा है। उक्त लेख का महाराज रामसिंह, गोगदेव का पुत्र या पौत्र होना चाहिये।A

गुर्जर देश के गौड ब्राह्मण न कि गूजर जाति के गौड ब्राहम्ण।

भारत के इतिहास में गुर्जर वंशी राजाओ का विक्रम की तीसरी शताब्दी से आठवी शताब्दी तक वर्णन मिलता है, जिनका राज्य भीनमाल और भडौच मे था। गुर्जर नरेश, गुर्जर कैसे कहलाये, इसका अभी तक स्पष्टीकरण नही हुआ है। गुर्जर सस्कृत का शब्द है, जो वंश, जाति तथा देश-वाचक बन गया है, जैसे गुर्जर-गुर्जर नरेश, गुर्जर-गूजर जाति, गुर्जर-गुर्जरत्रा, गुजरात प्रदेश। 'गर्जर' शब्द से 'गुजरात' बन सकता है, यह असभव नही है; पर मूल में

'गुर्जर' शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई, जिससे यह शब्द देश तथा जाति वाचक बना, इस पर विचार होना आवश्यक है ।

वि० स० की तीसरी शताब्दी के प्राप्त लेखो से गुजरात का वह विभाग जहाँ भीनमाल और भडौच आदि है, 'मरू और श्वभ्र' नाम से प्रसिद्ध था। इनके पीछे वि० सं० की सातवी शताब्दी मे आनेवाले चीनी यात्री हुएन्त-सग ने अपने यात्रा विवरण मे 'गुर्जर देश' का नामोल्लेख किया है, जो वर्तमान गुजरात प्रदेश के एक भाग का सूचक है, जबकि गुर्जर नरेशो का गुजरात पर आधिपत्य स्थिर हो गया था। गुर्जरो के शिलालेखो मे इनको 'कर्ण' का वंशधर बतलाया है । कर्ण कौन था, यह निश्चित नही हुआ है। यदि भारत प्रसिद्ध सूतपुत्र कर्ण से आशय हो तो गुर्जर नरेश मूल मे कुरु-पान्चाल के निवासी हो सकते है, जहाँ गुजरान वाला प्रात भी है, जो उनके किसी पूर्वज के नाम पर गुजरान वाला कहलाता है और वहाँ के निवासी होने से ये लोग गुर्जर कहलाये हो । गुर्जरो का क्षत्रपो के बाद उत्थान होता है, फलत उनके नाम से उनका अधिकृत प्रदेश 'गुर्जरत्रा (गुजरात)' कहलाया हो ।

भारत की सैनिक जातियो मे गुर्जर जाति का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है और वह सैनिक सेवा के अतिरिक्त पशु-पालन और कृषि-कर्म से जीविका चलाती है । कुछ विदेशी तथा एतद्देशीय विद्वानो का अनुमान है कि वे बाहर से आई हुई 'कुशन', 'हूण' और 'खज़र' जातियो मे से है। हमारे अनुमान से जातिवाचक गूजर शब्द गुर्जर देश में निवास करने से ही परिचय के लिए प्रयोग मे आने लगा और वहाँ के रहनेवाले क्षत्रिय गुर्जर (गूजर), ब्राह्मण गुर्जर, ब्राह्मण (गुजराती ब्राह्मण, गूर्जर गोड), गुर्जर महाजन बनिया कहलाने लगे ।

बडगूजरो को कर्नल टॉड ने सूर्यवशी बतलाते हुए रामचन्द्र के पुत्र लव के वशधर होने का उल्लेख किया है। लव की राजधानी लाहोर होना और उसके नाम से लाहोर बसाये जाने का उल्लेख मिलता है । अतएव बड़गूजर लव के वशधर हो तो मूल मे पजाब के निवासी होना चाहिये। ये लोग बडगूजर कैसे कहलाये, इसका स्पष्टीकरण नही हुआ है। यदि गूर्जरो से इनका सबन्ध हो तो गूजर ही कहलाना चाहिये । जो हो, यह भी भारत का प्राचीन क्षत्रिय वश है, ऐसा जान पडता है । श्री. ओझाजी ने इनको गूर्जर वशी मथनदेव के वशधर बतलाये है, जो सभव भी है। मूल मे ये गूर्जर कहलाते हो और पीछे से किसी कारणवश 'बड' शब्द को मिलाकर उन्होने अपने को 'बड़गूजर' बनाया हो । वि० स० की पद्रह्वी शताब्दी और सौलहवी

गुर्जरो (गूजरों) क साथ इस समय राजपूतों का शादी व्यवहार नहीं है; परन्तु बडगूजरो (गूजरो में बड़े-बड़े गूजर) के साथ है और जयपुर के राजाओ की कितनी एक रानियाँ इस वंश की थीं। ग्वालियर के तंवर राजा मानसिंह की गूजरी राणी के नाम पर उसने गूजरी, बहुल-गूजरी, माल गूजरी और मंगल-गूजरी नामकी चार रागनियाँ बनाई, ऐसा जनरल कनिंग्हाम का कथन है।

१०–चित्तौड़ के किले पर मालवा के परमारों का अधिकार

मेवाड़ और मालवा के शिला-लेखों से यह नही पाया जाता कि मालवे के परमार राजाओ में से किसी ने मेवाड पर चढ़ाई की अथवा चित्तौड़ का किला उनके अधिकार में रहा, परन्तु अन्य साधनों से ऐसा होना सिद्ध है। बीजापुर (जोधपुर राज्य के गोडवाड़ इलाके में) से मिले हुए हस्तिकुडी (हथुंडी, जोधपुर राज्य) के राष्ट्रकूट राजा धवल और उसके पुत्र बाल-प्रसाद के समय के वि० स० १०५३ (ई० सं० ६६७) माघ शुक्ल १३ के शिलालेख से पाया जाता है कि मुञ्ज ने मेदपाट के मदरूपी आधाट (आहाड़)[1] को तोडा उस समय धवल ने मेवाड की सेना को शरण दी थी।[2] इससे निश्चित है कि मालवे के परमार राजा मुञ्ज ने मेवाड की राजधानी आघाटपुर को नष्ट किया था। यह चढ़ाई मेवाड के किस राजा के समय में हुई इसका उल्लेख कही नहीं मिलता, परन्तु राजा शक्तिकुमार के समय यह चढ़ाई हुई होगी क्योंकि वह मुज का समकालीन था।[3] सभव है कि उस समय चित्तौड़ का सुप्रसिद्ध किला भी मुज के हाथ

1 उदयपुर से अनुमान दो मील पूर्व में।

2 एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द १०, पृ० १२–२१

3 देखो मेरा राजपूताने का इतिहास (प्रथम सस्करण), जिल्द १। पृ० ४३५।

शताब्दी तक अलवर के इलाके मे इनका अधिकार था, जिसको मेवात-प्रदेश कहते है। मुगल दर्बार मे भी सम्राट् जहागीर के वर्णन मे अनिरायसिह दलन का उल्लेख आता है, जो मसबदारों की श्रेणी में था। बडगूजरो के सबन्ध राजपूतो में हुए है, जो आश्चर्य की बात नही है।

में चला गया हो । यदि ऐसा हुआ हो तो चित्तौड़ के किले पर मालवा के परमारो का कोई स्मारक अवश्य मिलना चाहिए।

मुंज के छोटे भाई सिंधुराज के पुत्र भोजदेव के चित्तौड़ के गढ़ में रहने और वहाँ पर त्रिभुवननारायण नामक विशाल शिव-मंदिर बनवाने के उल्लेख मिलते है । —

उदयपुर (मेवाड़) राज्य के चीरवा नामक गाँव (एकलिंगजी से तीन मील दक्षिण में) के नये बने हुए विष्णु के मदिर की दीवार में, वहीं के किसी प्राचीन मन्दिर की एक प्रशस्ति लगी हुई है, जो वि० स० १३३० कार्तिक सुदि १ (ई० स० १२७३ ता० १३ अक्टोबर) शुक्रवार की मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय की है । जिस मूल मन्दिर की यह प्रशस्ति थी, वह मेवाड़ के राजाओ की नियत किये हुए नागहृद (नागदा, मेवाड़ की पुरानी राजधानी, जो एकलिंगजी के निकट है) के तलारक्षो (नगर के रक्षक, कोतवालो) के पूर्वज ने बनवाया था । उसमें तलारक्ष उद्धरण के वंश का पूर्ण परिचय देने के अतिरिक्त उसके वशजो ने जो लड़ाइयाँ लड़ी, या जो राजकीय सेवाएँ की, उनका भी उल्लेख है। उसमें चित्तौड़ के तलारक्ष मदन के विषय मे लिखा है—"रत्न का छोटा भाई निष्पापी मदन राजा समरसिंह की कृपा से चित्तौड में वशपरम्परागत तलारता पाकर, श्री भोज-राज (राजा भोज) के बनवाये हुए त्रिभुवननारायण नामक मन्दिर में अपने कल्याण की इच्छा से सदाशिव की पूजा किया करता था।"[4]

चित्तौड़ के किले के रामपोल दरवाजे के बाहर के चबूतरे पर मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय का वि० स० १३५८ का एक शिलालेख बिगड़ी हुई दशा में मुझे मिला। उससे पाया जाता है कि महाराजधिराज श्री समरसिंह के राज्य-समय-प्रतिहार (पडिहार) वंशी महारावत राजश्री ‥ ...... राज (राजपुत्र) माता के बेटे राजा धारसिंह ने श्री भोज-स्वामी देवजगती (भोजस्वामी नामक मन्दिर या राजा भोज के बनवाये

---

4 रत्नानुजोस्ति रुचिराचारप्रख्यातधीरसुविचार ।
मदन· प्रसन्नवदन सतत कृतदुष्टजनकदनः ।।२७।।
श्री चित्रकूटदुर्गे तलारता यः पितृक्रमायताँ।
श्रीसमरसिहराजप्रसादत प्राय निपाप ।।३०।।
श्रीभोजराजरचितत्रिभुवननारायणाख्यदेवगृहे ।
यो विरचयति स्म सदाशिवपरिचर्या स्व शिवलुप्सुः ।।३१।।
(चीरवा का शिलालेख)

हुए देव-मन्दिर के अहाते में) में प्रशस्ति पट्टिका सहित ······ बनवाया[5]।

ऊपर के दोनो शिलालेखो से पाया जाता है कि चित्तौड के किले पर भोज नाम के किसी राजा ने एक शिवमन्दिर बनवाया था, जिसको पहले शिलालेख में त्रिभुवननारायण का और दूसरे में भोजस्वामी का मन्दिर कहते हैं और वह मन्दिर मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय विद्यमान था। अब यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि चित्तौड़ पर के उक्त मन्दिर को बनवाने वाला भोजदेव (राजा भोज) कौन था?

मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा बापा (कालभोज) ने चित्तौड़ का किला मोरियो (मौर्य वंशियो) से लिया। उसके पीछे उस वंश में भोज नाम का कोई राजा हुआ ही नही। मेवाड के पड़ोसियो अर्थात् सांभर और अजमेर के चौहानो, आबू के परमारों और गुजरात के चौलुक्यो में भी भोज नाम का कोई राजा नही हुआ। मेवाड के निकट के पड़ोसी मालवा के परमारों में भोजदेव नाम के प्रसिद्ध राजा का होना पाया जाता है, जैसा हमने इस लेख के आरम्भ में बतलाया है। सम्भव है मुञ्ज ने आहाड़ को तोड़ने पर चित्तौढ़ का किला और उसके आस-पास का मालवे से मिला हुआ प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया हो, परन्तु इससे भी यह निश्चय नहीं होता कि चित्तौड़ के त्रिभुवननारायण के मन्दिर या भोज स्वामीजगती का बनाने-वाला उपर्युक्त मुञ्ज के छोटे भाई सिंधुराज का पुत्र प्रसिद्ध परमार भोज ही था। इसके निर्णय के लिये और प्रमाण अपेक्षित हैं, परन्तु वे भी मिल जाते हैं।

वि० सं० १०८८ में पोरवाड़ महाजन विमल (विमलशाह) ने आबू पर के देलवाड़ा गांव में करोड़ो रुपयों के व्यय से आदिनाथ का जैन मन्दिर बनवाया। उसका जीर्णोद्धार वि० स० १३०८ ज्येष्ठ सुदि ९ को हुआ। तत्-सम्बन्धी प्रशस्ति में लिखा है कि चन्द्रावतीपुरी का राजा धन्धु (परमार) वीरों का अग्रणी था। जब उसने राजा भीमदेव की सेवा स्वीकार न की तब भीमदेव उस पर क्रुद्ध हुआ, जिससे वह (धन्धुक) धारानगरी के स्वामी भोज-देव के पास चला गया। इससे इतना तो निश्चय हुआ कि आबू का परमार राजा धन्धु (धन्धुक) भीमदेव के क्रुद्ध होने पर भोज की सेवा में जा रहा था[6]।

---

5 नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका; भाग १, (नवीन सस्करण) पृ. ४१३ और टि० ५७।

6 तत्कुल कमलमरालः कालः प्रत्यर्थिमडलीकानां।
चन्द्रावतीपुरीश. समजनि वीराग्रणीर्धन्धुः ॥५॥

उसी मन्दिर के बनाये जाने के सम्बन्ध में जिनप्रभसूरि जो मेवाड़ के राजा समरसिंह का समकालीन था, अपने "तीर्थ-कल्प" में लिखता है--"जब गुर्ज्जरेश्वर (भीमदेव) राजानक धांधुक (राजा धन्धुक) पर क्रुद्ध हुआ तब उस (विमलशाह) ने भक्ति से उस (भीमदेव) को प्रसन्न कर उस (धन्धुक) को चित्रकूट (चित्तौड़) से लाकर वि० स० १०८८ में उस (धन्धुक) की आज्ञा लेकर बड़े खर्च से विमलवसती नामक आदि-नाथ का उत्तम मन्दिर बनवाया[7] ।

उपर्युक्त दोनो कथनों को साथ लेने से यही पाया जाता है कि गुजरात के सोलकी राजा भीमदेव से बिगाड़ हो जाने पर आबू का परमार राजा धन्धुक मालवे के परमार राजा भोज के चित्तौर में रहते समय उसके पास चला गया था, जहाँ से विमलशाह उसे वापस लाया। इससे चित्तौड़ में परमार राजा भोज का रहना स्पष्ट है और उसने ही वहाँ त्रिभुवननारायण का मन्दिर बनवाया था ।

उक्त मन्दिर का नाम "त्रिभुवननारायण" क्यों हुआ, यह भी बतलाना आवश्यक है। गोविन्द सूरि के शिष्य वर्द्धमान ने 'गणरत्न महोदधि' नामक ग्रन्थ वि० स० ११९७ (ई० स० ११४०) में बनाया।[8] उक्त ग्रन्थ में श्लोक बद्ध व्याकरण के गण दिये है और गण के प्रत्येक पद की व्याख्या और उदाहरण है। तद्धित प्रकरण के गणो का विवेचन वर्द्धमान ने बहुत अच्छी जगह किया है । अपत्यावाचक तद्धित रूपो के उदाहरण में गणरत्न महो-दधि में श्लोकों के लम्बे अवतरण स्थान-स्थान पर दिये है । उनकी रचना से जान पड़ता है कि वे किसी भट्टि काव्य के सदृश व्याकरण के उदाहरण-मय काव्य के एक ही सर्ग मे से है, क्योंकि छन्द एक ही है । उससे यह

श्रीभीमदेवस्य नृपस्य सेवामलभ्य (¹) मानः किलधुधराज ।
नरेशरोषाच्च ततो मनस्वी धाराधिप भोजनृप प्रपेदे ॥६॥
(आबू का शिलालेख)

7 राजानकश्रीधाधुके क्रुद्ध श्रीगुर्ज्जरेश्वरम् ।
प्रसाद्य भक्तया त चित्रकूटादानीय तद्गिरा ॥३९॥
वैक्रमे वसुवस्वासा १०८८ मितेऽब्दे भूरिरैव्ययात् ।
सत्प्रासादं सविमलवसत्याह्व व्याधापयत् ॥४०॥
(तीर्थकल्प का अर्बुदकल्प)

8 सप्त नवत्यधिकेष्वेकादशसु शतेष्वतीतेषु ।
वर्षाणा विक्रमतो गणरत्न महोदधिर्विहित. ॥
(एगलिंग का सस्करण; पृ० ४८०)

भी जान पडता है कि वह काव्य व्याकरण के उदाहरणो के अतिरिक्त द्वया-श्रम काव्य की शैली का है और मालवा के परमार राजा भोज और उसके पूर्वजो की यश-गाथाओं से परिपूर्ण है। सम्भव है कि भोजराज-रचित प्रसिद्ध व्याकरण के उदाहरण दिखलाने के साथ-साथ परमार वंश और भोज के गौरव का वर्णन करने के लिए भोज के किसी सभा-पडित ने उसकी रचना की हो। उक्त सर्ग का कथा-प्रसग ऐसा जान पडता है कि भोज क्षिप्रा नदी के तट पर महाकाल वन में किसी ऋषि के आश्रम में गया। वहाँ अनेक ऋषियों ने उसका स्वागत किया। किसी [ऋषि] ने यह भी कहा कि [आपके पूर्वज] वैरिसिह आदि में शिव-भक्ति थी, किंतु आपकी तरह शिवका प्रत्यक्ष दर्शन किसी ने नहीं पाया। जहाँ पर राजा की सवारी आश्रम की ओर जा रही थी वहाँ कई ऋषि-पत्नियो के उत्सुकता के साथ दौडकर आने, दर्शन करने आदि का वर्णन भी है। उसमें ऋषि-पत्नियो के प्रसग में जिस राजा को उत्सुकता से वे देखने आयी और देखती है उसको मालवराज, त्रिलोकनारायण और भोज इन तीनो नामो से बतलाया है[9] अर्थात् भोज और त्रिलोकनारायण दोनों एक ही राजा के नाम है, जो मालवे का राजा था। लोक और भुवन पर्याय शब्द है, इसलिए त्रिभुवननारायण और त्रिलोक-नारायण एक ही राजा के सूचक है। अतएव उपर्युक्त भोज स्वामी और त्रिभुवननारायण नाम एक ही मन्दिर के बोधक है और त्रिभुवननारायण भोज का बिरुद (उपनाम) होना चाहिए। मालवा के कई परमार राजाओ के विरुद भी मिलते है, यथा—वरिसिह (दूसरा) का 'वज्रट', हर्ष का 'सीयक' मुंज का 'वाक्पतिराज', 'अमोघवर्ष' और 'उत्पलराज' तथा सिंधुराज का 'नवसा-

---

9 नाडायनि व्रीडजडेह मा। भूश्चारायणि स्फारम् चारुचक्षु विलोक (?)
वाकायति मुञ्जकुञ्जा-न्मौञ्जायनी (?) मालवराज एति ॥
वीक्षस्व तैकायनि शसको्ऽय शाणायनि स्वायुधवाणशाणः।
प्राणायनि प्राणसमस्त्रिलोक्या। स्त्रिलोकनारायणभूमिपालः ॥
(पृ० २७७)

द्वैपायनीतो भव सायकाय का न्युपेहि दौर्गायणि देहि मार्गम्।
त्वरस्व चैत्रायणि चाटकाय न्यौदुम्बरायण्ययमेति भोजः ॥
(पृ० २७८)

मा हौसकायन्यनुधाव हंसान्, मा शाश पायन्यु पशिशपे स्थाः।
मा पैङ्गरायण्यनु पैङ्गलाय, न्युपैहिदृष्टो नृपतिर्व्रजाम. ॥
(पृ० २७९)

हसाँक'। इससे हम कह सकते हैं कि वहाँ रहते समय भोज ने जो शिवमन्दिर बनवाया उसका नाम अपने उपनाम पर "त्रिभुवननारायण" का मन्दिर रखा[10] ।

मालवा के परमारो का अधिकार चित्तौड पर परमार यशोवर्मा तक रहा। यशोवर्मा के पिता नरवर्मा के समय गुजरात के चौलुक्य (सोलकी) राजा जयसिंह (सिद्धराज) ने मालवे पर चढाई की और उसका देश विजय करता हुआ वह आगे बढ़ता गया। नरवर्मा का देहान्त होने पर उसका पुत्र यशोवर्मा जयसिंह से लडता रहा और १२ वर्ष की लडाई के बाद जयसिंह ने यशोवर्मा को जीतकर बहुधा सारा मालवा अपने राज्य में मिला लिया जिससे चित्तौड़ का किला भी सोलकियों के अधिकार में चला गया। जयसिंह के उत्ताराधिकारी कुमारपाल के दो शिलालेख चित्तौड़ से मिले हैं। कुमारपाल का उत्ताराधिकारी अजयपाल अयोग्य था। उसके मारे जाने के बाद गुजरात के राज्य में अव्यवस्था फैली, जिसका लाभ उठाकर मेवाड के राजा जैत्रसिंह ने अपने पैतृक चित्तौड के किले पर फिर अधिकार कर लिया।*

---

10 यह विशाल मन्दिर महाराणा कुम्भकरण के बनवाये हुए चित्तौड के प्रसिद्ध कीर्ति-स्तम्भ से दक्षिण मे है, उसके गर्भगृह मे शिवलिंग स्थापित है और पीछे की दीवार मे अनुमान ६ फुट की ऊँचाई पर शिव की विशाल त्रिमूर्ति बनी हुई है, जिसकी अद्भुत आकृति देखकर ग्रामीण लोग उक्त मन्दिर को अदद्बद्जी (अद्भुतजी) का मन्दिर कहते है। वि० स० १४८५ मे चित्तौड के महाराणा मोकल ने उक्त मन्दिर का जीर्णोद्धार कराकर वहाँ पर एक बडी प्रशस्ति लगवायी, जिससे लोग उसे 'मोकलजी का मन्दिर' भी कहते है।

वीणा मा० प०, इन्दौर

धार-अक, कार्तिक स० १९९८ ई० स० १९४१।

---

* इस निबन्ध मे प्रायः उन्हीं सारी बातो का सक्षेप मे समावेश हुआ है, जो 'परमार राजा भोज उपनाम त्रिभुवननारायण' मे वर्णित हैं। 'परमार राजा भोज उपनाम त्रिभुवननारायण' शीर्षक निबन्ध मे श्री ओझाजी ने मेवाड के गुहिलवंशी राजा सामन्तसिह के गुजरात के सोलंकी राजा अजयपाल को हराने के बाद गुहिलवंशियो का चित्तौड पर अधिकार होने का अनुमान किया है। (देखो आगे का निबन्ध संख्या १२ पृ०, १९४ टिप्पण संख्या २)। सम्भव है, उनका यह अनुमान ठीक हो ।

११–सिन्धुराज की मृत्यु और भोज की राजगद्दी

प्रसिद्ध विद्यानुरागी परमारवंशी राजा भोज के पिता, तथा राजा मुज के छोटे भाई, राजा सिंधुराज का देहान्त कब और कैसे हुआ यह अभी तक अनिश्चित है। परमारो के शिलालेख, दानपत्रो तथा ऐतिहासिक ग्रन्थो में इसका कुछ भी उल्लेख नही मिलता। इसका कारण यही है कि विशेष प्रसंग को छोड़ कर हमारे यहाँ ऐसी घटनाओं का उल्लेख नही किया जाता। राजा युद्ध में जीतता हुआ वीरगति पावे, या असाधारण रीति पर देह छोड़े, तब तो वह बात कही जाती है, परन्तु जब कभी कोई राजा शत्रु के हाथ युद्धक्षेत्र में मारा जाता है, या हार जाता है अथवा क़ैद होकर मरता है तब उसके वंश के इतिहास लेखक तो उस घटना का अपलाप या गोपन करते हैं किंतु विपक्ष के लोग अपने वंश का उत्कर्ष प्रकट करने के लिये, कभी-कभी बहुत बढ़ा-चढाकर, उसका उल्लेख अवश्य करते है।

जयसिंहसूरि अपने कुमारपालचरित में गुजरात के सोलंकी राजा चामुडराय के वृतान्त में लिखता है कि 'चामुडा के वर से प्रबल होकर चामुडराज

इसके बाद ऐसा पाया जाता है कि गुजरात के राजा भीमदेव 'द्वितीय' (भोला भीम) के समय गुजरातियो की सामन्तसिंह पर चढाई हुई, उसमे सामन्तसिंह के हाथ से उसका नवस्थापित बागड राज्य भी शत्रुओ के हाथ मे चला गया और गुजरात की सेना ने आगे बढकर मेवाड पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर आहाड मे झण्डा जा खडा किया, एवम् चित्तौड पीछा गुजरातवालो के हाथ मे आगया। वि० सं० की तैरहवी शताब्दी के पिछले भाग मे गुजरात के राजा भीमदेव के समय पुनः वहाँ विश्रृंखलता फैली, जिसका लाभ उठाकर मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा जैत्र-सिंह ने (जो कुम्भलगढ के शिलालेख के अनुसार सामन्तसिंह का चचेरा भाई था) पराक्रम प्रदर्शित कर गुजरातवालो के अधिकार मे गई हुई बागड तथा मेवाड की भूमि पीछी छीन ली और आहाड से गुजरातियो का दखल उठाकर चित्तौड़ पर भी पुनः गुहिलवंशियो का आधिपत्य स्थिर कर लिया।

(सं० टि०)

ने मदोन्मत्त हाथी के समान सिंधुराज को युद्ध में मारा,[1] । यहाँ पर सिन्धुराज का अर्थ सिन्धु देश का राजा और सिन्धुराज नामक राजा दोनो ही प्रकार से हो सकता है । यह निर्णय करना है कि दोनो में से कौनसा अर्थ ठीक है ।

बड़नगर से मिली हुई सोलंकी राजा कुमारपाल की प्रशस्ति में जो वि० सं० १२०८ (ई० स० ११५१) आश्विन शुदि ५, गुरुवार* की है, लिखा है कि उस (मूलराज) का पुत्र राजाओ का शिरोमणि चामुडराज हुआ, जिसके मस्त हाथियो के मदगन्ध की हवा के सूंघने मात्र से, दूर से ही, मदरहित होकर भागते हुए अपने हाथियो के साथ राजा सिन्धुराज इस तरह से नष्ट हुआ कि उसके यश की गन्ध तक न रही[2] ।'

इस श्लोक में 'नष्ट' के अर्थ 'भागा' और 'मारा गया' दोनो ही हो सकते है, किन्तु कुमारपालचरित से ऊपर उद्धृत् किए गए श्लोक में और इसमें एक ही चामुडराज से एक ही सिन्धुराज के पराजय का वर्णन होने से दोनो को मिलाने से 'मारा गया' अर्थ करना ही ठीक है । यहाँ पर 'सिन्धुराजः' का विशेषण 'क्षोणिपति' होने से 'सिन्धुराज नामक राजा' ही अर्थ कर सकत है, सिन्धुदेश का राजा नही; क्योकि वैसा होने से क्षोणिपतिः (= भूपति) पद 'सिन्धुराजः' के साथ नही आ सकता । इस प्रशस्ति का सम्पादन करते समय डाक्टर बूलर भ्रम में पड़ गये और असली अर्थ को न निकाल सके । उन्होने 'सिन्धुराज' का अर्थ 'सिन्धदेश का राजा' किया[3]

---

1 रेजे चामुण्डराजोऽथ यश्चामुण्डावरोद्‌धुर ।
सिंधुरेंद्रमिवोन्मत्त सिंधुराजम् मृधेऽवधीत् ।।

जयसिहसूरि ने वि० स० १४२२ (ई० स० १३६५) में इस काव्य की रचना की थी ।

(कुमारपालचरित १।३१)

2 सूनुस्तस्य बभूव भूपतिलकश्चामुण्डराजाह्वयो
यद्‌गन्धद्विपदानगन्ध पवनाघ्राणेन दूरादपि ।
विभ्रस्यन्मदगन्धभग्नकरिभि श्रीसिंधुराजस्तथा
नष्ट· क्षोणिपतिर्यथास्य यशसा गन्धोपि निर्नाशित. ।।
(एपिग्राफिआ इन्डिका, जिल्द १, पृ० २९७)

3 एपि० इन्डिका, जि० १, पृ० २९४,३०२ ।

(ईसवी सन् ९९६ से १०१०) तक चौदह वर्ष राज्य किया। अतएव सिन्धुराज की मृत्यु इन्ही सवतो के बीच किसी समय हुई और उसकी मृत्यु का संवत् ही भोज के गद्दी बैठने का सवत् मानना चाहिए। डाक्टर बूलर ने भी भोज के सिंहासनारूढ़ होने का समय ई० सन् १०१० (विक्रम संवत् १०६६–६७ अनुमान किया है[7]।

जैन लेखक मुनि सुन्दरसूरि के शिष्य शुभशील ने अपने भोज-प्रबन्ध में भोज के राज्यसिंहासन पर बैठने का समय विक्रम सवत् १०७८ (ई० स० १०२१) लिखा है—

विक्रमाद् वासरादष्टमुनिव्योमेंदुसंमिते ।
वर्षे मुजपदे भोजभूपो (?) पट्टेनिवेशित ।।[8]

यह कथन सर्वथा मान्य नही क्योकि प्रथम तो भोज, मुज के स्थान पर नही बैठा और वह सिन्धुराज के पीछे गद्दी पर बैठा। दूसरे भोज का एक दानपत्र विक्रम सवत् १०७६ (ई० सन् १०२०) माघ शुक्ल ५ का मिल गया है[9]। इस ताम्रपत्र का उल्लिखित दान 'कोकण[10] विजयपर्वणि' अर्थात् कोकण देश (के राजा) के विजय के वार्षिकोत्सव पर दिया गया है।

भोज ने कोकण विजय करके तैलप के हाथों मुज के मारे जाने का बदला लिया। इस दानपत्र से सिद्ध होता है कि संवत् १०७६ से कम से कम एक वर्ष पहले कोकण विजय हो चुका था, और भोज को राजगद्दी पर बैठे भी कुछ समय बीत चुका था, तभी तो वह इतना प्रबल और पराक्रमी हुआ कि कोकण विजय कर सका, जो राज्यसिंहासन पर बैठने के प्रथम या द्वितीय वर्ष में संभव नहीं।

बल्लाल पडित के भोज-प्रबन्ध के अनुसार हिन्दी की पुस्तको में भी यह प्रवाद प्रचलित हो गया है कि सिन्धुल (सिंधुराज) अपने बालक पुत्र भोज को अपने छोटे भाई मुज को सौंप गया और मुज ने राज्यलोभ से उसे मार डालना चाहा इत्यादि। बल्लाल पडित, या प्रबन्धचिंतामणि के जैन लेखक

7 एपि० इन्डिका, जिल्द १, पृ० २३२।

8 प्रबन्धचिंतामणि, बम्बई की छपी, पृ० ३३९।

9 यह दानपत्र एपि० इन्डिका, जि० ११, पृ० १८१–१८४ मे छपा है और असली ताम्रपत्र राजपूताना म्युजियम, अजमेर मे है।

10 उस समय कोकण पर जयसिंह (दूसरे) सोलकी का राज्य था, जो तैलप का पुत्र था (गौ० ही० ओझा—सोलकियो का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १३३)

और भोजचरित्र के कर्त्ता आदि भोज के इतिहास से ठीक-ठीक परिचित न थे, जिससे उनके ग्रन्थो में अनेक उटपटांग बाते मिलती है । परमारो का वंशक्रम यह है कि वैरिसिह, उसके पीछे उसका पुत्र सीयक (श्रीहर्ष), उसका पुत्र मुज (वाक्पतिराज), उसका छोटा भाई सिन्धुराज, उसके पीछे सिन्धुराज का पुत्र भोज । नागपुर से मिले हुए वि० संवत् ११६१ (ई० सं० ११०४) के शिलालेख में,[11] तथा उदयादित्य के लेख में[12] यही क्रम दिया है । सिन्धुराज के राजत्वकाल में परिमल (पद्मगुप्त) कवि ने 'नवसाहसाकचरित' काव्य लिखा, उसमें सिन्धुराज तक का यही क्रम है । 'तिलकमन्जरी' का कर्त्ता धनपाल कवि मुज, सिन्धुराज और भोज तीनो का समकालीन था और उसने भोज के राज्य में अपना काव्य रचा । उसने भी यही वशानुक्रम बताया है[13] । इन प्रमाणो से इन प्रबन्धो का कथन निर्मूल सिद्ध होता है ।

ना० प्र० प० (त्रै० न०) काशी, भाग १, ई० स० १६७७ ई–१६८० ।

१२–परमार राजा भोज का उपनाम 'त्रिभुवननारायण'

प्राचीनकाल के हिन्दुराजा कभी-कभी एक या अधिक उपनाम (विरुद) धारण किया करते थे । जैसे मालवा के परमार राजा वैरिसिंह (दूसरे) का 'वज्रट', हर्ष का 'सीयक', मुज का 'वाक्पतिराज' और 'अमोघवर्ष' और भोज के पिता सिन्धुराज का 'नवसाहसांक' उपनाम मिलता है, वैसे ही भोज का 'त्रिभुवननारायण' उपनाम होना पाया जाता है ।

उदयपुर (मेवाड) राज्य के चीरवा नामक गांव (एकलिंगजी के मन्दिर से ३ मील दक्षिण में) के नये बने हुए विष्णु के मन्दिर की दीवार में

---

11 एपि० इन्डिका, जि० २, पृ० १८३–८५ ।

12 एपि० इन्डिका, जि० १, पृ० २६५ ।

13 श्रीवैरिसिंह इति दुर्धरसैन्यदन्तिदन्ताग्रभिन्नचतुर्णवकूलभित्ति ।।४०
तत्राभूदवसति श्रियामपरया श्रीहर्ष इत्याख्यया विख्यात ······
श्रीसीयक; ·।।४१।।तस्योदग्रयशाः··सुतः श्रीसिन्धुराजोऽभवत् ।··
यस्य स श्रीमद् वाकपतिराजदेवनृपतिर्वीराग्रणीरग्रज. ।।४२।। ··
तस्याजायत मांसलायतभुजः श्रीभोज इत्यात्मज । प्रीत्या योग्य इति प्रतापवसति ख्यातेन मुन्जाख्यया स्वे वाकपतिराजभूमि-पतिना राज्येऽभिषिक्त स्वयम् ।।४३।।
(तिलकमन्जरी)

वहीं क किसी पुराने मन्दिर का एक शिलालेख लगाया गया है, जो वि० स० १३३० कार्तिक सुदि १ का और मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय का है। मूल में जिस मन्दिर का यह शिलालेख था, वह मेवाड के राजाओं के नियत किए हुए नागहृद (नागदा-मेवाड की पुरानी राजधानी जो एकलिंगजी के निकट है) के तलारक्षो के एक पूर्वज ने बनवाया था। उसमें तलारक्ष[2] उद्धरण के वश का पूरा परिचय देने के अतिरिक्त उसके जिस वशज ने जो-जो लड़ाइयाँ लड़ी, या जो राजकीय सेवाएँ की, उसका भी उल्लेख है। उसमें चितौड के तलारक्ष मदन के विषय में लिखा है कि 'रत्न का छोटा भाई निष्पापी मदन' राजा समरसिंह की कृपा से चितौड़ में वश परम्परागत तलारता पाकर श्री भोजराज (राजा भोज) के बनाए

---

1 शिलालेख—यह शिलालेख मेरी भेजी हुई छाप परसे विएना ओरिएँटल जर्नल मे छप चुका हे (जि० २१, पृ० १४३ आदि)।

2 तलारक्ष—तलारक्ष और तलार दोनो नाम किसी राज कर्मचारी के सूचक है। सस्कृत के कोशो मे यह नाम नही मिलते, परन्तु कभी-कभी प्राचीन शिलालेखो या सस्कृत पुस्तको मे मिलते हैं। चीरवा के शिलालेख मे तलारक्ष उद्धरण के वश का विस्तृत वर्णन मिलता है। उद्धरण के दुष्टो को सजा देने और शिष्टो का रक्षण करने मे समर्थ होने के कारण राजा मथनसिंह ने नागदे का तलारक्ष बनवाया था (श्लोक ९—१०)। राजा पद्मसिंह ने उस (उद्धरण) के पुत्र योगराज को उसके पिता का स्थान दिया था (श्लोक ११—१२)। योगराज का ज्येष्ट पुत्र पमराज, जब सुरत्राण (सुलतान समशुद्दीन अल्तिमश) की सेना ने नागदा का भंग किया, उस समय भूताले के पास लडाई मे लडता हुआ मारा गया (श्लोक १५—१६)। योगराज के दूसरे बेटे महेंद्र का ज्येष्ट पुत्र बाला या बालाक राजा जैत्रसिह के समय कोटडा लेने मे राणक (राणा) त्रिभुवन (त्रिभुवनपाल, गुजरात का राजा) के साथ की लडाई मे मारा गया (श्लोक १७ और १९। राजा जैत्रसिह ने योगराज के चौथे पुत्र क्षेम को चित्रकूट (चित्तौड)की तलारता (तलार का पद)दी(श्लोक १५ और २२)। क्षेम का ज्येष्ट पुत्र रत्न चित्रकूट की तलहट्टिका (तलहटी = किले या पहाडी स्थान के नीचेवाली समान भूमि पर की आबादी) मे शत्रु से लडने मे मारा गया (श्लोक २५ और २६)। रत्न का छोटा भाई मदन श्री जयसल (जैत्रसिह) के लिये उत्थूणक- (अर्थूणा, बॉसवाडा राज्य मे) की लडाई मे

हुए 'त्रिभुवननारायण' नामक देवमन्दिर मे अपने कल्याण की इच्छा से सदाशिव की पूजा किया करता था[1]।

चित्तौड़ के क़िले के रामपोल दरवाजे के बाहर नीम के वृक्षवाले चबूतरे पर पड़ा हुआ मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय का वि० स० १३५८

जैत्रमल्ल से लडा (श्लोक २७ और २८)। राजा समरसिंह ने मदन को चित्रकूट की तलारता दी (श्लोक ३०)। इन सब बातो को देखते हुए यही प्रतीत होता है, उद्धरण के वशज मेवाड के राजाओ की सैनिक सेवा करनेवाले थ। उद्धरण को 'दुष्टो को सजा देने और शिष्टो का रक्षण करने मे समर्थ होने के कारण मथनसिंह ने नागदे का तलारक्ष बनाया'; यह कथन यही सूचित करता है कि 'तलारक्ष' या 'तलार' नाम नगर की रक्षा करनेवाले अधिकारी (कोतवाल) का सूचक होना चाहिये। सोड्ढल-रचित 'उदयसुन्दरी कथा' मे एक राक्षस का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसको घृणा उत्पन्न करनेवाली आकृति के कारण वह नरकरूपी नगर के तलारक्ष के सदृश था (घृणावद्रूपतया तलारमिवनरक नगरस्य—पृ० ७५)। यह कथन भी उक्त नाम के नगर की रक्षा करनेवाले अधिकारी (कोतवाल) का ही सूचक होना बतलाता है। अन्चलगच्छ के माणिक्यसुन्दर सूरि ने वि० स० १४७८ मे 'पृथ्वीचन्द चरित्र' रचा, जिसमे एक जगह बहुत से राजकीय अधिकारियो की नामावली दी है, जिसमे 'तलवर' और 'तलवर्ग नाम भी है (प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह—बडौदा सीरीज़, पृ० ९७)। कही शिलालेखो मे 'तलवर्गिक' भी आता है। सम्भव है कि ये नाम भी तलारक्ष के ही सूचक हो। गुजराती भाषा मे अबतक 'तलाटी' शब्द प्रचलित है जो 'तलारक्ष' या 'तलार' का ही अपभ्रन्श होना चाहिये। अब 'तलाटी' शब्द पटवारी का सूचक है; परन्तु प्राचीन काल मे तलारक्ष या तलार सैनिक अधिकारी का सूचक था। उस समय पुलिस भी सेना का ही अग समझी जाती थी।

1 रत्नानुजोऽस्ति रुचिराचारप्रख्यातधीरसुविचारः।
मदनः प्रसन्नवदन.सतत कृत दुष्टजनकदनः ॥२७॥
श्रीचित्रकूटदुर्गतलारता यः पितृक्रमायता।
श्रीसमरसिंहराजप्रसादतः प्राय निःपाप ॥३०॥
श्रीभोजराजरचितत्रिभुवननारायणाख्य देवगृहे।
योविरचयति स्म सदाशिवपरिचर्यां स्व शिवलिप्सुः ॥३१॥
(चीरवा का शिलालेख)

माघ सुदि १० का एक शिलालेख गत वर्ष मुझे मिला। उसकी दाहिनी ओर का कुछ अश नष्ट हो जाने से प्रत्येक पक्ति के अन्त के कही एक, कहीं दो अक्षर जाते रहे हैं और बीच के कुछ अक्षर भी कही-कही बिगड गए हैं। तिस पर भी उसका सवत् बच गया है और उससे पाया जाता है कि 'महा-राजाधिराज श्री समरसिंह देव के राज्य समय प्रतिहार (पडिहार) वशी महारावत राज श्री·· राज० माता के बेटे राज० (राजपुत्र) धारसिंह ने श्री भोजस्वामी देवजगती[1] (भोजस्वामी' नामक या राजा भोज के बनवाये हुए देव मन्दिर) में प्रशस्ति प्रट्टिका सहित·· बनवाया[2]।'

ऊपर के दोनो शिलालेखो से पाया जाता है कि चित्तौड के किले पर भोज नामक किसी राजा ने एक देवमन्दिर बनाया था, जिसको पहले शिलालेख में 'त्रिभुवननारायण' का और दूसरे में 'भोजस्वामी' का मन्दिर कहा है और वह मन्दिर मेवाड के राजा समरसिंह के समय विद्यमान था।

अब यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि चित्तौड के किले पर उक्त मन्दिर को बनवाने वाला श्री भोजदेव (राजा भोज) कौन था। मेवाड के गुहिलवंशी राजा बापा (कालभोज) ने चित्तौड़ का किला मौरियो (मोर-वशियो) से लिया। उसके पीछे उस वंश में तो भोज नाम का कोई राजा ही नही हुआ। पिछले समय में मेवाड़ वालों के पड़ोसी राजा साभर, अजमेर और नाड़ोल के चौहान, आबू और मालवा के परमार, तथा गुजरात के चौलुक्य (सोलंकी) थे, जिसके पूर्व गुर्जर देश[3] तथा कन्नौज के प्रतिहार (पड़िहार) थे। इन पडोसी राजवशों में से मालवा के परमार और प्रतिहारो में ही भोज या भोजदेव नामक राजा का होना पाया जाता है। प्रतिहारवशी किसी राजा के चित्तौड पर रहने या मेवाड़ पर चढ़ाई करने का अब तक कोई उल्लेख नही मिला, परन्तु बीजापुर (जोधपुर राज्य में) से मिले हुए हस्तिकुंडी (हथूँडी) के राष्ट्रकूट (राठौड़) राजा धवल और उसके पुत्र बालप्रसाद के समय के वि० सं० १०५३ माघ सुदी

1 जगती = मन्दिर, देवालय; या देवालय का हाता (विख्यातो देवम् पितु नाम्ना महेश्वरम। श्री सोमनाथदेवस्य जगत्यापुण्य वृद्धये।। मागरोल का वि० स० १२०२ का शिलालेख, भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १५८)

2 नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० ४१३ और टि० ५७।

3 ना० प्र० पत्रिका, भाग २, पृ ३४१।

१३ के शिलालेख से पाया जाता है कि 'मुजराज (मालवे के परमार राजा मुज) ने मेदपाट (मेवाड़) के मदरूपी आघाट (आहाड़ मेवाड़ की पुरानी राजधानी) को तोडा', उस समय धवल ने मेवाड़ की सेना की रक्षा की थी[1]। इससे संभव है कि मुज ने मेवाड पर चढ़ाई कर आहाड को तोड़ने पर चित्तौड़ का किला और उसके आस-पास का मालवे से मिला हुआ प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया हो।

पोरवाड़ महाजन विमलशाह के बनवाए हुए आबू पर के देलवाड़ा गाँव के प्रसिद्ध जैन मन्दिर (आदिनाथ) विमलबस ही के जीर्णोद्धार के वि० सं० १३७८ ज्येष्ठ सुदी ६ के शिलालेख मे उक्त मन्दिर के बनने के विषय में लिखा है कि 'चन्द्रावती पुरी का राजा धधु (धंधुक) वीरो का अग्रणी था। जब उसने राजा भीमदेव की सेवा स्वीकार न की, तब राजा (भीमदेव) उस पर क्रुद्ध हुआ, जिससे वह मनस्वी (धन्धुक) धारा के राजा भोज के पास चला गया। फिर राजा ने प्राग्वाट (पोरवाड) वंशी मन्त्री विमल को अर्बुद (आबू) का दण्डपति (सेनापति, हाकिम) बनाया। उसने वि० सं० १०८८ में आबू के शिखर पर आदिनाथ का मन्दिर बनवाया[2]।'

---

1 भंक्त्वाघाटम धटाभि प्रकटमिवमिदम् मेदपाटेभटाना
जन्ये राजन्यजन्येजनयति जनताज (!) रणमुजराजे ॥
श्री' 'माणे प्रणष्टे हरिण इव भिया गुर्ज्जरेशेनिनष्टे ।
तत्सैन्याना स(श)रण्यो हरिरिव शरणे यः सुराणा व(ब)भूव ॥१०॥
(एपि० इडिका, जि० १०, पृ० १२–१३)

मुज की मेवाड पर चढाई का वहाँ के राजा शक्तिकुमार के समय मे होना अनुमान किया जा सकना है। यदि मूल शब्द मे त्रुटित अक्षर 'खु' हो तो खुमाण के वशज से अभिप्राय है। यह प्रचलित रीति है, चारण लोग मेवाड़के महाराणाओ को 'खुमाणा' अर्थात् खुमाण के गोत्रज कहकर सम्बोधन करते है।

2 तत्कुल कमलमराल. कालः प्रत्यर्थि मण्डलीकाना ।
चन्द्रावती पुरीशः समजनि वीराग्रणीर्धंधु ॥५॥
श्री भीमदेवस्य नृपस्य सेवामलभ्य(!)मान किल धुन्धुराजः ।
नरेश रोषाश्च ततोमनस्वी धाराधिपम् भोजनृप प्रवेदे ॥६॥

उसी मन्दिर के बनवाए जाने के सम्बन्ध में जिन प्रभसूरि, जो मेवाड के राजा समरसिंह का समकालीन था, अपने 'तीर्थ कल्प' में लिखता है कि 'जब गुर्जरेश्वर (भीमदेव) राजानक धांधुक (राजा धन्धुक) पर क्रुद्ध हुआ, तब उस (विमलशाह) ने भक्ति से उस (भीमदेव) को प्रसन्न करके उस (धन्धुक) को चित्रकूट (चित्तौड़) से लाकर वि० सं० १०८८ में उस (धन्धुक) की आज्ञा लेकर बडे खर्च से विमलवसती नामक उत्तम मन्दिर बनवाया।'

इन दोनो कथनों को साथ लेने से यही पाया जाता है कि गुजरात के सोलकी (चौलुक्य) राजा भीमदेव से बिगाड हो जाने पर आबू का परमार राजा धन्धुक मालवा के परमार राजा भोज के पास चला गया, जो चित्तौड़ में रहता था। विमलशाह ने धंधुक को समझाया और चित्तौड़ से लाकर उसे भीमदेव की सेवा स्वीकार कराई। उसके बाद उसने आबू पर आदिनाथ का मन्दिर बनवाया। इससे स्पष्ट है कि चित्तौड़ में रहने और वहाँ पर मन्दिर बनाने वाला भोज मालवे का राजा ही था।

प्राग्वाटवंशाभरणबभूव रत्नप्रधानम् विमलाभिधान''''।।७।।
तपश्च भीमेन नराधिपेन प्रताप वह्नि विमलो महामति ।
कृतोर्बुदे दडपति सना प्रियो प्रियवदो नन्दतु जैनशासने ।।८।।
श्रीविक्रमादित्यनृपाद्यतीतेऽष्टाशीतियाते शरदां सहस्त्रे ।
श्री आदिदेवम् शिखरेर्बुदस्य निवेसि(शि)त श्री विमलेन वन्दे ।।१२।।

(आबू का शिलालेख—अप्रकाशित)

राजानकश्रीधाधुके क्रुद्ध श्रीगुर्जरेश्वरम् ।
प्रसाद्य भक्तया त चित्रकूटादानीयतद्गिरा ।।३९।।
वैक्रमे वसुवस्वाशा १०८८ मितेऽब्दे भूरिरैव्ययात् ।
सत्प्रसादं सविमलवसत्याह्व व्याधापयत् ।।४०।।

(तीर्थकल्प का अर्बुदकल्प)

2 भोज के पीछे चित्तौड पर मालवा के परमारो का अधिकार कब तक रहा और कैसे उठा, इस विषय मे कुछ भी लिखा हुआ नही मिलता। परन्तु गुजरात के राजा सोलकी राजा कुमारपाल के दो शिलालेख चित्तौड से मिले हैं। जिनमे एक वि० स० १२०७ का (एपि० इडि०, जि० २, पृ० ४२२–२४) और दूसरा जो बडा है, बिना संवत का (अप्रकाशित) है। गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिह के किसी पूर्वज ने या उसने

यह कहा जा चुका है कि 'भोजस्वामी जगती' का अर्थ भोजस्वामी नामक देव मन्दिर व उसके हाते की भूमि है। यह भी आ गया है कि 'भोजदेव-कारितदेवगृह' का नाम 'त्रिभुवननारायणाख्य' था। स्थापित देवता का नाम 'भोजस्वामी' क्यों पड़ा ? आराधक जिस देवता की प्रतिष्ठा करता है उसका नाम अपने नाम पर रखने की चाल है। महाराणाकुंभा के बनवाए हुए चित्तौड़, कुंभलगढ़ और आबू पर के देवालयो के नाम 'कुंभस्वामी' है। आमेर के कुंवर जगतसिंह का बनवाया हुआ मन्दिर 'जगतशिरोमणि' का महाराज प्रतापसिंह का स्थापित शिवलिंग 'प्रतापेश्वर' गुलेर की राणी कल्याणदेई की प्रतिष्ठापित विष्णुमूर्ति 'कल्याणराय' कहलाते है। ऐसे उदाहरण कई मिलते हैं। इसलिए भोजस्वामीभोज की प्रतिष्ठापित देवमूर्ति। उसी भोजस्वामी का नाम त्रिभुवननारायणाख्य देवगृह क्यो हुआ ? आगे बतलाया जायगा कि भोज परम माहेश्वर था और वह मन्दिर नारायण का नही, शिव का है। तलारक्ष मदन के विषय में यह कहना कि त्रिभुवननारायणाख्य देवगृह में वह शिव पूजा करता था, इसी बात को स्पष्ट करता है। भोजस्वामी के मन्दिर की 'आख्या' 'त्रिभुवननारायण' तभी हो सकती है, जबकि भोज का विरुद त्रिभुवननारायण किसी और स्वन्तत्र प्रमाण से सिद्ध हो।

अथवा कुमारपाल ने मेवाड पर चढाई की हो, या लडकर चित्तौड लिया हो, ऐसा कही भी उल्लेख नही मिलता। अतएव अनुमान होता है कि सिद्धराज जयसिह ने बारह वर्ष तक मालवे के राजा नरवर्मा और उसके पुत्र यशोवर्मा से लडकर मालवा अपने राज्य मे मिलाया। उस समय मालवे के अधीन का चित्तौड का किला भी गुजरात के राजाओ के अधीन हुआ होगा। यही कारण कुमारपाल के शिलालेखो के चित्तौड मे मिलने का भी होना चाहिये। वि० स० १२३० मे कुमारपाल के मरने पर उसके बडे भाई महीपाल का पुत्र अजयपाल गुजरात का स्वामी हुआ। उस अत्याचारी और निर्बुद्धि राजा के समय मे या उसके मारे जाने पर मालवा के परमारो ने मालवे पर फिर अधिकार कर लिया। मेवाड के राजा सामतसिह ने अजयपाल को लडाई मे घायल कर भगाया और वि० स० १२३३ में अजयपाल अपने एक द्वारपाल के हाथ से मारा गया। इन घटनाओ से पाया जाना है कि चित्तौड का किला मुज के समय से लगाकर यशोवर्मा के सिद्धराज जयसिह के हाथ कैद होने तक अर्थात् लगभग १५० वर्ष मालवा के परमारो के अधिकार मे रहा। इसके पीछे वह गुजरात के सोलकी राजा सिद्धराज जयसिह और कुमारपाल के

वसा स्वतन्त्र प्रमाण है, गोविन्दसूरि के शिष्य वर्द्धमान ने 'गणरत्नमहोदधि' नामक ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० ११९७ (=ई० स० ११४०) में हुई[1]। वर्द्धमान सिद्धराज जयसिंह के आश्रित रहा हो[2]। आश्चर्य है न हेमचन्द्र उसका उल्लेख करता है, न वह हेमचन्द्र का[3]।

गणरत्न महोदधि में व्याकरण के गण श्लोकबद्ध किये गये हैं और फिर गण के प्रत्येक पद की व्याख्या और उदाहरण है। वर्द्धमान ने कई वैयाकरणों के मतों का उल्लेख किया है। उदाहरणो में कई कवियो की रचना

अधिकार मे आया। सम्भव है कि मेवाड के राजा सामन्तसिंह के अजयपाल को हराने पर यह किला फिर गुहिलवशियो के अधीन हुआ हो।

1 सप्तनवत्यधिकेष्वेकादशसु शतेष्वतीतेषु।
वर्षाणा विक्रमतो गणरत्नमहोदधिर्विहित ॥
(एगलिग का सस्करण, पृ० ४८०)

2 ग्रन्थ के आरम्भ मे कहा है कि अपने शिष्यो की प्रार्थना से हम गणरत्न महोदधि की रचना करते है (स्वशिष्य' प्रार्थिता कुर्मो गणरत्नमहोदधिम्) और इसकी व्याख्या मे 'स्वशिष्य' को यो खोला है कि 'कुमारपाल–हरिपाल, मुनिचन्द्र, प्रभृति'। सम्भव है कि यह कुमारपाल ही आगे चलकर 'परमार्हत कुमारपाल' सिद्धराज जयसिह का उत्तराधिकारी हो।

गणरत्न महोदधि मे कई श्लोक या श्लोक खण्ड सिद्धराज की प्रशसा के है, जिनसे जान पडता है कि वर्द्धमान ने सिद्धराजवर्णन भी लिखा था। इनमे कई जगह मम कई जगह 'मम सिद्धराज वर्णने तथा कही कुछ भी उल्लेख नही है। वे यहाँ उदधृत किये जाते है—

(१) मेघो नकिवर्षति सिद्धराज। (पृ० १९)

(२) निःसीमाश्चर्यधाम त्रिभुवनविदितं पत्तन यत् त्वदीय
तन्मध्ये वृद्धिमीयु: फल भरनमिता शाखिनश्चूतमुख्या:।
नैतच्चित्रं विचित्राद्विहितकृतयुग त्वत्प्रभावात् क्षितिश.।
प्रादु षन्ति प्रभूता यदि सुरतरवश्चित्रमेतद्बुधानाम् ॥
(ममैव, पृ० १३९)

(३) मतिमता मधुर कवितामृतम् ददति मन्त्रिललामबलाहके।
विदधति निखिलार्थविवेचनम जयति कल्पलता चिरदीधिति: ॥
(ममैव, पृ० १८२)

नाम से और कितनो की बिना नाम के उद्धृत की है, इससे यह ग्रन्थ बड़े ही महत्त्व का है।

(४) दूरादपि रिपुलक्ष्यो मनीषितम् यन्त्रयन्ति सावेगा ।
अब्धिमिवेतग्भूभृन्निरुद्धगतयोऽपि कूलिन्य ।। (ममैव, पृ० १८३)

(५) उद्यत्तीव्रानङ्गनाराचविद्धा स्वप्राणेभ्यो वल्लभम् त्वामदृष्टवा ।
वेगादेषा चक्रवाकी बराकी तीरात्तीरे प्रातरेव प्रयाति ।।
(ममैव क्रिया गुप्तके पृ० १९०)

(६) प्रत्युप्तमुक्ताफलपद्मरागप्रस्पर्धिभिस्तोषितविश्वलोकै ।
यशोनुरागैस्त्व सिद्धनाथ चक्रे जगत्कार्किकलौहितीकम् ।।
(ममैव सिद्धराजवर्णने, पृ० २३५)

(७) जाते यस्य प्रयाणे तुग्गखुरपुटोत्खाततरेणुप्रपचे
तीव्र ध्वान्तायमाने प्रसरति बहले सर्वतोदिक्कमस्मिन् ।।
भास्वच्चन्द्रार्कबिम्बग्रहगणरहितम् व्योम विक्ष्य प्रमुग्धा
सान्ध्यकर्मारभन्ते शिशुमुनिवटवो जातसन्ध्याभिशङ्का ।।
(ममैव सिद्धराजवर्णने, पृ० ३७२)

(८) नवे यौवनिकोद्भेदे यस्य न स्खलितम् मन ।
वृहितम् नापि सिद्धेशप्रसादेन मनीपिण ।। (ममैव, पृ० ४३५)

वर्द्धमान ने अपने समसामयिक पण्डित सागरचन्द्र के नाम से भी कुछ श्लोक उद्धृत किये है । उसने भी सिद्धराज जयसिंह के वर्णन मे कोई काव्य लिखा था, ऐसा पाया जाता है—

(१) मुष्णातु कल्मषमलानि मनोऽपकूल-
खेलन्मरालमिथुनात्तपनात्मजेव ।। (सागरचन्द्रस्य, पृ० १०६)

(२) कटक कटकान्यस्य दलया मास निर्दयम् ।
स हि न क्षमते किंचिद्विन्दुना प्यात्मनोऽधिकम् ।।
(सागरचन्द्रस्य, पृ० ११५)

(३) द्रव्याश्रया श्रीजयसिंहदेव गुणा कणादेन महर्षिणोक्ताः ।
त्वया पुन पण्डितदानशौण्ड गुणाश्रयम् द्रव्यमपि व्यधायि ।।
(पण्डित श्रीसागरचन्द्रस्य, पृ० १४४)

अकल्पितप्राणसमासमागमा मलीमसाङ्गा धृतभैक्षवृत्तय. ।
निर्ग्रन्थता त्वत्परिपन्थिनोगता जगत्पते कित्वजिनावलम्बिन् ।।
(श्री सागरचन्द्रस्य, पृ० ३०४)

3 यो परस्पर उल्लेख न करने का कारण साम्प्रदायिक मतभेद के कारण उपेक्षा हो सकती है, या अपने समय के ग्रन्थकारो को प्राचीनो की तरह प्रामाणिक न मानना हो सकता है ।

तद्धित प्रकरण के गणों का विवेचन वर्द्धमान ने बहुत अच्छी तरह किया है। उसकी यह प्रोढोक्ति कि 'जिन तद्धितसिंहो से वैयाकरण रूपी हाथी भागते फिरते थे, उनके गणो के सिर पर मैंने पैर रख दिया, यद्यपि मैं गव्य (= गौवशी) हू, चमत्कार युक्त भी है', सच्ची भी[1]। अपत्यवाचक तद्धित रूपों के उदारण में गणरत्न महोदधि में कई-कई श्लोको के लम्बे अवतरण स्थान-स्थान पर दिये गये है। उनकी रचना से जान पडता है कि वे किसी भट्टि काव्य के सदृश व्याकरण के उदाहरणमय काव्य के एक ही सर्ग में से है, क्योकि छन्द एक ही है। यह भी जान पड़ता है कि वह व्याकरण के उदाहरणों के अतिरिक्त द्वयाश्रय काव्य की तरह मालवा के परमार राजा भोज के यश का वर्णन करता है। संभव है कि भोजराज रचित प्रसिद्ध व्याकरण के उदाहरण दिखाने के साथ-साथ परमारवश और भोज के गौरव का वर्णन करने के लिये भोज के किसी सभा पडित ने उसकी रचना की हो। यो तो कई फुटकर श्लोक गणरत्न महोदधि में और भी जगह-जगह मिलते है, जिन्हें इस काव्य का मान ले सकते है, किन्तु यह विचार उन एक छन्द के अवतरणों का ही करते है, जो एक ही सर्ग के माने जाने चाहियें। इस सर्ग का कथा प्रसग ऐसा जान पड़ता है कि भोज क्षिप्रा नदी के तट पर[2] महाकाल वन में[3] किसी ऋषि के आश्रम में गया[4]। वहाँ अनेक ऋषियो ने उसका स्वागत

---

1 येभ्यस्तद्धितसिंहेभ्य. शाब्दिकेभै· पलायितम्।
गव्येनापि मया दत्तम् पदम् तद्गणमूर्धसु ॥ (पृ० ४६१)

यहाॅ अपने को 'गव्य' कहकर अपने गुरू गोविन्दसूरि की ओर सकेत किया है।

2 स कौकिलश्यामवनेन कूजतक्रोचेन् सिप्रोपतटेन गच्छन्।
(पृ० २५७)

अथैष वातण्ड्यवतण्ड्यभीकवातण्डवातण्ड्यभिकप्रियाणि।
आश्वायनाश्मायनसेवितानिशुचीनिसिप्रापुलिनान्यगच्छत् ॥
(पृ० २८५)

3 राजन्यमहाकालवनेऽत्र गार्ग्यो वात्स्यात्मजावत्सलबालवैरसम्।
वाज्याज्यसौवाजिबटुप्रियेण विलोक्यतामाश्रममण्डन व ॥
(पृ० २९६)

4 तथेति गौरिपतये प्रणम्य साॅक्रुत्यपत्रीकृतपादप स।
आसक्तीनर्तितमत्तबर्हि मुने पदम् राजमुनिर्जगाम ॥ (पृ० २९७)

किया[1] ओर भोज ने ऋषियो का आदर और उनसे सभाषण। किसी-किसी[2] ऋषि ने यह भी कहा कि आपकी तरह शिव का प्रत्यक्ष दर्शन किसी ने नहीं पाया[3]। जहाँ पर राजा की सवारी आश्रम की ओर जा रही है, वहाँ कई ऋषि पत्नियों के उत्सुकता के साथ दौड कर आने, दर्शन करने आदि का वर्णन भी है। कवि ने ऋषि और स्त्रियो के स्त्रीलिग और पुंलिग अपत्यवाचक तद्धित प्रयोगो की माला गूँथने के लिये यह सब प्रसग बहुत अच्छा कल्पित किया है। अस्तु, ऋषि पत्नियों के प्रसंग में जिस राजा को वे उत्सुकता से देखने आई और देखती है, उसको मालवराज, त्रिलोकनारायण, भूमिपाल और भोज इन तीनो नामो से बतलाया है,[4] अर्थात् भोज और त्रिलोकनारायण दोनो एक ही राजा के नाम है, जो मालवे का राजा था। 'लोक' और 'भुवन' पर्याय शब्द है, इसलिये त्रिभुवन नारायण'

1 वैयाघ्रपद्योपह्वितापार्घ्यः प्राचीनयोग्योदितमङ्गलाशी ।
स तत्र रैभ्यायणपृष्टवार्त पौलस्त्यहाऽत्रेरिव धाम्न्यभासीत् ॥
(पृ० २९७)

2 स काण्ठ्यगौकक्ष्यसमक्षमस्मिन्नागस्त्यकौण्डिन्यकृतातिथेय' ।
सुभाषितान्यादित पार्णवल्क्यो यजूषि सूर्यादिव याज्ञवलक्य ॥
सबार्हदग्न्यायनजामदग्न्य स्थौर्यौकृथ्यतैतिक्ष्यजिघृक्षिताभि ।
कौटिल्यशास्त्रार्णवपारदृश्वा ननन्दगौलन्ध्यमुनीन्द्रवाग्भिः ॥
काष्पर्यैकलव्यायनपैप्पलव्यदाल्भ्यैन्द्रहव्यायनदैवहव्यान ।
राराक्ष्यचाणक्यवदाररक्ष्यमौलुक्यचौलुक्यजुष सिषेवे ॥
(पृ० २९८)

3 दृष्टोडुलोमेषु मयौडुलोमे श्रीवैरसिहादिषु रुद्रभक्ति ।
अपार्थिवा सा त्वयि पार्थिवी या नौल्स्यौदपान्योऽपि न वर्णयन्ति ॥
कस्तारुणस्तालुनबाष्कयौ वा सौबष्कयिर्वा हृदये करोति ।
विलासिनोर्वीपतिना कलौ यद्व्यलोकि लोकेऽत्र मृगाङ्कमौलि ॥
न भारतेनैक्षि न कौरवेण नैन्द्रावसेन न सात्वतेन ।
पाचालमाहानदवैनदैर्नो नौशीनरेणाद्य यथा त्वयेश ॥
(पृ० ३०३)

4 नाडायनि व्रीडजडेह मा भूश्चारायणि स्फारय चारुचक्षु' ।
विलोक(!)वाकायनि मुञ्जकुञ्जान्मौञ्जायनी (!) मालवराजएति ॥
वीक्षस्व तैकायनि शसकोऽयं शाणायनि क्वायुध बाणशाणः ।
प्राणायनि, प्राणसमस्त्रिलोक्यास्त्रिलोकनारायणभूमिपाल' ॥
(पृ० २७७)

और 'त्रिलोकनारायण' दोनो एक ही राजा के सूचक हैं । अतएव ऊपर कहे हुए 'भोजस्वामी' और 'त्रिभुवननारायण' नाम की एक ही मन्दिर के बोधक है ।

जैसे पद्मगुप्त (परिमल) कवि ने भोज के पिता सिन्धुराज के चरित्र ग्रन्थ का नाम उक्त राजा के मुख्य नाम पर 'सिन्धुराज चरित' न रक्खा; किन्तु उसके उपनाम (विरुद, खिताब) 'नवसाहसांक' पद से उक्त पुस्तक का नाम 'नवसाहसाक चरित' दिया, वैसे ही भोज उपनाम 'त्रिभुवन-नारायण' पर से उक्त मन्दिर का नाम रक्खा गया होगा । ऊपर चीरवा के लेख से यह बताया जा चुका है कि चित्तौड़ का तलारक्ष (तलार) मदन त्रिभुवननारायण नामक देवालय में शिवका पूजन किया करता था। अत-एव निश्चित् है कि भोज का बनाया हुआ वह मन्दिर शिव का मन्दिर था । भोज परम शैव था, इसका उल्लेख ऊपर गणरत्न महोदधि के अव-तरणो में किया जा चुका है । नारायण नाम विष्णु का सूचक होने से यह भ्रम होना संभव है कि वह मन्दिर विष्णु का हो, परन्तु उक्त नाम से नारायण शब्द विष्ण का सूचक नही, किन्तु भोज के उपनाम का अंश होने से उसको चीरवा के शिलालेख के अनुसार शिव का मन्दिर मानने मे कोई बाधा उपस्थित नही होती ।

मेरे इस लेख को पढ़ने के बाद कोई इतिहास-प्रेमी अथवा प्राचीन शोधक चित्तौड़ के किले की सैर करने को जावें तो उसको यह जिज्ञासा अवश्य होगी कि प्रसिद्ध विद्यानुरागी राजा भोज का बनाया हुआ 'त्रिभुवन-नारायण' या 'भोज स्वामी' नामक शिवालय अब विद्यमान है या नही, यदि है तो कौनसा और कहाँ है ? इसलिये उक्त मन्दिर का पता लगाने का यत्न किया जाता है ।

अब तो चित्तौड़ के किले या तलैटी के रहने वालो में से कोई भी यह नही जानता कि राजा भोज वहाँ रहा था और उसने वहाँ एक शिवालय भी

द्वैपायनीतो भव सायकायन्युपेहि दौर्गायणि देहि मार्गम् ।
त्वरस्य चैत्रायणि चाटकायन्यौदुम्बरायण्ययमेतिभोज ।।
(पृ० २७८)

मा हासकायन्यनुधाव हसान् मा शाशपायन्युपशिशपे स्था ।
मा पैङ्गरायण्यनु पैङ्गलायन्युपैहि दृष्टो नृपतिर्व्रजामः ।।
(पृ० २७९)

बनाया था । ऐसे ही न वे 'त्रिभुवननारायण' या 'भोजस्वामी' का नाम जानते हैं। इन बातो का पता अब प्राचीन शोध से ही लगा है। राजपूताने में सबसे प्राचीन ओर प्रसिद्ध किला चितौड ही है, जिस पर हिन्दुओ तथा मुसलमानो की अनेक चढाइयाँ हुई । वि० सं० १३६० में देहली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड पर चढाई कर छः मास से कुछ अधिक समय तक लड़ने के बाद वह किला लिया । उसने वही अपने सब से बड़े बेटे ख़िजरखाँ को वलीअहद (युवराज) बनाया और चित्तौड़ के राज्य का शासक भी उसी को नियत किया । वह सात-आठ वर्ष तक वहाँ रहा, जिसके पीछे सुलतान ने वह किला जालोर के सोनगरो (चौहानो) के वशज मालदेव को सौपा । अलाउद्दीन की विजय तथा खिजरखाँ के अधिकार के समय वहाँ के बौद्ध, जैन तथा हिन्दू मन्दिरो को मुसलमानो ने नष्ट कर दिया । भोज ने वह मन्दिर वि० स० १०८८ से कुछ पहले बनाया होगा, क्योकि उसी समय उसका चितौड में रहना ऊपर बतलाया गया है । भोज के समय अथवा उसके पहले के प्राचीन चिन्हो मे चित्तोड़ पर अब ठोस पत्थर के बने हुए बौद्धो के आठ स्तूप[1] तथा हिन्दुओ के दो मन्दिर, जिनका जीर्णोद्धार हुआ है, है । इन दो प्राचोन सुन्दर विशाल और दृढ मन्दिरो में से एक तो सूर्य का[2] है, जो पीछे से उसमें देवी की मूर्ति स्थापित किये जाने के कारण अब कालिकाजी का मन्दिर कहलाता है और दूसरा शिवालय है, जिसको अदबदजी (अद्भुतजी) का मन्दिर और मोकलजी का मन्दिर भी कहते हैं। वह शिवालय गोमुख नामक प्रसिद्ध तीर्थ (जलाशय) के ऊपर के ऊँचे हिस्से

---

1 इन सब स्तूपो के ऊपर शकु की आकृति का अश नष्ट कर दिया गया है । उसके नीचे का मोटा गोलाकृति वाला अश तथा उसके नीचे का चौरस भाग जिस पर वज्र के चिह्न सहित बुद्ध की मूर्तियाँ बनी हुई है, विद्यमान है । ये स्तूप पहले राठौड जयमल की हवेली से पद्मिनी के महलो की ओर जानेवाली सडक की दाहिनी ओर के तालाव मे एक चट्टान पर थे, जहाँ से उठाकर अनुमान बारह वर्ष पहले रियासत ने उनको तोपखाने के मकान की एक ओवरी मे रखवा दिया है। ऐसा करने मे दो के तो टुकडे भी हो गये है ।

2 उस मन्दिर को प्रारम्भ मे सूर्य का मन्दिर मानने का कारण यह है कि उसके सुन्दर और विशाल द्वार पर सूर्य की मूर्ति बनी हुई है और भीतरी परिक्रमा मे तीनो ओर की ताको मे भी सात घोडो सहित सूर्य (सप्राश्व) की प्राचीन मूर्तियाँ विद्यमान है । मुसलमानों के समय में यहाँ की मूर्ति तोड दी गई और मन्दिर अरसे तक बिना मूर्ति

में है और महाराणा कुम्भा (कुम्भकर्ण) के बनाए हुए कीर्तिस्तम्भ के दक्षिण में उससे थोड़ी ही दूरी पर है । यही चित्तौड पर के शिवालयो मे सब से पुराना और सबसे अधिक प्रसिद्ध है । उसमें नीचे (छः सीढ़ी नीचे) तो शिवलिंग और अनुमान छ -सात फुट की ऊँचाई पर पीछे की दीवार मे सटी हुई शिव की विशाल त्रिमूर्ति[1] प्राचीन बनी है । जिसकी अद्भुत आकृति के कारण ही लोग उसको अदबुदजी (अद्भुतजी) का मन्दिर कहते है । वि० स० १४८५ में महाराणा मोकल ने उसका जीर्णोद्धार कराकर अपने नाम की एक बडी प्रशस्ति उसमें लगाई,[2] जिससे लोग उसको मोकलजी का मन्दिर भी कहते है । वह इस समय ही चित्तौड के शिवालयो में सब से अधिक प्रसिद्ध है, ऐसा ही नही, किन्तु देहली पर मुसलमानो का अधिकार होने से पहले भी वैसा ही प्रसिद्ध था, क्योकि गुजरात के राजा कुमारपाल ने वि० सं० १२०७ में अजमेर के चौहान राजा आना (अर्णोराज, आनल्लदेव आनाक) पर चढ़ाई कर उसको हराया । वहाँ से वह चित्तौड़ की शोभा देखने को चला । शालिपुर (सालेरा गाव, चित्तौड से थोड़े ही मील पर) में अपना

के पडा रहा । पीछे से उसमे कालिका की मूर्ति स्थापित की गई जिसको अनुमान १५० वर्ष हुए हे । जब से यह नवीन मूर्ति स्थापित की गई, तब से उसके पुजारी 'गिरि' नामात वाले बाबा (साधू) है । वर्तमान पुजारी भैरूगिरि मूल पुजारी का नवा वशधर है । उक्त मन्दिर का जीर्णोद्धार -(मरम्मत) वि० स० १८६३ में नागेद्रगिरि के चेले दौलतगिरि तथा कुशालगिरि ने करवाया । ऐसा उस मन्दिर के छज्जे के नीचे खुदे हुए लेख से पाया जाता है । उस मन्दिर के बडे चौक मे उन पुजारियो की समाधियाँ बनी रहने से उसका कितना एक अश तो उन्ही से भर गया है । यदि ऐसा ही चलता रहा तो समय पाकर वहाँ पर एक खासा कबरिस्तान बन जायगा और उस अपूर्व प्राचीन मन्दिर और चौक की शोभा बिल्कुल नष्ट हो जायगी ।

1 शिव की त्रिमूर्ति के लिये देखो मेरा लिखा हुआ 'सिरोही राज्य का इतिहास', पृ० ३६–३७ टिप्पण । कर्नल टॉड ने त्रिमूर्ति के तीन मुख पर से उस मन्दिर को ब्रह्मा का और महाराणा कुम्भा द्वारा बनाया हुआ माना है, जो भ्रम ही है (टॉड राजस्थान, जि० ३, पृ० १८०२–१७ आक्सफोर्ड सस्करण) ।

2 एपि० इन्डि०, जिल्द २, पृ० ४१०–२१ ।

शिविर (सेना का पड़ाव) रखकर चित्तौड़ गया। वहाँ पर उसने उक्त त्रिमूर्तिवाले) मन्दिर में शिव की आराधना कर एक गाँव भेट किया और स्मरणार्थ उक्त मन्दिर में एक शिलालेख लगाया, जो अब तक विद्यमान है[1]। इन सब बातो का विचार करते हुए यही अनुमान होता है कि जिस शिवालय में तलारक्ष मदन शिव की पूजा किया करता था। वह उपर्युक्त त्रिमूर्ति वाला मन्दिर ही होना चाहिये। उक्त मन्दिर का सभा मण्डप तथा मुख्य अश, जहाँ शिवलिंग तथा त्रिमूर्ति बनी हुई है, पहले के ही है, जिनके शिल्प की ओर दृष्टि देते हुए उनका भोज के समय का होना मानना पडता है[2] उसके बनने के बाद उसके निकट ही शिव और और विष्णु आदि के भी मन्दिर बने, जो ऐसे दृढ और विशाल न होने से अब टूटी हुई दशा में है। कुमारपाल की मृत्यु के पोछे जब चित्तौड पर गुहिलवशियो का अधिकार फिर हुआ और वहीं मेवाड़ की राजधानी स्थिर हुई, तब से चित्तौड़ के राजाओं की महासती[3] (दाहस्थान) का स्थान भी उसी मन्दिर के निकट नियत हुआ। वि० सं० १३३१ में रावल समरसिंह ने उन सब मन्दिरो तथा महासतियो के इर्द गिर्द एक विशाल द्वार सहित हाता[4] बनवाया और उसके सम्बन्ध की प्रशस्ति[5] दो बडी-बडी शिलाओ पर खुदवा कर द्वार के भीतर दोनों ओर की दीवारो में लगाई, जिनमें से पहली शिला सं० (१३३१) सहित अब तक विद्यमान है। उक्त प्रशस्ति की रचना वेदशर्मा ने की थी। वि० सं० १३४२ में उसी कवि ने उसी राजा की आबू पर के अचलेश्वर के मठ की प्रशस्ति बनाई, जिसमें वह अपनी बनाई हुई पहली प्रशस्ति (चित्तौड़

---

1 एपि० इन्डि०, जिल्द २, पृ० ४२२, २४।

2 कर्नल टॉड के 'राजस्थान' के ऑक्सफोर्ड सस्करण, जिल्द ३, पृ० १८ पर, उसके सम्पादक विलिअम् क्रुक का टिप्पण २।

3 ना० प्र० पत्रिका, भाग १, पृ. १०४।

4 बडी-बडी दो शिलाओं पर खुदी हुई उस प्रशस्ति से यह सम्भव नही प्रतीत होता कि मन्दिरो का हाता, जो अब नष्ट-सा हो गया है, बनाने की यादगार में ऐसी बडी प्रशस्ति लगाई गई हो। सम्भव है कि उक्त हाते के बनवाने के साथ वहाँ कोई मन्दिर भी समरसिह ने बनवाया हो, परन्तु दूसरी शिला के न मिलने से इसका कुछ भी निश्चय नही हो सकता।

5 भावनगर इंस्क्रिप्शन्स, पृ० ७४–७७।

वाली) का भी उल्लेख करता हुआ, उसके स्थान का परिचय इस तरह देता है कि चित्रकूट के रहने वाले नागर जाति के ब्राह्मण उसी वेदशर्मा ने इस (अचश्लेवर के मठ की) प्रशस्ति की रचना की, जिसने कि एकलिंग, त्रिभुवन इस नाम से प्रसिद्ध समाधीश (= शिव) और चक्र स्वामी (= विष्णु) के मन्दिरो के समूह की प्रशस्ति बनाई थी[1]। वेदशर्मा आबू की प्रशस्ति की रचना के पूर्व अपनी बनाई हुई एक ही और प्रशस्ति का उल्लेख करता है। वह चित्तौड़ की वि० सं० १३३१ की प्रशस्ति ही है। चित्तौड़ के उक्त हाते के भीतर दो शिवालय टूटी हुई दशा में मौजूद है, परन्तु उनमें शिलालेख न होने से यह जाना नही जा सकता कि उनमें से कौन सा मन्दिर एकलिंग का था। मेवाड़ के राजाओ के इष्टदेव एकलिंग होने के कारण उसके नाम का मन्दिर चित्तौड़ में भी बनाया गया हो, यह सम्भव है। त्रिभुवन नाम से प्रख्यात समाधीश (त्रिभुवन विदित श्री समाधीश) का मन्दिर ऊपर बतलाया हुआ त्रिमूर्ति वाला[2] शिव मन्दिर ही है। क्योकि उसी मन्दिर में लगी हुई उसी के जीर्णोद्धार की महाराणा मोकल की वि० स० १४८५ की प्रशस्ति में उक्त मन्दिर के नाम का परिचय 'समाधीश[3]' और 'समिद्धेश[4]' दोनों नामो से दिया है और उसी मन्दिर में लगे हुए कुमारपाल के वि० सं० १२०७ के शिलालेख में उसका नाम समिद्धेश्वर[5] मिलता है। आबू की प्रशस्ति का

1 योऽकार्षीदेकलिंगत्रिभुवनविदितश्रीसमाधीशचक्र
स्वामिप्रासादवृन्दे प्रियपटुतनयो वेदशर्म्मा प्रशस्तिम्।
तेनैषापि व्यधायि स्फुट गुण विषदा नागरज्ञातिभाजा
विप्रेणाशेष विद्वज्जनहृदयहरा चित्रकूट स्थितेन ॥६०॥

(आबू पर के अचलेश्वर के मठ की प्रशस्ति–इन्डि० एटि०, जि० १६ पृ०३५)

2 चित्तौड के किले पर त्रिमूर्ति तथा शिवलिंग वाला एक और भी मन्दिर है, जिसको भी लोग अदबुदजी (अद्भुतजी) का मन्दिर कहते है। वह सूरजपोल दरवाजे के निकट है और वि० स० १५४० मे बना था, ऐसा वहाँ के शिलालेख से पाया जाता है।

3 श्रीमत्समाधीशमहेश्वरस्य प्रसादतो० (पक्ति ५३)।

4 समिद्धेश श्रीमानीह वसति गौरी सहचर.।

5 श्रीसमिद्धेश्वरम् देवम् प्रसिद्ध जगती''। (पक्ति २२–२३)।

'त्रिभुवन विदित भी समाधीश' समास वाला पद यद्यपि दो अर्थों में 'त्रिभुवन नाम से प्रसिद्ध समाधीश' (शिव) और त्रिभुवन में प्रसिद्ध समाधीश[1] का सूचक हो सकता है, तो भी उसका 'त्रिभुवन विदित (त्रिभुवन नामक)' अन्श 'त्रिभुवननारायण' नामक भोज के शिवालय की स्मृति दिलाता है, इसलिये उसे "त्रिभुवन इति विदितः" इसी व्यास (विग्रह) का मध्यम पद लोपी समास मानना अधिक उचित जान पड़ता है। चक्र स्वामी (विष्णु) का मन्दिर वहाँ पर कौनसा था, इस विषय का निर्णय नही हो सका, क्योंकि वहाँ कई पुराने मन्दिर टूटे हुए पड़े हैं, परन्तु यह निश्चय है कि वहाँ चक्र स्वामी (विष्णु) का कोई मन्दिर अवश्य था, क्योकि उपर्युक्त महाराणा मोकल की वि० सं० १४८५ की प्रशस्ति के प्रारम्भ में शिव को नमस्कार करने के बाद गजास्य (गणपति), एकलिंग (शिव या उक्त नाम के शिव), गिरिजा (पार्वती) और अच्युत (विष्णु) की आशीर्वादात्मक प्रार्थना की है[2]।

महाराणा कुम्भा (कुम्भकर्ण) की वि० सं० १५१७ की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति मे उसके पिता मोकल के वर्णन में लिखा है कि 'उसने चित्तोड में समाधीश्वर के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। दुर्गा के मन्दिर के आँगन में सर्व धातु का सिंह स्थापित किया और चक्रपाणि (चक्रस्वामी, विष्णु) के मन्दिर में सोने का गरूड़ बनवाया[3]।

ऊपर के सारे कथन का सार यही है कि जिस त्रिमूर्ति वाले शिवालय का जीर्णोद्धार महाराणा मोकल ने कराया, वही राजा भोज का बनाया

---

1 समाधीश, समिद्धेश और समिद्धेश्वर ये तीनों नाम उपर्युक्त शिला-लेखो मे शिव के अर्थ मे प्रयुक्त हुए है।

2 श्लोक १-४ (एपि० इन्डि०, जि० २, पृ० ४१०-११)।

3 नृप· समाधीश्वरसिद्धतेजा· समाधिभाजा परम रहस्यम्।
आराध्य तस्यालयमुद्धार श्रीचित्रकूटे मणितोरणाक ॥२२२॥
य सुधाशुमुकुटप्रियागणे वाहनम् मृगपति मनोरमं।
निर्मितम् सकलधातुभक्ति भि पीठरक्षणविधाविव व्यधात् ॥२२४॥
पक्षिराजमपि चक्रपाणये हेमनिर्मितमसौ दधौ नृप.।
येन नीलजलदच्छविर्विभुश्चँचलायुत इवाधिक बभौ ॥२२५॥

(कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति—अप्रकाशित)

हुआ 'त्रिभुवन नारायण' नामका शिवालय होना चाहिये, जो पीछे से 'भोजस्वामी,' 'समिद्धेश्वर,' 'समाधीश,' 'समाधीश्वर,' 'अद्‌बद्‌जी' और 'मोकलजी का मन्दिर' कहलाया। *

ना० प्र० प० काशी, (त्रै०न०) भाग ३, ई० स० १९२२–२३, वि० सं० १९७९

सम्पादकीय टिप्पण

* मालवे के परमार राजा भोज के विषय मे श्री ओझाजी द्वारा यह अपूर्व खोज हुई है और अपने असाधारण अध्ययन द्वारा उन्होने इस निबन्ध मे यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि परमार राजा भोज चित्तौड मे भी रहा करता था और उसने वहाँ शिवमन्दिर बनवाया। उसका उपनाम 'त्रिभुवननारायण' था, जिससे वह मन्दिर 'भोजस्वामि देव जगती' और 'त्रिभुवननारायण' नामक देव मन्दिर कहलाता था। भोज का उपनाम 'त्रिभुवननारायण' था, इस विषय मे इसके पूर्व तक लोग अज्ञात थे।

हटूदी के राष्ट्रकूट राजा धवल के वि० स० १०५३ (ई० स० ९९६) के शिलालेख से यह स्पष्ट है कि परमार राजा भोज के पिता सिधुराज के ज्येष्ठ भ्राता मुन्ज ने मेवाड के गुहिलवशी नरेशो के सुसमृद्ध नगर आघाटपुर (आहाड) को जो उस समय राजधानी रहना सम्भव है, नाश किया था। इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि मुज ने इस विजय के साथ-साथ मेवाड का बहुत सा भाग अपने अधिकार मे कर लिया हो और चित्तौड भी। मुन्ज के साथ सघर्ष का मेवाड के शिलालेखो मे तो कुछ भी उल्लेख नही है, पर परमारो के शिलालेखो एवम् उनके काव्यो मे तो इनका वर्णन होना चाहिये, किन्तु वहाँ भी कुछ उल्लेख नही मिलता। इधर-उधर जो कुछ भी मिला, श्री ओझाजी ने यह वर्णन किया है। वस्तुत चित्तौड पर भोज ने कोई देवालय बनाया हो तो उसका निर्माण काल वि० स० १०६६–८८ (ई० स० १०१०–३१) तक मानना पडेगा।

परमारो का राज्य भोज की मृत्यु के बाद पतन को प्रारम्भ होता है। परमारो और सोलकियो के बीच आरम्भ से ही वैमनस्य चला आता है। फलस्वरूप गुजरात के सोलंकी राजा जयसिह द्वारा मालवा विजय होकर परमार राज्य ह्रास को प्राप्त होता है। लगभग १२५ वर्ष भोज के चित्तौड पर बनवाये हुए मन्दिर को होते है कि परमार राज्य का परम शत्रु सोलंकी राजा जयसिह (सिद्धराज) का भ्रातृज पुत्र कुमारपाल वि० सं० १२०७ (ई० स० ११५०) मे अजमेर के राजा अर्णोराज चाहमान पर विजय पाकर चित्तौड़ जाता है और वह जिस मन्दिर को श्री ओझाजी

भोज का बतलाते है, उसके दर्शन कर वहाँ ग्राम भेट करता है। कुमारपाल वहाँ अपनी तरफ से प्रशस्ति भी लगवाता है, जो अबतक विद्यमान है और उसमे वह इस देवालय का नाम 'श्रीसमिद्धेश्वरम् देवम् प्रसिद्धम् जगती' होना उल्लेख करता है। वही एक दूसरी प्रशस्ति वि स. १४८५ (ई. स. १४२९) की महाराणा मोकल के समय की लगी हुई है, जिसमे उक्त देवालय का नाम 'समिद्धेश' और 'समाधीश दिया है। महारावल समरसिंह के समय की वि. सं. १३४२ (ई. स १२८५) की आबू की प्रशस्ति तथा महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) के समय की वि. स १५१७ (ई स १४६०) की कुम्भलगढ की प्रशस्ति मे भी इस ही प्रकार के नामोल्लेख हुए है। यह स्पष्ट है कि महाराणा मोकल द्वारा पंद्रहवी शताब्दी के अन्त मे इस शिवालय का जीर्णोद्धार होने से जनसाधारण मे वह 'मोकलजी का मन्दिर कहलाता है और मूर्ति की वैचित्र्यता के कारण उस ही को 'अद्‌बद्‌जी का मन्दिर' भी लोग कहा करते है।

परमारो द्वारा आघाटपुर का पतन तथा चित्तौड पर उनका अधिकार होना एव भोज द्वारा, चित्तौड पर देवालय निर्माण का उल्लेख उनके इतिहास मे नही होने और इस मन्दिर मे लगे हुए शिलालेखो मे 'समिद्धेश', वा 'समाधीश' नाम उल्लिखित होने से इस मन्दिर के भोज द्वारा निर्माण होने के कथन में सन्देह हो सकता है, परन्तु श्री ओझाजी ने अनेक प्रमाणो और प्रबल युक्तियो से यह सिद्ध कर दिया है कि जिसको इस समय 'मोकलजी का मन्दिर' कहते है तथा जो महाराणा कुम्भकर्ण के बनवाये हुए कीर्तिस्तम्भ और गोमुख कुंड के सन्निकट है, वही परमार राजा भोज द्वारा निर्मित 'त्रिभुवननारायण' अथवा 'भोजस्वामि देव जगति' देवालय होना चाहिये। भोज को 'त्रिभुवननारायण' (त्रैलोक्यनारायण) नाम से गणरत्न महोदधि में सम्बोधन किया है, जो उसका उपनाम (विरुद) सूचक है।

समय-समय पर इस शिवालय के जीर्णोद्धार होते रहे है। गुजरात के प्रसिद्ध सोलकी नरेश कुमारपाल के समय की उक्त प्रशस्ति मे इस मन्दिर के दर्शन कर वहाँ एक गाँव भेट करने का उल्लेख है, इससे स्पष्ट है कि वि० सं० १२०७ (ई० स० ११५०) मे जब कुमारपाल चित्तौड आया, तब वहाँ मन्दिर विद्यमान था। इससे उसके पूर्व का ही उक्त मन्दिर होना चाहिये। सम्भव है कि उस (कुमारपाल) ने वहाँ जीर्णोद्धार भी कराया हो। तदनन्तर गुहिलवशी महारावल समरसिंह के

समय इसके आस-पास नवीन मन्दिर बने, तब इसका जीर्णोद्धार होना सम्भव है। दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड का नाश होने पर इस मन्दिर की बडी भारी क्षति हुई, अतएव महाराणा मोकल ने इसका पन्द्रहवी शताब्दी मे जीर्णोद्धार कराकर प्रशस्ति लगवाई। तत-पश्चात् चारसौ वर्ष तक इस देवालय का कोई जीर्णोद्धार नही हुआ। गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह और मुगल सम्राट अकबर द्वारा होनेवाले समय-समय पर चित्तौड पर भयकर आक्रमणो, अनेक तूफानो और बरसातो को सहते-सहते यह मन्दिर भग्नावशेष हो गया था और गिरने मे कुछ भी सन्देह नही था कि बीसवी शताब्दी के अन्त मे परलोकवासी महा-राणा फतहसिहजी का इसके जीर्णोद्धार की तरफ ध्यान आकर्षित हुआ और महाराणा भूपालसिहजी के समय इसका जीर्णोद्धार का कार्य समाप्त होकर वह यात्री-गणो के देखने लायक वस्तु हो गया है।

तक्षण कला—बनावट आदि से इस देवालय का निर्माण काल ग्यारहवी शताब्दी का पाया जाता है। परमारो और सोलकियो के बीच परम शत्रुता रही, अतएव कुमारपाल द्वारा इस मन्दिर के दर्शन कर गाँव भले ही भेट किया जावे, परन्तु भोज की कीर्ति स्थिर न रहे, इस कारण से समिद्धेश्वर नामक नये नाम की सृष्टि हुई हो तो भी आश्चर्य की बात नही है। परमारो और गुहिलवशियो के बीच भी वैमनस्य था, अतएव महारावल समरसिंह के लेख मे भी भोज का चित्तौड मे मन्दिर बनाने का उल्लेख होना असम्भव है, क्योकि उसने कुमारपाल का ही पथ ग्रहण किया। कालान्तर से फिर तो भोज का नाम ही भूल गये और महाराणा मोकल तथा कुम्भकर्ण (कुम्भा) के समय तक इस मन्दिर को बने, लगभग चारसौ वर्ष से ऊपर होगये, अतएव उन्होने परपरागत नामो का ही उल्लेख किया, जैसा कि कुमारपाल तथा समरसिह के शिलालेखो मे था।

वस्तुत श्री ओझाजी ने इस निबन्ध द्वारा परमारों के इतिहास को पुष्ट करने और प्रसिद्ध विद्यानुरागी भोज की कीर्ति को चिरस्थायी बनाने का यत्न किया है। यह उनकी गवेषणा का फल है कि इतिहास के पाठको के सामने अज्ञात् वस्तु प्रकाश मे आई है।

---

१३ अनहिलवाड़े के पहले के गुजरात के सोलंकी ।

(१)

गुजरात में सोलंकियो का स्वतन्त्र और प्रतापी राज्य मूलराज ने अनहिलवाड़े में स्थापित किया, किन्तु उसके पहले भी उक्त प्रान्त के लाट आदि प्रदेशों पर सोलकियों की छोटी-छोटी शाखाओ का अधिकार रहना पाया जाता है । इस लेख में उन्ही शाखाओ का वृत्तान्त लिखा जाता है ।

खेड़ा[1] से एक दानपत्र[2] सोलकी राजा विजयराज का मिला है । इस राजा को 'विजयवर्मराज' भी कहते थे । दानपत्र का आशय यह है कि "सोलंकी वंशी जयसिंहराज का पुत्र बुद्धवर्मा हुआ, जिसके विरुद 'वल्लभ' और 'रणविक्रान्त'[3] थे । उसके पुत्र राजा विजयराज ने [कलचुरि[4]] संवत् ३९४ (वि० स० ७००–ई० स० ६४३) वैशाखशुदि १५ के दिन जंबूसर[5] के ब्राह्मणों को काशाकूल[6] विषय (जिले) के अन्तर्गत संधीयर[7] गाँव के पूर्व का परियर[8] गाँव प्रदान किया, जिस दिन कि उसका निवास

---

1 बम्बई हाते मे उक्त नाम के जिले का मुख्य शहर ।

2 इन्डि० ऐंटि०, जिल्द ७, पृ० २४८–४९ ।

3 युद्ध मे पराक्रम बतलानेवाला ।

4 गुजरात के लाट प्रदेश पर पहले कलचुरियो (हैहयवंशियो) का राज्य रहने से वहाँ पर उनका चलाया हुआ कलचुरि संवत् जारी था, जिससे उनके पीछे वहाँ पर राज्य करनेवाले सोलकी तथा गुर्जर (गूजर)-राजाओं के कितने ही ताम्रपत्रो मे वही संवत् मिलता है ।

5 बम्बई हाते के भडोच जिले मे ।

6 शायद यह तापी नदी के उत्तरी तट के निकट का प्रदेश हो ।

7 बम्बई हाते के सूरत जिले के 'ओरपाड' तअल्लुके मे है, जिसको इस समय संधिएर कहते है ।

8 संधिएर से कुछ मील पूर्व मे है ओर इस समय 'परिया' नाम से प्रसिद्ध है ।

विजयपुर[9] में था ।

इन राजाओं के नाम तथा विरुदो से अनुमान किया जाता है कि वे बादामी के सोलंकियों में से थे, परन्तु उक्त, ताम्रपत्र का जयसिंह बादामी के कौनसे राजा से सम्बन्ध रखता है, यह स्पष्ट न होने से हम उसको बादामी के सोलंकियों के वशवृक्ष में निश्चयपूर्वक स्थान नहीं दे सकते । तथापि समय की ओर दृष्टि देते हुए यह कह सकते हैं कि सभव है वह दक्षिण में सोलकियों के राज्य की स्थापना करने वाले जयसिंह से भिन्न हो । बादामी के सोलकियो का अपने पुत्रादिको को समय-समय पर जागीर देते रहना पाया जाता है और उपर्युक्त ताम्रपत्र बादामी के प्रसिद्ध राजा पुलकेशी दूसरे के समय का है जिसने लाट आदि देश अपने अधीन किये थे[10] तथा जिसके पूर्व मगलीश ने लाट पर राज्य करने वाले कलचुरियो की राज्य लक्ष्मी छीनली थी ।[11] अतएव संभव है कि मंगलीश अथवा पुलकेशी दूसरे ने अपने किसी वंशधर को लाट देश में जागीर दी हो । विजयराज के पीछे उक्त शाखा का कुछ पता नहीं चलता ।

जयसिंहराज
|
बुद्धवर्मा
|
विजयराज
(वि० सं० ७००)

(२)

बादामी के प्रसिद्ध सोलंकी राजा पुलकेशी दूसरे के चौथे पुत्र जयसिंह वर्म्मन् को, जिसे धराश्रय[1] भी कहते थे, लाट देश जागीर में मिला था[2] । उसके तीन पुत्र शीलादित्य, मगलराज और पुलकेशी थे । शीला-

---

9 इस नाम के गुजरात मे कई स्थान है, अतएव इसका ठीक निश्चय नही हो सका ।

10 देखो सोलंकियो का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३७–३८ ।

11 देखो सोलंकियो का इतिहास प्रथम भाग, पृ० ३०–३१ ।

---

1 धराश्रय = पृथ्वी का आश्रय ।

2 देखो सोलकियो का इतिहास, भाग १, पृ० ५१ ।

दित्य ने श्रयाश्रय[3] विरुद धारण किया था। उसके दो दानपत्र मिले हैं जिनमें से एक[4] कलचुरि संवत् ४२१ (वि० सं० ७२७–ई० स० ६७०) माघ शु० १३ का नवसारी से दिया हुआ और दूसरा[5] कलचुरि स० ४४३ (वि० सं० ७४९=ई० स० ६९२) श्रावण शु० १५ का कार्मणेय[6] के पास के कुसुमेश्वर के स्कधावार[7] से दिया हुआ है। इन दोनो में उसको युवराज लिखा है, जिससे निश्चित है कि उस समय तक जयसिंह वर्मा विद्यमान था, और शीलादित्य अपने पिता के सामने प्रान्तों का शासक रहा हो। मंगलराज के राज्य-समय का एक दानपत्र[8] शक सवत् ६५३ (वि० सं० ७८८–ई० स० ७३१) का मिला है, जिसमें उसके विरुद 'विनयादित्य,' 'युद्धमल्ल' और 'जयाश्रय' दिये है। उसमें शीलादित्य का नाम न होने से अनुमान होता है कि वह कुवरपदे मे ही मर गया हो और जयसिह के पीछे मगलराज लाट देश का राजा हुआ हो। उस (मगल राज) का उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई पुलकेशी हुआ, जिसने अवनि-जनाश्रय[9] विरुद धारण किया। उसके राजत्व-काल का एक ताम्रपत्र[10] कल-चुरि सवत् ४९० (वि० सं० ७९६–ई० स० ७३९) का मिला है जिसमें लिखा है कि "ताजिको"[11] (अरबो) ने तलवार के बल से सैंधव[12] कच्छेल्ल,[13]

---

3 श्रयाश्रय = लक्ष्मी का आश्रय।

4 बम्बई ए० सो० ज०, जि० १६, पृ० २–३।

5 विएना ओरिएेटल काग्रेस का कार्य विवरण, आर्यन् सेक्शन, पृ० २२५–२६।

6 कार्मणेय = कामलेज, बम्बई हाते के सूरत जिले मे।

7 स्कन्धावार = सैन्य का पडाव, कैम्प।

8 इन्डि० एँ०; जिल्द १३, पृ० ७५।

9 अवनिजनाश्रय = पृथ्वी पर के लोगो का आश्रय (आश्रय-स्थान)

10 विएना ओरिएेटल कांग्रेस का कार्य विवरण, आर्यन् सेक्शन पृ० २३०।

11 यह शब्द अरबो के लिये लिखा गया है [फलित ज्योतिष का एक अग 'ताजिक' या 'ताजिक' शास्त्र नाम से प्रसिद्ध है। उसमें भी 'ताजिक' शब्द अरबो का ही सूचक है क्योकि वह अग उन्हीके ज्योतिष शास्त्र से लिया गया माना जाता है।

12 सैंधव = सिंध।

13 कच्छेल्ल = कच्छ।

सौराष्ट्र,[14] चावोटक,[15] मौर्य,[16] गुर्जर,[17] आदि राज्यों को नष्ट कर दक्षिण के समस्त राजाओ को जीतने की इच्छा से दक्षिण में प्रवेश करते हुए प्रथम नवसारिका[18] पर आक्रमण किया । उस समय उसने घोर संग्राम कर 'ताजिकों' (अरबों) को विजय किया, जिस पर शौर्य के अनुरागी राजा वल्लभ[19] ने उसको 'दक्षिणापथसाधार'[20] 'चलुक्किकुला[21] लङ्कार' 'पृथ्वी-वल्लभ' और 'अनिवर्तकनिवर्त्तयितृ'[22] ये चार विरुद प्रदान किये[23] ।

अरबो की यह लड़ाई खलीफा हेशाम के समय सिंध के हाकिम जुनैद के सैन्य की होनी चाहिए, क्योंकि खलिफा हेशाम का समय हि० सन् १०५ से १२५ (वि० सं० ७८० से ७९९. ई० स० ७२४ से ७४३) तक का है और पुलकेशी को वि० स० ७८८ और ७९६ (ई० स० ७३१

14 सौराष्ट्र = सोरठ, दक्षिणी-काठियावाड़ ।

15 चावोटक = चापोत्कट, चावडे ।

16 मौर्य = मोरी । शायद ये राजपूताना के मोरी हो । कोटा के पास कणसवा के शिवमन्दिर के वि० सं० ७९५ (ई० स० ७३८) के लेख मे मौर्यवशी राजा धवल का नाम मिलता है । उस समय के पीछे भी राजपूताने मे मौर्यो का अधिकार रहना सम्भव है ।

17 गुर्जर = गुजरात (भीनमाल का राज्य) । चीनी यात्री हुएन्त्संग ने गुर्जर राज्य की राजधानी "भीनमाल" होना लिखा है; जो अब जोधपुर राज्य के अन्तर्गत है ।

18 नवसारिका = नवसारी, गुजरात मे ।

19 बादामी का सोलंकी राजा विजयादित्य या विक्रमादित्य दूसरा ।

20 'दक्षिणापथसाधार = दक्षिण का स्तम्भ ।

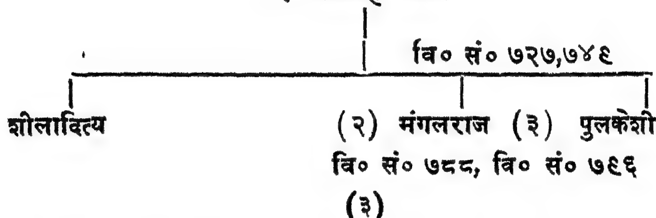
21 'चलुक्किकुलालङ्कार' = सोलंकी वंश का भूषण ।

22 'अनिवर्त्तकनिवर्त्तयितृ' = न हारने (हटने) वालो को हराने (हटाने) वाला ।

23 तरलतरतारतरवारिदारितोदितसैन्धवकच्छैल्ल सौराष्ट्रचावोटक मौर्यगुर्जरादिराज्ये निःशेषदाक्षिणात्यपतिजिगीषया दक्षिणापथप्रवेश······ ····प्रथममेव नवसारिकाविषय प्रसाधनायागते त्वरिततुरगखरमुखरखुरोत्खातधरणिधूलिधूसरितदिगन्तरे · · · · · प्रहृतपटुपटहरवप्रवृत्त कबन्धबद्धरासमण्डलीके समरशिरसि विजिते ताजिकानीके शौर्यानुरागिणा श्रीवल्लभनरेंद्रेण प्रसादीकृतापरनाम चतुष्टयस्तद्यथा दक्षिणापथसाधारचलुक्किकुलालङ्कार पृथ्वीबल्लभानिवर्त्तक निवर्त्तयित्रवनिजनाश्रयश्रीपुलकेश्रि राजस्सर्वानेवात्मीयान······(बम्बई गजे०, १।१।१०९) ।

और ७३६) के बीच राज्य मिला था। 'फुतूहुलबुल्दान[24] नामक अरबी तवारीख़ में लिखा है कि जुनैद ने अपना सैन्य मरमाड़,[25] मंडल,[26] दामलज,[27] बरूस,[28] उजैन,[29] मालिबा,[30] बहरिमद, (१) अलबेलमान,[31] और जज्र[32] पर भेजा था[33]।

पुलकेशी के अन्तिम समय अथवा देहान्त के बाद राठौड़ो ने लाट देश भी सोलंकियो से छीन लिया, जिसके साथ इस शाखा की समाप्ति हुई। इन राजाओ की राजधानी नवसारी थी।



(३)

जूनागढ़ (काठियावाड़ में) राज्य के ऊना नामक गाँव से सोलंकियों के दो ताम्रपत्र मिले हैं, जिनसे सोरठ पर राज्य करने वाली सोलंकियो की एक शाखा का नीचे लिखे अनुसार वृत्तान्त मिलता है।

सोलंकी वंश में कल्ल और महल्ल नाम के दो भाई बड़े राजा हुए, जिनका सौभ्रात्र राम-लक्ष्मण के समान था। कल्ल का पुत्र राजेन्द्र[1] हुआ जो पराक्रमी

---

24 फुतूहुल् बुल्दान = अहमद इब्न याहिया ने खलीफा अल्मुतवक्किल के समय ई० स० ८५० के आस-पास यह तवारीख लिखी थी।

25 मरमाड = मारवाड।

26 मण्डल = काठियावाड मे (ओखामण्डल)।

27 दामलज = शायद कामलेज हो (बम्बई हाते के सूरत जिले मे)।

28 बरूस = भडोच (बम्बई हाते मे नर्मदा तट पर)।

29 उजैन = उज्जैन।

30 मालिबा = मालवा।

31 अल्वेलमान = भीनमाल।

32 जज्र = गुर्जरदेश।

33 इलियट, हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, जिल्द १, पृ० ४४१–४२।

---

1 इस नाम की शुद्धता मे कुछ शङ्का है। मूल ताम्रपत्र बहुत ही अशुद्ध खुदे हुए है।

और बुद्धिमान् था। उसके बेटे बाहुक धवल ने अपने बाहुबल से धर्म[2] नामक राजा को नष्ट किया, राजाधिराज परमेश्वर पदधारी राजाओ को जीता, और कर्णाटक के सैन्य[3] को हराया। उसका पुत्र अवनिवर्म्मा हुआ, जिसके बेटे बलवर्मा ने विषढ को जीता और जज्जप आदि राजाओ को मार कर पृथ्वी पर से हूण वश को मिटा दिया। उसने वलभी[4] स० ५७४ (वि० सं०) ९५० ई० स० ८९४) माघ शु० ६ को अपने बाहुबल से उपार्जन किए हुए गॉव वाले नक्षिसपुर[5] प्रदेश में से जयपुर गॉव तरुणादित्य नामक सूर्य मन्दिर के अर्पण किया। वह कन्नौज के पड़िहार राजा भोजदेव[6] के पुत्र महेंद्रायुध (महेंद्रपाल) देव का सामन्त[7] और सौराष्ट्र देश के एक हिस्से का स्वामी था।

---

2 धर्म = यह प्रसिद्ध पालवश का धर्मपाल हो सकता है जो कन्नौज के पडिहारो से लडा करता था। इसीसे उनके सामन्त वाहुक धवल का उससे लडना सम्भव है।

3 कर्णाटक का सैन्य = दक्षिण के राठौडो का सैन्य। उस समय कर्णाटक देश पर राठौडो का राज्य था, जो कन्नौज के पडिहारो से, जिनका राज्य पहले मारवाड पर था, लडते रहे थे। ये सोलंकी, पडिहारो के सामन्त होने से, उनसे लडे होगे।

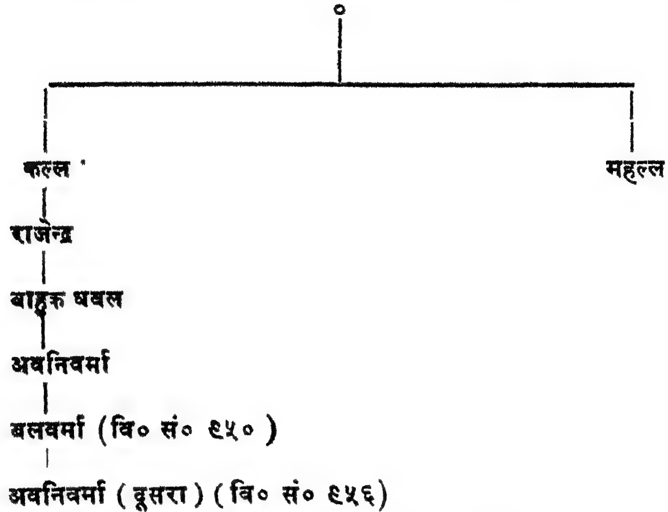
4 काठियावाड से गुप्तो का अधिकार मिट जाने बाद वहॉ पर वलभी के राज्य का उदय हुआ। उस समय वहॉ पर चलनेवाला गुप्त सवत् ही वलभी सवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ई० स० की आठवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे मुसलमानो ने वलभी राज्य को नष्ट किया, जिसके पीछे भी कुछ समय तक वलभी सवंत् वहॉ पर प्रचलित रहा। इसीसे पिछले ताम्रपत्रादि मे भी कही-कही उसका उल्लेख मिलता है (वलभी सवत् के लिये देखो भारतीय प्राचीन लिपिमाला, द्वितीय संस्करण, पृ० १७५)।

5 नक्षिसपुर = सोरठ (दक्षिण काठियावाड मे)।

6 भोजदेव को मिहिर भी कहते थे और वह महाराज रामभद्र का पुत्र, नागभट का पौत्र और वत्सराज का प्रपौत्र था।

7 परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेव-पादानुध्यातपरम भट्टारक महाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीमहेन्द्रायुधदेवपादप्रसादाक्षतसमधिगतपन्चमहाशब्दमहासामन्तश्रीचालुक्यान्वयप्रसूतश्रीअवनिवर्मसुतश्रीबलवर्मा (बलवर्मा का दानपत्र, एपि० इन्डि०; जिल्द ९, पृ० १-१०)

उसके पुत्र अवनिवर्मा[8] दूसरे ने जिसका दूसरा नाम योग[9] था। यक्षदास आदि राजाओ के देशो पर आक्रमण कर उनकी सेनाओ को परास्त किया और राजा धरणीवराह[10] को भगाया। वह भी कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल का सामन्त था। उसने वि० सं० ९५६ (ई० स० ९००) माघ शुदि ६ को अम्बुलक[11] गाँव उपर्युक्त सूर्य-मन्दिर के भेट किया।



---

8 बिल्हारी के शिलालेख मे (देखो सोल० इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १५–१६) कलचुरि राजा केयूरवर्ष (युवराजदेव प्रथम) की रानी नोहला को सोलंकी अवनिवर्मा की पुत्री लिखा है। वह अवनिवर्मा उपर्युक्त अवनिवर्मा (दूसरे) से भिन्न था, क्योकि उक्त लेख मे उसके पिता का नाम सधन्व और दादा का नाम सिंहवर्मा लिखा है।

9 पूरा नाम शायद योगवर्म्मा हो।

10 धरणीवराह काठियावाड का चाप (चापोत्कट = चावडा) वशी माडलिक और कन्नौज के प्रतिहार राजा महिपालदेव का सामन्त था। इसके समय का दानपत्र हड्डाला गाव (काठियावाड) से मिला है; जो शक स० ८३६ (वि० सं० ९७१ = ई० स० ९१४) का है। इन्डियन एन्टिक्वेरी (जिल्द १२, पृ० १९०–९५) मे डाक्टर बूलर ने इसका समय शक संवत् ९३९ (वि० स० ९७४ ई० स० ९१७–८) माना है और महीपालदेव को बिना किसी प्रमाण के गिरनार–जूनागढ़ के चूडासमा या आभीर राणकों मे से कोई माना है।

11 अम्बुलक = उपर्युक्त जयपुर गाव से उत्तर में।

अनहिलवाड़े में चावड़ो के पीछे सोलंकियों का प्रबल स्वतन्त्र राज्य-स्थापित करनेवाले मूलराज के पूर्वजो का कुछ पता नही चलता। मूल-राज ने अपने वि० सं० १०४३ (ई० स० ९८७) माघ वदि अमावस्या के दान-पत्र में अपने को महाराजाधिराज श्रीराज का पुत्र लिखा है (इं० एँ, जिल्द ६, पृ० १९१)। प्रबन्धचिन्तामणि, कुमारपाल प्रबन्ध आदि के अनुसार छत्तीस लाख गाँव वाले कान्यकुब्ज देश के कल्याणकटक नगर के राजा भूदेव (भूयगड़देव) के वशज मूंजालदेव के तीन पुत्र राज, बीज और दडकं सोमनाथ की यात्रा से लौटते थे, तब चावड़ावंश के अन्तिम राजा भूयडदेव (सामन्तसिंह) ने राज की अश्वविद्या की चातुरी देख और उसे उच्चकुल का अनुमान कर अपनी बहिन लीलादेवी का विवाह उससे कर दिय। लीलादेवी की अकाल मृत्यु होने पर उसका पेट चीर कर बालक निकाला गया। इसका जन्म मूल नक्षत्र में और अप्राकृतिक रीति पर होने से वह मूलराज कहलाया। पीछे इसने मामा को मार कर अपने को राजा बनाया। कन्नौज में सोलकियो के राज्य होने का कोई प्रमाण नही मिलता। दक्षिण के कल्याण नगर पर बहुत पहले सोलंकियों का राज्य था, जिसकी शाखाओं का ही 'लाट,' 'सोरठ' प्रभृति पर राज्य होना दिखाया जा चुका है। ये सोलंकी कन्नौज के पड़िहारो के सामन्त थे। अतएव सम्भव है कि मूलराज का पिता राज (राजि) और उसका पूर्वज भूयगडदेव सोलंकियों की इसी सोरठ वाली शाखा के वन्शधर हों, जिसका वर्णन अभी किया जा चुका है। इससे उसका कान्यकुब्ज देश के अन्तंगत होना, तथा (किसी, कालमें) कल्याणकटक के राजवंश से उद्भूत होना सम्भव है। 'भूदेव, अवनिवर्मा का पर्याय भी हो सकता है।

(४)

कल्याण के सोलकी राजा तैलप के वृत्तान्त में सोलंकी बारप (वारप्प) का कुछ हाल आता है[1] उसके वंश का जो कुछ हाल मिलता है वह इस तरह है—

सोलंकी वंश में निंबार्क[2] का पुत्र बारप हुआ जिसने लाट देश प्राप्त किया। प्रबन्धचिंतामणि[3] में लिखा है कि सोलंकी राजा मूलराज पर

1 देखो सोलं० इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १०५।

2 बारप के पौत्र कीर्तिराज के ताम्रपत्र मे निंबार्क से वंशावली दी है।

3 प्रबन्धचिन्तामणि की समाप्ति वि० स० १३६१ (ई० स० १३०५) फाल्गुन सुदि १५ को हुई थी।

सपादलक्षीय (साभर के चौहान) राजा (विग्रहराज दूसरे) ने चढ़ाई की, उसी अवसर पर तैलगण देश के राजा तैलप के सेनापति बारप ने भी उस (मूलराज) पर चढाई की, जिसमें वह मारा गया और उसके १०,००० घोड़े[4] तथा १८ हाथी मूलराज के हाथ[5] लगे। द्व्याश्रय काव्य में लाटेश्वर (लाट के राजा) द्वारप (बारप) का मूलराज के पुत्र चामुंडराज के हाथ से मारा जाना लिखा है[6]। कीर्तिकौमुदी[7] में लिखा है कि मूलराज ने लाटेश्वर के सेनापति बारप को मार कर उसके हाथी छीन लिये[8]। सोलकी तैलप ने राठौड़ो का राज्य छीना, उस समय उनके अधीन का लाट देश भी उसके अधीन हुआ था, वह उसने अपने सेनापति तैलप (बारप) को दिया हो यह सभव है। ऐसी दशा मे उसको तैलप का सेनापति, लाट का राजा, अथवा लाट के राजा का सेनापति लिखने में कोई विरोध नही आता, परन्तु सुकृत-सकीर्तन[9] में लिखा है—कि 'मूलराज ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा के सेनापति बारप को जीत कर उसके हाथी छीन लिए,[10]। इससे सशय उत्पन्न होता है, कि वह तैलप का सेनापति था या कन्नौज के राजा का ? हमारी राय में उसका तैलप का सेनापति होना अधिक सभव है[11]। बारप का गोग्गि-

---

4 यह सख्या अतिशयोक्ति के साथ लिखी जान पडती है।

5 बम्बई की छपी हुई 'प्रबन्धचिन्तामणि', पृ० ४०–४३।

6 द्वयाश्रय काव्य मे बारप पर मूलराज की चढाई का हाल बडे विस्तार से लिखा है (सर्ग ६, श्लोक ३६ से ६५ तक) परन्तु वह कवि-कल्पना मात्र ही है।

7 गुजरात के सोलकियो के पुरोहित सोमेश्वर ने वि० स० १२८७ (ई० स० १२३०) के आस-पास 'कीर्तिकौमुदी' रची थी।

8 लाटेश्वरस्य सेनान्यमसामान्यपराक्रम। दुर्वारम् बारपम् हत्वा–हास्तिकंयः समाग्रहीत। (कीर्तिकोमुदी, सर्ग २, श्लोक ३)

9 अरिसिह ने ई. स १३०० (वि. स. १२४३) से कुछ वर्ष पूर्व 'सुकृतसंकीर्त्तन' की रचना की थी।

10 विजित्य य. संयति कन्यकुब्ज महीभुजो बारपदण्डनाथम्।
जहार हस्तिप्रकरम् कराग्रसूत्कारसंदीपितपोरुषाग्निम्॥
सुकृतसकीर्त्तन, सर्ग २ श्लोक ५

11 बारप को तेलप का सेनापति मानने का कारण यह है कि प्रथम तो बारप (बारप्प) नाम ही दक्षिण का है, फिर उसीको लाट देश का राज्य मिला था, ऐसा उसके वंशज त्रिलोचनपाल के तामपत्र में लिखा है

राज हुआ, जिसकी पुत्री नायल देवी का विवाह देवगिरि (दौलताबाद) के यादव राजा वेसुक (वेसुगी) से हुआ था[12]। उसका पुत्र कीर्तिराज हुआ जिस के समय का एक दानपत्र[13] श० सं० ६४० (वि० स० १०७५, ई० स० १०१८) का मिला है। उसका बेटा वत्सराज और उसका त्रिलोचनपाल हुआ जिसका एक ताम्रपत्र[14] श० स० ६७२ (वि० स० ११०७, ई० स० १०५१) पौष अमात कृष्णा अमावस्या का मिला है। उसके पीछे का कुछ भी हाल नहीं,

---

(बारप्पराज इति विश्रुतनामधेयो राजा बभुव भुवि नाशितलोकशोक: ।।८।। श्री लाटदेशमधिगम्य कृतानि येन सत्यानि नीति वचनानि मुदे जनानाम् । इन्डि० एन्टि०, जि० १२ पृ० २०१) । तैलप ने राठौडो का राज्य छीना उस समय उक्त राज्य का दूर का उत्तरी हिस्सा (लाट) उसने अपने सेनापति को जो सोलंकी ही था, दिया हो, यह सम्भव है। कन्नौज के पडिहार राजा महीपाल को, जो भोजदेव (मिहिर) का पौत्र और महेन्द्रपाल का पुत्र था, दक्षिण के राठौड राजा इन्द्रराज तीसरे ने शक सं० ८३८ (वि० स० ६७३ = ई० ६१६) के आस-पास हराया। उस समय से ही कन्नौज का महाराज्य कमजोर होने लगा और वि० १०१७ (ई० स० ९६०) मे सोलंकी मूलराज ने अनहिलवाडे मे सोलकियो का स्वतन्त्र राज्य कायम किया। उस समय से अथवा उसके पूर्व कन्नौज के राजाओ का गुजरात आदि अपने राज्य के दक्षिणी हिस्सो पर से अधिकार उठ जाना सम्भव है। ऐसी दशा मे बारप को तैलप की तरफ से लाट देश मिलना अधिक संभव है, परन्तु जब तक नवीन शोध से हमारे इस अनुमान की पुष्टि न हो, तब तक हम उसको सशयरहित नही मान सकते।

12 देवगिरि के यादव राजा सेऊणचन्द्र (दूसरे) के समय के शक स० ६६१ (वि० स० ११२६ = ई० स० १०६६) के ताम्रपत्र मे उसके पूर्वज बेसुक की रानी नायलदेवी का सोलकी मण्डलेश्वर गोगि की पुत्री होना लिखा है। वह गोगि बारप का पुत्र गोगिराज होना चाहिये। (चालुक्यान्वयमण्डलीकतिलकाच्छ्रीगोगिराजाकरादुत्पन्ना दुहितात्र्ययाद्गुणवती धाम्ना कुलद्योतिता। स्त्रीरत्नम् वत वेधसा प्रकटितम् सामन्त रत्नायसा श्रीनायलदेविनाम सुभगा श्रीपट्टराज्ञी सदा) इन्डि एन्ठि, जिल्द १२, पृ० १२०

13 डाक्टर कीलहार्न सग्रहीत इन्स्क्रिपशन्स आफ नार्दन इन्डिया, सं. ३५४, पृ ५० ।

14 इन्डि. एन्टि. जि. १२, पृ २०१–२०३ ।

मिलता । ये सोलकी बादामी के सोलकियों के वंशज होने चाहिएँ ।

निंबार्क
|
बारप
|
गोग्गिराज
|
कीर्तिराज (वि० स० १०७५)
|
वत्सराज
|
त्रिलोचनपाल (बि० स० ११०७)

(ना० प्र० प०; नवीन सस्करण, काशी, भाग १, संख्या १, सं० १६७७)

१४–लाखा फूलाणी का मारा जाना

चन्द्रवंशी यादव क्षत्रियो की एक शाखा जाड़ेजा अथवा जाड़ेचा नाम से प्रसिद्ध है। उक्त शाखा के जाम (राजा) मोड़ ने ईस्वी सन् की ६ वीं शताब्दी में सिंध से आकर अपने मामा कच्छ के राजा वाघम चावड़े को मार कच्छ देश को अपने आधीन किया । उसका पौत्र फूल हुआ. जिसका पुत्र लाखा फूलाणी[1] बड़ा ही समृद्धिवान[2] और उदार राजा था । उसकी ख्याति राजपूताना, गुजरात आदि देशो में अब तक चली आती है, इतना ही नहीं; किन्तु उसका नाम धनाढ्यता और उदारता के विषय में एक साधारण कहावत सा हो गया है ।

---

1 फूलाणी=फूल का पुत्र (जैसे जाडाणी=जाडाका पुत्र आदि)

2 मायामाणी बगडावता (के) लाखे फूलाणी,

रहती-सहती माणग्यो हरगोविन्नाटाणी * ।।१।।

लाखा पुत्र समुद्र का, फूल घरे अवतार ।
पारेवाँ मोती चुगे, लाखारे दरबार ।।२।।
पल्लाणी हीरे जडी, सूरत पञ्चाणी,
पच्छम हिन्दो पातशा, लाखो फूलाणी ।।३।।

---

* बगडावत जाति के गूजर थे । अजमेर जिले मे रेण नामक स्थान में इनका निवास था, जो भिणाय के समीप है । कहते हैं कि भिणाय के आस-पास का समग्र देश इनके अधिकार मे था और भिणाय साधा-

हमारे यहाँ प्राचीन काल में इतिहास लिखने की प्रथा न होने के कारण अनेक प्राचीन राजवशियो आदि के समय तक का भी ठीक पता नहीं चलता और उनके इतिहास के लिये भाट लोगो की मनमानी घडतों पर ही निर्भर रहना पडता है । यही हाल लाखा फूलाणी के समय का है ।

रण बोलचाल मे अब भी 'रेण-भिणाय नाम से प्रसिद्ध है । वे चौबीस भाई थे, जो वीर होने के साथ ही असाधारण सम्पत्तिशाली थे । इनका समय वीरतामय कार्यो मे ही व्यतीत होता था और आठो प्रहर मदिरादेवी की आराधना मे तत्पर रहते थे । इनमे बडा भाई भोज था, जो पडिहार बाघ की दुराचारिणी स्त्री जयमति को ले आया । वह उसके साथ विलासमय जीवन बिताने लगा; किन्तु उसके अन्य तेईस भाई भी उक्त जयमति की तरफ आसक्ति प्रकट करते हुए अनुराग रखते थे । फलत. वे परस्पर कट मरे और प्रसिद्ध है कि जयमति चौबीस ही बगडावत भाइयो के मस्तको की माला पहिन सती हो गई । मेवाड के आसीन्द नामक गाँव में जयमति का स्थान है, जहाँ गूजरो का कामड गुरू रहता है और वह स्थान 'बनी' कहलाता है। बगडावतो का समय अभी निश्चित् नही हुआ है। सामान्य रूप से पन्द्रहवी शताब्दी के लगभग उनका उद्गम मानना पडेगा । विलास कामना के हेतु प्रचुर मात्रा में इन्होने अपनी सम्पत्ति का उपयोग किया और अन्त मे एक स्त्री के पीछे चौबीस ही भाइयो ने अपने जीवन को लगा दिया । राजस्थान में अबतक इनकी बडी ख्याति है । लोक साहित्य में इनकी वीरता और प्रेममय जीवन के गीतो का बडा महत्व है और गूजर ही नही, अन्य लोग भी बडे चाव से उन्हें गाते है । विक्रम के इधर के एक सहस्र वर्षो मे सम्पत्ति का उपयोग करने वालो मे उपरोक्त दोहे मे उल्लिखित तीनो व्यक्ति बडे नामी हुए अर्थात् भोग-विलास मे उपयोग करने वाले बगडावत, दातारी मे उपयोग करने वाला लाखा फूलाणी और खाने-पीने की सामग्री मे व्यय करने वाला हर गोविन्द नाटाणी ।

राजस्थान के कवि इन तीनो व्यक्तियो को नही भूले है । सम्पति का उपयोग करने मे कजूसी करने वाले व्यक्तियो के समक्ष यह दोहा उदाहरण रूप मे रखते है ।

हरगोविन्द नाटाणी जाति का (सरावगी !) महाजन था । वह जयपुर के कछवाहा नरेश ईश्वरीसिंह के समय केशवदास खत्री के स्थान पर मंत्री बना । महाराजा की असाधारण कृपा से लक्ष्मी देवी ने भी उस पर

कर्नल टॉड लिखते है[3] कि—"कन्नौज के राठोड़ राजा जयचन्दजी के पौत्र सियाजी के हाथ से लाखा फूलाणी मारा गया था," और ऐसा ही राजपूताने में प्रसिद्ध है। रामनाथजी रत्नू अपने "इतिहास राजस्थान" में लिखते है कि—"कन्नौज के राठोड़ राजा जयचन्दजी के पौत्र सेतरामजी के बेटे सियाजी ने द्वारिका की यात्रा के लिये प्रस्थान किया, जहाँ से लौटते समय अनहलवाड़ा पाटन के सोलकी राजा मूलराज ने इनको सत्कार-पूर्वक कुछ दिन अपने यहाँ रक्खा और सियाजी को अपनी पुत्री व्याही, जिसके पलटे में सियाजी ने सौलकियों के शत्रु किलै कोट के साडेया राजा लाखा फूलाणी को मार कर उनका पीछा छुड़ाया"।

इन[4] दोनो ग्रंथकारो के लिखे अनुसार विक्रम सवत् १३०० के आस-पास लाखा फूलाणी का मारा जाना मानना पड़ता है, क्योंकि विक्रम संवत् १२५० (ई० सन् ११९३) में कन्नौज के अन्तिम राठोड राजा जयचन्दजी शाहबुद्दीन गौरी से लड़कर युद्ध में मारे गये थे, जिनके पोते (कर्नल टॉड के अनुसार या पड़पोते इतिहास राजस्थान के अनुसार) सियाजी[5] थे।

---

3 टॉड राजस्थान जिल्द दूसरी, पृ० १४ (कलकत्ते मे छपी हुई)

4 इतिहास राजस्थान, पृ० १३८।

5 सियाजी का जयचन्दजी के साथ क्या सम्बन्ध था इसका अभी तक ठीक निर्णय नही हुआ। कर्नल टॉड एक राजस्थान में तो सियाजी को जयचन्द का पुत्र (टा० रा० जि० १ पृ० ९५) और दूसरे स्थान मे पौत्र होना प्रकट करते है; और ख्यातो की पुस्तको मे जयचन्द के पुत्र

कृपा प्रदर्शित की। स्वय के खाने-पीने के कार्य मे धन का उपयोग करने मे वह अद्वितीय पुरुष था। प्रसिद्ध है कि 'मत्री मोटो मारियो, खत्री केसोदास। जद ही छोडी ईसरा राजकरण की आस,' इस दोहे के अनुसार महाराजा ईश्वरीसिंह ने विषपान द्वारा अपने जीवन को त्याग दिया और उनके छोटे भाई माधवसिंह ने राजा बन कर हरगोविन्द को बंदी कर लिया। तब महाराजा माधवसिंह की आज्ञानुसार हरगोविन्द की हवेली को राज कर्मचारियो द्वारा सभाला गया तो अन्य बहुमूल्य वस्तुओ के अतिरिक्त केवल खाने का आचार ही इतनी मात्रा में निकला कि जिसका मूल्य एक लाख पच्चीस हजार रुपये कूता गया। हरगोविन्द का समय वि० सं० की उन्नीसवी शताब्दी का प्रारम्भिक भाग है। सं० टि०

जब ऐतिहासिक प्राचीन पुस्तकों आदि की तरफ दृष्टि देते हैं तो ऐसे प्रमाण मिलते है, जिनसे यह पाया जाता है कि उपर्युक्त दोनो ग्रंथकारों ने इस विषय में जो कुछ लिखा है वह केवल राजपूतानो के भाटों की कल्पित कथाओ पर विश्वास करके लिख दिया है, और उसमें कुछ भी सत्यता नही है । लाखा फूलाणी सियाजी के जन्म से २०० से भी अधिक वर्ष पूर्व वि० १०३६ (ई० सन् ९८०) के आस-पास आन्हिलवाडा के सोलकी राजा मूलराज के हाथो से मारा गया । इस विषय के जो प्रमाण मिले हैं वे पाठको के विनोदार्थ नीचे उद्धृत किये जाते है--

(क) "द्वयाश्रय[6] काव्य" से पाया जाता है, कि "गुजरात के

बडई सेन, जिनके सेतराम और सेतराम के सियाजी होना लिखा है, परन्तु ये पुस्तके भाटो की घडन्तो के आधार पर लिखी गई है, जिनमे उक्त-राजाओ के जो राज्याभिषेक संवत् दिए हैं, वे बिलकुल बनावटी है (जयचन्दजी वि० स० ११५१, बड़ई सेन वि० स० ११६५ सेतराम वि० स० ११८३ और सियाजी वि० सं० १२०५) जिसमे उक्त नामो की सत्यता पर भी शका होती है । दूसरा कारण यह है कि जयचन्दजी के दान पत्रो से उनके पुत्र हरिचन्द्र होना पाया जाता है, जिनका जन्म वि० सं० १२३२ भाद्र पद कृ० १२ रविवार को, और नाम करण भाद्र पद शु० १३ रविवार को काशी मे हुआ था, परन्तु कर्नल टॉड की पुस्तक और ख्यातो मे हरिश्चन्द्र का नाम ही नही है । कर्नल टॉड को बड़ई सेन का नाम मिला था, जिसको उन्होने राजाओ की नामावली मे दाखिल नही किया, किन्तु उसे कन्नौज के राजा जयचन्दजी का खिताब अनुमान कर उसका अर्थ 'सेना का भाट' किया है । 'चन्दबरदाई' कविको 'चन्दभाट' भी कहते है, इससे शायद उन्होने 'बरदाई' को भाट का पर्य्याय समझ कर ऐसा अर्थ किया हो तो आश्चर्य नही ।

6 प्रसिद्ध जैन सूरी हेमचन्द्र ने गुजरात के सौलंकी राजकुमार पाल के समय वि० सं० १२१७ (ई० सन् ११६०) के आस पास 'द्वयाश्रय काव्य' नामक भट्टी काव्य की शैली की पुस्तक रची, जिसमे उक्तसूरी रचे हुए 'सिद्ध हैम' नामक सस्कृत व्याकरण के सूत्रो के क्रमश उदाहरण और गुजरात के सोलकी राजा मूलराज से कुमारपाल तक का इतिहास दोनो आशय होने से ही उसका नाम 'द्वयाश्रय काव्य' रक्खा गया है ।

चौलुक्य (सोलंकी) राजा मूलराज ने सौराष्ट्र सोरठ, दक्षिणी काठियावाड़ के राजा ग्राहरिपु * पर चढ़ाई की, उस समय कच्छ का महा प्रतापी राजा लक्ष (लाखा) जो फूल्ल (फूल) का पुत्र था, अपने मित्र ग्राहरिपु की मदद पर चढा, और मूलराज के कुन्त (भाले) से मारा गया[7]" ।

(ख)—"कीर्ति कौमुदी[8]" में लिखा है कि "मूलराज ने शत्रु के अंग में पूरे प्रवेश करने वाले अपने बाण बडी इच्छा करने वाले राजा लक्ष (लाखा) पर ताके[9]" ।

(ग) प्रबन्ध चिन्तामणिकार[10] कहता है कि—"अपने प्रतापरूपी अग्नि में लक्ष (लाखा) को होमने वाले मूलराज ने उसकी (लाखा की) स्त्रियो को आँसुओं की वृष्टि कराई, और कच्छ के उक्त स्वामी को अपनी विस्तृत जाल में फाँस कर संग्राम रूपी समुद्र में मारा, और अपनी वीरता प्रकट की[11] ।

7 'द्वयाश्रय काव्य' के दूसरे से पाचवे सर्ग तक मूलराज की उक्त चढाई का और पॉचवें सर्ग मे लाखा के मारे जाने का हाल विस्तार से लिखा है। ऊपर केवल उसका साराश मात्र उद्धृत किया गया है, (कुन्तेन सर्वसारेणा वधील्लक्षं चुलुक्य राष्ट्र)।

द्वयाश्रय, सर्ग ५ (१२८)।

8 गुजरात के सोलंकी राजाओ के पुरोहित महाकवि सोमेश्वर ने वि० सं० १२७७ (ई० सन् १२२०) और १२९२ (ई० सन् १२३५) के बीच 'कीर्तिकौमुदी' नामक ऐतिहासिक काव्य रचा, जिसमे गुंजरात के सोलंकी राजाओं का इतिहास है ।

9 समत्रा कृत शत्रूणा संपराये स्वपत्रिणाम् ।
महेच्छ कच्छ भूपालं लक्षं लक्षी चकारय ।।
(सर्ग २।४)

10 जैन सूरी मेरुतुग ने वि० सं० १३६१ (ई० सन् १३०५) मे प्रबन्ध चिन्तामणि, नामक ग्रन्थ रचा, जिसमे अनेक ऐतिहासिक कथाओ का संग्रह किया ।

11 स्वप्रतापावले येन लक्ष होमं वितन्वता ।
सूचि तस्तत्कलत्राणा वाष्पा वाग्रह निग्रह: ।।१।।
कच्छप लक्षं हत्वा सहसाधिक लम्ब जाल मायातं ।
संगर सागर मध्ये धीवरता दर्शितायेन ।।२।।
(बम्बई की छपी प्रबन्ध चिन्तामणि पृ० ४७)

सम्पादकीय टिप्पण

* इसका नाम ग्रहरिपु भी लिखा हुआ मिलता है। (सम्पा० टि०)

(घ) प्राचीन गुजराती कविता में लाखा के जन्म और मृत्यु का वृत्तान्त इस तरह दिया है[12] कि—"शक संवत् ७७७ (वि० सं० ९१२ = ई० सन् ८५६) श्रावण (शुक्ला) ७ को सोनल राणी के गर्भ से लाखा का जन्म हुआ और शक संवत् ९०१ (वि० सं० १०३६ = ई० सन् ९८०) कार्तिक शुक्ला ८ शुक्रवार के दिन अपने पिता का बैर लेने वाले मूलराज के हाथ से वह मारा[13] गया। इस लड़ाई में १५०० समा (जड़ेया), सोलकी और १९०० चावड़े राजपूत राज्य की रक्षा के लिये लड़कर काम आए"।

12 दोहा–शाके सात सातो तरे, (शुद्ध) सातम श्रावण मास।
सो बल लाखो जनमियो, सूरज जोत प्रकाश ॥१॥
छप्पय-शाके नव एक मे, मास कार्तिक निरन्तर।
पिता बैर छल ग्रहे, साहुड दाखे अत अधर ॥१॥
पडे समा सो पनर, पडे सोलंकी सो खट।
सो ओगणिस चावडा, मुवाराज रक्षवट ॥
पातले गाव वी मंगल गई, हाथमल सेल सिहना आशरे।
आठ मे पक्ष शुक्र चाँदणे, मूलराज हाथ लाखो मरे ॥
(राजमल गुजराती–जिल्द १ पृ० ८९)

ऊपर के दोहे मे जो शक संवत् ७७७ वि० सं० ९१२ मे लाखा का जन्म होना लिखा है वह संशय–युक्त है, क्योकि इस हिसाब से उसका १२४ वर्ष की अवस्था मे मारा जाना सिद्ध होता है, और ऐसी वृद्धावस्था मे लडकर मारे जाने के उदाहरण बहुत ही कम मिलेगे।

13 मूलराज ने लाखा फूलाणी को मारा जिसका कारण गुजरात के भाट लोग ऐसा प्रकट करते हैं कि—"किसी समय मूलराज का पिता राजा सोलंकी द्वारिका यात्रा से लौटता हुआ लाखा के दरबार मे गया, और वहाँ पर लाखा की बहिन रायाजी से उसका विवाह हुआ, जिससे रखायच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर किसी कारण से विवाद हो जाने पर राजा सोलकी लाखा के हाथ से मारा गया, जिसका वैर लैने की इच्छा से मूलराज ने कच्छ पर चढाई कर लाखा को मारा"। परन्तु उनकी यह कथा भी विश्वास योग्य नही है, क्योकि यदि ऐसा हुआ होता तो उसका चबूतरा (जहाँ वह मारा गया) कच्छ मे होना चाहिए था; परन्तु वह सोरठ मे आट कोट के पास बना हुआ है, जिससे यही पाया जाता है, कि वह सोरठ के राजा ग्राहरिपु की मदद पर चढ कर वह वही मारा गया, जैसा कि हेमचन्द्र सूरि ने लिखा है।

होना इतिहास राजस्थान में लिखा है वह भी निर्मूल है । क्योंकि सियाजी के राज्य का प्रारम्भ वि० सं० १३०० (ई० सन् १२४३) के आस-पास और मूलराज सोलंकी का राज्याभिषेक संवत् १०१७ (ई० सन् ९६१) में हुआ था । इसलिये सियाजी का मूलराज के समय में विद्यमान होना कैसे सम्भव हो सकता है । †

(मासिक समालोचक, जयपुर, जनवरी-फरवरी १९०४, भाग २, सख्या १७–१२, पृ० २१८–२२५)

का वि० सं० ९९० पौष शुदि १ को गद्दी पर बैठना और २७ वर्ष राज्य करना लिखा है उससे भी मूलराज का वि० स० १०१७ में राज्य पाना सिद्ध होता है और यही संवत् शुद्ध मानने योग्य है *।

---

* साभर के उमरशाह नामक कुए से मिले हुए सोलंकी राजाओ के शिलालेख से गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज प्रथम का वि० सं० ९९८ (ई० स० ९४१) मे अनहिलवाडे का स्वामी होना स्पष्ट है । अतएव चावडा वंश के अंतिम राजा सामंतसिह (भूयगडदेव) का राज्य काल सात-आठ वर्ष से अधिक नही मानना पडेगा । संभव है कि विचार श्रेणी और प्रबन्ध चिन्तामणि के कर्त्ता मेरूतुङ्ग ''द्वारा मूलराज के राज्य प्राप्ति का सवत् और चावडा राजा सामतसिह का राज्य-काल लिखने मे भूलें हुई हो ।

यहाँ गुजरात राजस्थान के कर्त्ता मि० फॉर्वस का दिया हुआ मूलराज के राज्य प्राप्ति का समय प्रामाणिक ठहरता है, जिसका मूल आधार 'कुमारपाल प्रबन्ध' हो, जिसमे मूलराज प्रथम का वि० स० ९९८ (ई० स० ९४१) में राज्य पाने का उल्लेख है। आगे जाकर श्री० ओझाजी ने 'गुजरात से मिले हुए प्रतिहारो तथा राजपूताना से मिले हुए सोलकियो के दानपत्र और शिलालेख' शीर्षक लेख मे मूलराज के राज्य प्राप्ति का यही समय ठीक मानकर उपरोक्त अनुमान को बदल दिया है।

† कर्नल टॉड ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ एनाल्स एंड एंटिक्वीटीज ऑफ राजस्थान की रचना की थी, उस समय पुरातत्वानुसंधान का कार्य आरभ ही हुआ था और प्राचीन इतिहास संबंधी सामग्री प्राप्ति के साधन सुलभ नही थे । इसलिए उन्हें ख्यातें जनश्रुतियो आदि को भी ग्रहण करना पडा। फलत. उनके राजस्थान मे ऐसी कितनी ही भूलें है, जिनको समय २

पर विद्वानो ने दृष्टिगोचर कराया है। इनमें श्री० ओझाजी भी है, जिन्होने टॉड के भ्रमपूरित लेखो पर पर्याप्त रूप से प्रकाश डाला है।

इस लेख मे श्री० ओझाजी ने कर्नल टॉड के इस कथन 'लाखा फूलाणी' जोधपुर के वर्तमान राठोड राज्य के सस्थापक राव सीहा द्वारा मारा गया और श्री० रामनाथ रत्नु के "इतिहास राजस्थान" के इस वर्णन 'गुजरात के सोलंकी नरेश मूलराज (प्रथम) की पुत्री का विवाह राठोड राव सीहा से हुआ' पर प्रकाश डालते हुए दोनो के कथनो को भ्रमपूरित सिद्ध किया है ।

वस्तुत लाखा फूलाणी गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज (प्रथम, वि० सं० ९९८–१०५१ = ९४१ ९९४) द्वारा मारा गया, यह प्रमाणोक्त है । राव सीहा, लाखा फूलाणी और मूलराज के तीन सौ वर्ष पीछे हुआ था। उस (राव सीहा) का स्मारक लेख भी मिल गया है, जिसमे उसका वि० स० १३३० कार्तिक वदि १२ (ई० सं १२७३ तारीख ९ अक्टोबर) सोमवार को परलोकवास होने का उल्लेख है।

जोधपुर के राठोड नरेश तथा उनके वंशधर अन्य राठोड नरेशो की ख्यातो मे लाखा फूलाणी का राठोड रावसीहा द्वारा मारे जाने, एवं सोलकी नरेश की मूलराज की पुत्री का विवाह होने का उल्लेख अवश्य है, परन्तु प्राचीन इतिहास के लिए ख्यातो का कथन प्राय: कल्पित ही ठहरता है। वास्तव मे ख्यातो का लेखन काल अधिक प्राचीन नही है और वे सुनी-सुनाई बातो को जोड़कर निर्मित की गई है।

अब तो यह विषय विवाद ग्रस्त है ही नही; क्योकि जोधपुर राज्य के प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् महा महोपाध्याय श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने कई वर्ष पूर्व 'भारत के प्राचीन राजवंश' तृतीय भाग, पृ० १२० मे इन दोनो भ्रमपूरित बातो को ठीक नही माना है ।

(सं० टि०)

प्रकरण तीसरा

मूर्तिकला

१—राजपूताना में शिव-मूर्तियां

एकेश्वरवादी होने के कारण वैदिकधर्मावलम्बी भारतवासी अत्यन्त प्राचीन काल से एक ही ईश्वर को सृष्टि का उत्पादक, पालक एवं संहारक मानते आ रहे हैं। ईश्वर के भिन्न-भिन्न कार्यों के अनुसार उसके भिन्न-भिन्न नामो की कल्पना की गयी; परन्तु ये सब नाम एक ही ईश्वर के द्योतक हैं। ईश्वर द्वारा जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार होने से उसके क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र (शिव) नाम रक्खे गये। पहले ईश्वर के निर्गुण स्वरूप की उपासना होती थी; पीछे उसकी भिन्न-भिन्न प्रकार की मूर्तियाँ बनने लगीं। मूर्तियो की कल्पना में मनुष्य की बुद्धि अपने से अधिक सुन्दर वस्तु उत्पन्न नहीं कर सकती थी, तो भी देव मूर्तियों की कल्पना करते समय मनुष्य को अपनी अपेक्षा कुछ विशेषता प्रदर्शित करने की आवश्यकता जान पड़ी। देव-प्रतिमाओं की कल्पना में शरीर की आकृति तो मनुष्य जैसी ही मानी गयी, परन्तु कहीं-कहीं हाथों और मुखों की संख्या बढ़ा कर उनमें विशेषता उत्पन्न की गयी।

भारतवर्ष के जल वायु में हजारों वर्ष पूर्व के मन्दिरो अथवा मूर्तियों का अक्षुण्ण रहना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि यहाँ अत्यन्त प्राचीन कालकी मूर्तियाँ उपलब्ध नहीं होतीं। ऐसी दशा में यह स्पष्टरूप से नहीं जान पड़ता कि प्रारम्भ में मूर्तियाँ द्विभुज बनायी जाती थीं अथवा चतुर्भुज। अब तक ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य आदि देवताओं की जो मूर्तियां मिली हैं उनमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव चतुर्भुज हैं। सूर्य की सबसे प्राचीन मूर्तियाँ द्विभुज हैं। अजमेर के राजपूताना-म्यूजियम' में सूर्य की दस से अधिक प्राचीन मूर्तियाँ हैं। उनमें केवल एक चार भुजाओं से युक्त एवं सात घोड़ो के रथ में विराजमान है, परन्तु यह दो सौ वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। शेष भी द्विभुज हैं। इसी प्रकार आरम्भ में शिव प्रतिमा द्विभुज और एकमुखी बनायी जाती रही हो, यह असम्भव नही है। ईस्वी सन् की दूसरी शताब्दी के आसपास के कई सिक्को पर स्कन्द, विशाख और महासेन की मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जो द्विभुज और एक सिर वाली हैं। उसी शताब्दी के कुषाणवंशी राजा कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव के कतिपय सिक्को पर शिवजी की द्विभुज और एक सिर वाली मूर्ति अङ्कित है। उनमें शिव अपने वाहन नन्दी के समीप हाथ

में त्रिशूल लिये खड़े हैं । मूर्ति के नीचे प्राचीन यावनी (ग्रीक) लिपि में 'आइशो' (Oesho) अर्थात् ईशो—ईश = शिव लिखा है । इन मूर्तियो से हम यह मान सकते है कि पहले शिव की मूर्ति द्विभुज एक सिर वाली रही हो; परन्तु उसी समय के कुछ सिक्को पर शिव की ऐसी भी मूर्तियाँ है, जिनके एक मुख है और चार हाथ है और हाथो में माला, वज्र, त्रिशूल और पात्र दीख पड़ते हैं। इनसे जान पड़ता है कि शिव के चार हाथों की कल्पना भी नवीन नही, किन्तु उतनी ही प्राचीन है। भारतवर्ष में ईस्वी सन् की पांचवी शताब्दी के पूर्व की कोई हाथ पैर वाली पाषाण-निर्मित शिव-प्रतिमा अब तक देखने में नही आयी।

राजपूताने में शिव-पूजा बहुत प्राचीन काल से चली आती है और वहाँ कई प्रकार की शिव-मूर्तिया मिलती है। इनमें से बहुत-सी मूर्तियाँ तो गोलाकार लिङ्ग के रूप में जलहरी (जलाधारी) के मध्य में स्थापित है। सम्भवतः वे शिव के 'स्थाणु' नाम की सूचक हों। राजपूताना में कई जगह राजाओं, सरदारों आदि की स्मारक छतरियों तथा साधुओ की समाधियों के मध्य में भी ऐसे लिङ्ग स्थापित किये जाते हैं।

बहुत सी मूर्तियो में ऊपर के भाग में थोड़ा-सा बाहर निकला हुआ वृत्ताकार शिव लिङ्ग और उसके चारों ओर जटाजूट सहित चार सिर होते है। कोटाराज्यान्तर्गत चार चोमा के प्राचीन शिवालय में, मेवाड़ में एकलिङ्गजी के प्रसिद्ध मन्दिर में तथा अन्यत्र भी ऐसी अनेक प्रतिमाएँ विद्यमान हैं।

उपर्युक्त लिङ्ग का वृत्ताकार ऊर्ध्वभाग ब्रह्माण्ड का द्योतक माना जाता है और चार मुखों में से पूर्व-मुख सूर्य का, उत्तर-मुख ब्रह्माजी का, पश्चिम-मुख श्रीविष्णु का और दक्षिण-मुख रुद्र (शिव) का सूचक होता है। जिन मन्दिरो में प्राचीन पद्धति के अनुसार शिवार्चन होता है, वहां उन मुखो में उन्हीं देवताओं की कल्पना करके उनका पूजन किया जाता है और विष्णु सूचक मुख की पूजा के समय उस पर तुलसी भी चढ़ायी जाती है।

भरतपुर-राज्य के कामाँ (कामवन) नामक ग्राम से मिला हुआ एक चतुरस्र शिवलिङ्ग राजपूताना-म्युजियम (अजमेर) में सुरक्षित है। उसके ऊपर का एक इंच ऊँचा गोल भाग लिङ्ग (ब्रह्माण्ड) का सूचक है। शिव भक्त उसे शिव का पाँचवाँ मुख मानते है। उसमें नीचे के चारो भागो में मुखो के स्थान पर मूर्तियां बनी हुई हैं। पूर्व में सूर्य की आसीन मूर्ति है, जिसके नीचे सात घोड़े और हाथ में उनकी रास लिए सूर्य का सारथि अरुण दीख पड़ता है। उत्तर की

ओर दाढ़ी वाले ब्रह्मा की चतुर्मुख (चोथा मुख अदृश्य है) मूर्ति है, पश्चिम की ओर गरुडासीन विष्णु और दक्षिण की ओर नन्दी सहित शिव की मूर्ति है। पंचमुखी शिव की मूर्तियो में चारो दिशाओ के मुख इन्ही चार देवताओ के सूचक होने से यही जान पडता है कि ये चारो देवता एक ही ईश्वर के ब्रह्माण्ड स्थित रूप है। कामाँ से एक बड़ा शिवलिङ्ग मिला है, जिसके ऊपर का एक इंच बाहर निकला हुआ वृत्ताकार भाग शिव के पांचवें मुख (ब्रह्माण्ड) का प्रदर्शक है। उसके नीचे चारो ओर साधारण शिवलिङ्गो के समान जटा-जूट सहित चार मुख है। पूर्व के मुख के नीचे घुटनो तक लम्बे बूट पहने हुए सूर्य की द्विभुज मूर्ति और उत्तर की ओर दाढी वाले ब्रह्माजी की चतुर्मुख, पश्चिम में विष्णु की चतुर्भुज एव दक्षिण में नन्दी सहित रुद्र की चतुर्भुज मूर्तियाँ है। ये चारो मूर्तियाँ ढाई-ढाई फीट ऊँची और खडी हुई है इस शिव-लिङ्ग को देखने से यह निश्चय होता है कि इसके चारो दिशाओ के चारो मुख क्रमशः सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के द्योतक है।

ईस्वी सन् की दूसरी शताब्दी क कुषाणवंशी राजाओ के कुछ सिक्को पर नन्दी के पास खडी हुई द्विभुज, परन्तु चार मुख वाली (चौथा मुख अदृश्य है) शिव की मूर्ति बनी है, जो ऊपर की कल्पना को पुष्ट करती है। इस प्रकार शिव के पाच मुख माने जाने के कारण वे 'पचानन', 'पचमुख', 'पंचास्य' अथवा 'पंचवक्त्र' आदि नामों से प्रसिद्ध है।

जोधपुर-राज्य के गोड़वाड़ प्रान्त में सादड़ी गाँव से कुछ दूर राणपुर का सुप्रसिद्ध जैन मन्दिर है। उसके निकट ही एक प्राचीन सूर्य मन्दिर है, जिसके गर्भगृह में सूर्य की मूर्ति है और उसके बाहर की ओर ब्रह्मा, विष्णु और शिव की ऐसी मूर्तियाँ बनी हुई है, जिनमें कमर से नीचे का भाग सूर्य का और ऊपर का भाग ब्रह्मा आदि देवताओं का है। ये सारी मूर्तियाँ ७ घोड़े वाले रथ में बैठी हुई है, उन्हें देखकर यही अनुमान हो सकता है कि ये सब देवता एक ही ईश्वर के पृथक-पृथक नाम के सूचक है। कुछ ऐसी भी मूर्तियाँ देखने में आयी है, जिनमें ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य का सम्मिश्रण है। उनके हाथो में धरे हुए भिन्न-भिन्न आयुधो से उनके स्वरूप का निश्चय होता है।

राजपूताना-म्यूजियम में रक्खी हुई एक विशाल शिला पर ब्रह्मा, विष्णु और शिव की सुन्दर मूर्तियाँ––उनके वाहन सहित––बनी हुई है। ब्रह्माजी की प्राचीन मूर्तियो के ऊपर के एक किनारे पर विष्णु और दूसरे पर शिव की छोटी-छोटी मूर्तियाँ रहती है। इसी तरह विष्णु की मूर्ति के किनारो पर

ब्रह्मा और शिव की, तथा शिव की मूर्ति के दोनो ऊपरी पार्श्वों पर ब्रह्मा और विष्णु की मूर्तियाँ होती है। ये सब एक ही ईश्वर के इन तीन रूपों को सूचित करती है। उनके रूप भी अलग-अलग माने गये हैं। राजपूताना-म्यूजियम में एक सुविशाल प्राचीन शिवलिङ्ग है, जिस पर ब्रह्मा नीचे (पाताल) से ऊपर (ब्रह्माण्ड में) जाते हुए प्रदर्शित किये गये हैं और एक-एक के ऊपर दो-दो मूर्तियाँ दीख पड़ती है। दूसरी तरफ विष्णु नीचा मुख किये हुए ऊपर से नीचे आ रहे है। विष्णु की भी एक-एक के नीचे दो-दो मूर्तियाँ बनी हुई है। ये मूर्तियाँ अनन्त ब्रह्माण्ड रूप शिवलिङ्ग की थाह लेने के लिये ब्रह्मा का ऊपर की तरफ और विष्णु का नीचे की ओर जाना सूचित करती है। इससे हम यह मान सकते है कि शिवलिङ्ग की कल्पना वस्तुतः अनन्त ब्रह्माण्ड की सूचक है।

जिस समय इन देवताओं की मूर्तियो की कल्पना हुई, उस समय इनकी पत्नियो की कल्पना का होना भी स्वभाविक ही था। शिव की पत्नी शिवा, उमा, पार्वती, गौरी, दुर्गा, कालो आदि नामो से प्रसिद्ध हुई। राजपूताने में ऐसी बहुत-सी मुर्तियाँ मिलती है। जिनमें शिव नन्दी के ऊपर बैठे हुए है और उनकी बायी जङ्घा पर पार्वतीजी बैठी है। इस प्रकार की तीन मूर्तियाँ राजपूताना-म्यूजियम में विद्यमान है। कही-कही शिव और पार्वती की नन्दी के निकट खडी हुई मूर्तियां भी मिलती हैं। शिव पार्वती के विवाह के दृश्य भी प्रस्तराङ्कित हुए हैं। इनमें आमने-सामने खडे हुए शिव-पार्वती ऊपरी भाग में, विवाह में सम्मिलित होने को आये हुए इन्द्र आदि देवता और मध्य में अग्नि के सामने विवाह कार्य सम्पादित करते हुए चतुर्मुख ब्रह्मा प्रदर्शित है। ऐसे दो नमूने राज-पूताना म्यूजियम में सुरक्षित है।

जब शिव पत्नी की कल्पना हुई, तब शिव और पार्वती दोनों का मिल-कर एक शरीर भी माना जाने लगा—दाहिना भाग शिव का और बायाँ एक स्तनसहित पार्वती का। ऐसी मूर्तियाँ 'अर्द्धनारीश्वर' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें शिव के साथ नन्दी और पार्वती के साथ उनका वाहन सिंह दिखलाया जाता है। यह कल्पना भी प्राचीन है। क्योकि संस्कृत के सुप्रसिद्ध महाकवि बाणभट्ट के पुत्र पुलिनभट्ट ने 'कादम्बरी' के उत्तरार्द्ध के प्रारम्भ में अर्द्धनारीश्वर की स्तुति की है।* कहीं-कहीं शिव की विशालकाय तीन

---

* देहद्वयार्धघटनारचितं शरीर-
मेकं ययोरनुपलक्षितसन्धिभेदम्।
वन्दे सुदुर्घटकथापरिशेषसिद्ध्यै
सृष्टेर्गुरू गिरिसुतापरमेश्वरौ तौ॥

मुख वाली मूर्ति (त्रिमूर्ति, महेश्वर) भी पायी जाती है । उसके छः हाथ, जटायुक्त तीन सिर और तीन मुख होते है, जिनमें से रोता हुआ एक मुख शिव के रुद्र नाम को चरितार्थ करता है । मध्य के दो हाथो में से एक में बिजौरा और दूसरे में माला, दाहिनी ओर के दो हाथों में से एक में सर्प और दूसरे में खप्पर और बायी ओर के हाथो में से एक में पतले दण्ड-सी कोई वस्तु और दूसरे में ढाल या काच की आकृति का कोई छोटा सा गोल पदार्थ होता है । त्रिमूर्ति वेदी के ऊपर दीवार से सटी रहती है और उसमे वक्षःस्थल से कुछ नीचे तक का ही भाग होता है । त्रिमूर्ति के सामने भूमि पर बहुधा शिवलिङ्ग होता है । ऐसी त्रिमूर्तियाँ चित्तौड़ के किले तथा सिरोही-राज्य के कई स्थानो में देखने में आयी है । शिव 'नटराज' कहलाते है और उनकी ताण्डव-नृत्य करती हुई मूर्तियाँ भी राजपूताना के कई स्थानो में देखने में आयी है ।

इस प्रकार शिव की भिन्न-भिन्न मूर्तियाँ राजपूताने में मिलती है । अपनी अपनी रुचि के अनुसार शिव भक्त किसी न किसी रूप में अपनें उपास्य की पूजा करते है ।

जिस प्रकार बौद्धों ने २४ अतीत बुद्ध, २४ वर्तमान बुद्ध एवं २४ भावी बुद्ध की और जैनों ने २४ तीर्थङ्करो की तथा वैष्णवो ने २४ अवतारो की कल्पना की, उसी तरह शिव के उपासको ने भी शिव के कई अवतारो की कल्पना की; परन्तु उन सब अवतारों की मूर्तियाँ नही मिलतीं । राजपूताना में शिव के लकुलीश (नकुलीश, लकुटीश) अवतार की मूर्तियाँ बहुत मिलती है । विश्वकर्मावतारवास्तुशास्त्रम' नामक ग्रन्थ में लकुलीश-मूर्ति के वर्णन में लिखा है ।

न (ल) कुलीशमूर्ध्वमेढ्ं पद्मासनसुसंस्थितम् ।
दक्षिणे मातुलिङ्गं च वामे दण्डं प्रकीर्नितम् ।।

'लकुलीश की मूर्ति ऊर्ध्वमेढ्र (ऊर्ध्वलिङ्गी) पद्मासन स्थित, दाहिने हाथ में बिजौरा और बायें हाथ में दण्ड (लकुट) लिये होती है । लकुलीश के मन्दिर कई जगह मिलते है। लकुलीश-सम्बन्धी देवालयो में उदयपुर-राज्य में एकलिङ्गजी के मन्दिर के पास वि० सं० १०२८ का बना हुआ और कोटा-राज्य के प्रसिद्ध कवालजी (कपालेश्वर-मन्दिर) से अनुमान एक मील पर जयपुर की सीमा में आधा गिरा हुआ एक सुविशाल मन्दिर मेरे देखने मे आया । इस सम्प्रदाय के मानने वाले पाशुपत शैव कनफटे साधु होते थे । लकुलीश का अवतार कब हुआ, यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता, परन्तु मथुरा से मिले हुए गुप्त सवत् ६१ (वि० सं० ४३७ = ई० स० ३८०)

के लेख से पाया जाता है कि लकुलीश के शिष्य कुशिक की परम्परा में ११वाँ आचार्य उदिताचार्य उक्त संवत् में विद्यमान था, अत लकुलीश का प्रादुर्भाव ई० स० की दूसरी सदी के अन्त के आसपास होना अनुमान किया जा सकता है।

लकुलीश का प्राकट्य स्थान कायावरोहण, (कायारोहण कारवान, बड़ौदा राज्य में) माना गया है। उनके चार शिष्यों के नाम कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य (लिंगपुराण २४।१३१) मिलते हैं। एकलिंगजी तथा राजपूताने के अन्य मन्दिरों के मठाधीश कुशिक के शिष्य-परम्परा में थे। ये साधु कान फड़वाते, सिर पर जटाजूट रखते और शरीर पर भस्म लगाते थे। ये विवाह नहीं करते थे; किन्तु ये चेले मूडते थे।

राजपूताना के शिव भक्त राजा अपने इष्टदेव शिव के बड़े-बड़े मन्दिर बनवाते थे और उनके साथ मठ भी होते थे। ये मठ बहुधा लकुलीश-सम्प्रदाय के कनफटे साधुओं के अधिकार में होते थे। वे लोग राजाओं के गुरु माने जाते थे। एकलिंगजी तथा नैनाल (मेवाड़) आदि के मठाधीश भी यही लोग थे। इन मन्दिरों के द्वार पर लकुलीश मूर्ति रहती है। इन मन्दिरों और मठों के निर्वाह के लिए बड़ी-बड़ी जागीरें दी जाती थीं। वर्तमान काल के 'नाथ' लोग विशेषतः उसी सम्प्रदाय से निकले हुए हैं, परन्तु अब वे लोग लकुलीश का नाम तक नहीं जानते।°

२—चित्तौड़ का कीर्तिस्तम्भ

कीर्तिस्तम्भ किसी घटना की कीर्ति को चिरस्थाई बनाने के लिये बनाये जाते हैं। जैसे दिल्ली से तेरह मिल दूर महरोली गांव में कुतुबुद्दीन ऐबक की प्रसिद्ध कुतुब की लाट है, वैसे ही चित्तौड़ के किले पर महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) का बनाया हुआ प्रसिद्ध कीर्तिस्तंभ भारत भर में हिन्दु जाति की कीर्ति का एक मात्र अलौकिक स्तम्भ है। महाराणा कुंभकर्ण मेवाड़ के सीसोदिया राजाओं में सबसे पहला प्रबल राजा हुआ। उसने अपनी वीरता से दिल्ली और गुजरात के सुलतानों का कितना ही प्रदेश अपने आधीन किया, जिस पर उन्होंने 'हिन्दु सुल्तान'[1] का खिताब

° 'कल्याण' के 'शिवाक' से प्रतिमुद्रित।

1 विषमतमाभंग सारंगपुर-नागपुरगागरणनराणक अयजमेरू मंडोरमंडल कर बूंदीरवाटूचाटसूजनादिनानामहादुर्गलीलामात्र ग्रहणप्रमाणितजितकाशित्वाभिमानस्य'''''''''म्लेच्छ महीपालव्यालचक्रवाल विदलनविहगमेंद्र-

देकर उसे हिन्दू बादशाह स्वीकार किया। उसने कई बार गुजरात के सुलतानो को हराया, नागौर को विजय किया। गुजरात और मालवे के सम्मिलित सैन्य को पराजित किया और राजपूताने का अधिक अंश एवं मांडू, गुजरात और दिल्ली के राज्यो का कुछ अंश छीन कर मेवाड़ को महाराज्य बना दिया। जैसा वह वीर एवं विजयी था, वैसा ही वह विद्यानुरागी भी था। प्राचीन शिलालेखो से पाया जाता है कि वह विद्या-व्यसनी, विद्वानो का सम्मानकर्ता, साहित्यप्रेमी, संगीत का आचार्य, नाटचकला में कुशल, कवियो का शिरोमणि, अनेक ग्रथो का रचयिता, वेद, स्मृति, दर्शन, उपनिषद् और व्याकरण आदि का विद्वान सस्कृतादि भाषाओ का ज्ञाता[1] था। उसे शिल्प से भी बहुत अनुराग था, जिनमें से मुख्य और उल्लेखनीय चितौड का गढ़ और वहाँ की रथ पद्धति (सड़क), वहाँ का प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ, कुंभ स्वामी का मन्दिर, एकलिङ्गजी का मन्दिर और उससे पूर्व का कुभ-मण्डप, कुभलगढ़ का दुर्ग, वहाँ का कुभस्वामी का देवालय, आबू पर अचल-गढ़ का किला तथा कुंभ स्वामी का मन्दिर आदि अब तक विद्यमान है। यदि इन सबका वर्णन किया जावे तो एक पुस्तक बन जावे। हम आज 'मनोरमा' के पाठको के मनोरजन के लिए उनमें से केवल कीर्ति स्तम्भ का ही यहाँ वर्णन करते है।

महाराणा कुंभा के पिता मोकल को, चाचा व मेरा नामक पुरुषो ने

स्य·· ·:प्रबलपराक्रमाक्रान्त ढिल्लीमडलगुर्जरत्रा सुरत्राणदत्ततपत्रप्रथित-हिन्दुसुरत्राण विरुदस्य········राणा श्री कुभकएर्ण सर्वोर्वीपति सार्व-भौमस्य···· ··।

राणपुर के जैनमदिर का शिलालेख, एन्युअल् रिपोर्ट ऑफ् दी आर्कि-यालोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, ई० स० १९०८ पृ० २१४।

1 वेदा यन्मौलिरत्न स्मृतिविहितमतं सर्वदा कंठ भूषा
मीमासे कुंडलेद्वेहृदि भरतमुनिव्याहृत हारवल्ली।
सर्वांगीणं प्रकृष्टं कवचमपि परेराजनीति प्रयोगा:
सार्वज्ञ्यविभ्र दुच्चैरगणितगुणभूर्भीमते कुँभभूप ॥१७२॥
अष्टव्याकरणी (?) विकास्युपनिषत्स्पष्टाष्‌दंष्टोत्कट:
षट्तर्क्की (?) विकटोक्तिमुक्ति विसरत्प्रस्फार गुजारवः।
सिद्धान्तोद्धतकान नैक वसति साहित्यभूक्रीडनो'
गर्ज ·द्विगुणान्विदार्य प्रज्ञास्फुरत्केसरी ॥१७३॥
(एकलिग महात्म्य, राजवर्णन अध्याय)

हत्या की थी, उसमें महपा (महीपाल) पंवार भी शामिल था। कुंभा ने राज्य सिंहासन पर आरूढ़ होते ही चाचा व मेरा पर सैन्य भेजकर उन्हें मरवा डाला, परन्तु महपा पंवार वहाँ से भाग कर मांडू के सुलतान महमूद खिल्जी (प्रथम) की शरण में चला गया। महाराणा ने सुलतान को महपा को सुपुर्द कर देने के लिए लिखा, जिसका उसने यह उत्तर दिया कि मैं अपने शरणागत को किस तरह सौंप सकता हूँ? यदि आपकी युद्ध करने की इच्छा हो तो मैं भी तैयार हूँ। यह उत्तर पाकर महाराणा ने मालवे पर चढ़ाई करदी। इस चढ़ाई में महाराणा की सेना में १,००,००० सवार और १,४०० हाथी थे। इधर से सुल्तान भी लडने को चला। वि० सं० १४९४ (ई० स० १४३७) में सारंगपुर के पास दोनो सेनाओ का मुकाबला होकर घोर युद्ध हुआ, जिसमें महमूद हार कर माडू को भाग गया। कुभकर्ण ने सारंगपुर में असंख्य मुसलमान स्त्रियो को कैद किया। महमूद का महामद छुड़वाया, उस नगर को जलाया और मालव सैन्य का सहार किया[1]। इस विजय के उपलक्ष्य में महाराणा ने चितौड़ पर यह विशाल कीर्तिस्तम्भ बनाया। यह कीर्तिस्तम्भ चितौड़गढ पर के प्रसिद्ध गोमुख नामक जलाशय के तट स्थित समाधीश्वर के मन्दिर से कुछ ही दूर अनुमानत १२ फुट ऊंची, ४२ फुट लम्बी और उतनी ही चौडी वेदी पर खडा हुआ है। यह आकृति में चौकोर है और इसके प्रत्येक पार्श्व की लम्बाई ३५ फुट है। इसमें कुल नौ मंजिल है और सात मजिलो के चारो ओर एक-एक झरोखा बना हुआ है, जिससे स्तम्भ के भीतर पर्याप्त प्रकाश रहता है। मध्य का भाग (गर्भभाग) कुतुबमिनार की भाति गोल नहीं है, किन्तु चतुरस्र है और अन्दर स्थान भी इतना पर्याप्त है कि प्रत्येक मजिल में ३०-४० आदमी खड़े रहकर भीतर की मूर्तिया आदि का निरक्षण कर सकते है। प्रत्येक मंजिल के अनुमानत. तीन चतुर्थांश भाग में परिक्रमा है, जिसके अंत से ऊपर की मंजिल में जाने के लिए बहुधा सीढ़ियां बनी

1 त्यक्त्वा दीनादीनदीनाधिनाथा दीना बद्धा येन सारंगपुर्यां।
योषाः प्रौढाः पारसीकाधिपाना ता संख्यातुं नेव शक्नोतिकोपी ॥२६८॥
महोमदो युक्ततरोन चैपः स्वस्वामिघातेन धनार्जनरवे ।
इतीव सारंगपुरं विलोड्य महंमद त्याजित्वान्महंमदं ॥२६९॥
"एतद्दग्धपुरान्तिवाडवमसौ यन्मालवाभोनिधिं ।
क्षोणीशःपिबति स्मखड्ग चुलुकस्तस्मादगस्त्य. स्फुटं ॥२७०॥
(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति अप्रकाशित)

हुई है। सर्वोच्च भाग पर एक गुंबज बना हुआ है, जहाँ का प्रत्येक पार्श्व १७ फुट लम्बा है। वेदी के ऊपर के भाग से गुंबज तक की ऊंचाई १२२ फुट है। सारे स्तम्भ पर क्या बाहर, क्या भीतर सर्वत्र सुन्दर खुदाई का काम, मूर्तियां बनी हुई है।

इसका द्वार दक्षिणाभिमुख है। द्वार में प्रवेश करते ही सामने जनार्दन की मूर्तियां दृष्टि गोचर होती है। वहां से दो सीढ़ी चढ़ कर प्रथम मंजिल की परिक्रमा में जाने पर क्रमशः अनंत, रुद्र और ब्रह्मा की मूर्तियां तीनों पार्श्वों के मध्य की ताको में बनी है। ब्रह्मा के निकट से दूसरे मंजिल में जाने की सीढ़ियां बनी है। दूसरी मजिल की तीनो पार्श्वों के मध्य की ताको में हरिहर (आधा शरीर विष्णु का और आधा शिवका), अर्द्धनारीश्वर (आधा शरीर शिवका और आधा पार्वती का) और हरिहरपितामह (विष्णु, शिव और ब्रह्मा तीनो देवताओ की सम्मिलित एक मूर्ति) की मूर्तियाँ मुख्य है। इनके मध्य के रिक्त स्थानो मे क्रमशः अग्नि, यम, भैरव, वरुण वायु, धनद, ईशान और इन्द्र इन दिक्पालो की मूर्तिया बनाई गई है। तीसरी मजिल के तीनो पार्श्वो के मुख्य ताकों में विरंचि, जयन्त, नारायण और चन्द्रावर्क पितामह की मुख्य मूर्तियां है। चौथी मंजिल नीचे लिखी हुई मूर्तियो से भरी हुई है—त्रिखण्डा, तोत्तला, त्रिपुरालक्ष्मी, नन्दा क्षेमकरी, सर्व्वती, महारंडा, भ्रामणी, सर्वमगला, रेवती, हरिसिद्धि, लीला, सुलीला, लीलागी, ललिता, लीलावती, उमा, पार्वती, गौरी, हिंगुलाज श्री·· ·,[1] हिमवती आदि देवियों, बसंत, शिशिर, हेमंत, शरद, वर्षा और ग्रीष्म, ऋतुओं, गङ्गा, यमुना और सरस्वती नदियाँ तथा गंधर्व, विश्वकर्मा और कार्तिकेय की मूर्तियां बनी है। पांचवी मंजिल के तीनो पार्श्वो के मध्य की ताको में क्रमशः लक्ष्मीनारायण, उमा महेश्वर और ब्रह्मा-सावित्री की युगल मूर्तियाँ है। इनके मध्य के रिक्त स्थानो में परशु, त्रिशूल, खड्ग शक्ति, कुंत, तोमर, तूण, शक्तिशाल, भिल्ल, चक्र, शार्ङ्गधर, हल, भिंडि, डण्ड, मुद्गर, पाशिका, कणक, कर्तरी, छुरिका, करवाल, फरिका, फलक, शंकु, अंकुश, दुःस्फोट, भुशुंडी, पट्टिश, अर्गला, फारिका, मृणाल, डमरू, कमल, आदर्श शकु और खट्वाङ्ग नामक शस्त्रो की मूर्तियां बनी है। इनके नीचे मूर्तियो की एक और पंक्ति है, जिसमें रुद्रलिंग (शिवलिंग), कर्पुरमंजरी, शय्या,

1 जिन मूर्तियो के नाम का अंश जाता रहा है, उनके स्थान में चिन्ह किया गया है।

संभोग, शिल्पी[1] (कीर्तिस्तम्भ बनाने वाला) मृदंगिनी, नटी, शिक्षाकार, वाधिक पाच (नाटक के), हनुमान, सीता, राम लक्ष्मण सुग्रीव, अर्जुन, भीम, युधिष्टिर, नकुल, द्रौपदी, सहदेव, भिल्ल, दंभ, भैरव, वैताल, भूत, कुलटा, तरुणी, स्नातवनिता, मालिका, सुवा, अक्षमाला और कमंडलु की मूर्तिया है। छठी मजिल के तीनो पार्श्वों के मुख्य ताको में क्रमशः महा सरस्वती, महालक्ष्मी, और महाकाली की मूर्तियां है। बीच के खाली स्थानो में भृंगीगण, तपस्वी (कई जगह कौने में) याभ्यांशक्ति, आग्नेय-शक्ति, वैणिक सेवक, भैरव, नट, हनुमत, लक्ष्मण, चमरहस्ता, व्यजनिनी, सेविका (कई स्थानो पर) कुभहस्ता, सावित्री, ब्रह्मा, गायत्री, गणधर, गणी, गलहार, शिर्वालग, पांडुरोगण, वारूणी, भैरवी, महाकाल, नर्तकी, सेवक, वरुण, भैरव गणेश, कार्तिकेय, शिव पर्वती, सितोगण, असितोगण, विजया, जया, नट, नर्तकी (कई जगह) श्रुतिधर, वांशिक, मार्दगिकं, कौवैरी, वायवी, शिवपरिचारिका, पूजक, शिवभक्त, गायक, नंदीगण, भिल्ल, किरात रुद्र, शबरी रूप, भिल्ली आदि की प्रतिमाए बनी है। सातवी मजिल में की सीढ़ियों के ऊपर के भाग में किन्नर युग्म बना है। इस मजिल में वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलदेव और बुद्ध आदि विष्णु के अवतारों की मूर्तियां है। यहां से सीढियो के द्वारा आठवीं मंजिल पर पहुँचते है। पाषाण की सीढियां, जो प्रत्येक खंड की परिक्रमा के अन्त से आरम्भ होकर ऊपर की मंजिल में जाती है, यहां समाप्त होती है। आठवी मंजिल में मध्य का भाग (गर्भभाग) न होने से वहां कोई मूर्ति-नहीं है ओर न झरोखे है, यहा चारो स्तम्भ बने हुए है और बाकी हिस्सा खुला हुआ है। यहां से लकडी की एक सीढी लगी हुई है, जिसके द्वारा दर्शक नवीं मजिल में पहुंच सकते है और जिस पर गुबज[2]

---

1 शिल्पकारो की चार मूर्तिया खुदी हुई है, जिनमे से एक जइता की मूर्ति कुर्सी पर बैठी हुई है और उसके पास ही तीन खडी हुई मूर्तिया उसके पुत्रो की है, जिनके नाम नापा-पामा और पुजा दिए हुए है। यह चारो इस स्तम्भ के बनवाने वाले मुख्य शिल्पी थे; क्योंकि 'शिल्पन' खोद कर फिर प्रत्येक के नीचे उनके नाम खुदे है। दूसरी मंजिल वाले लेख मे भी इनमे से तीन नाम दिए हुए है।

2 यह गुबज उस पर बिजली गिरने से गिर गया था, जिससे वि० सं० १९११ मे महाराणा स्वरूपसिंह ने किसी प्राचीन मंदिर का गुम्बज उखड़वा कर उसे यहा लगवा दिया, जिससे उसमे कमलो आदि की रंकित

बना है । गुंबज के नीचे के भाग में कई शिलाओ पर खुदी हुई वि० सं० १५१७ मार्गशीर्षवदि ५ सोमवार की प्रशस्ति लगी हुई थी, जिसकी अब केवल दो शिलाएं पहली और अन्त के पूर्व की विद्यमान है और वे भी कुछ बिगड़ी हुई दशा मे है। उनमें ४८ श्लोक बचे हैं । इस प्रशस्ति की वि० स० १७३५ फाल्गुनवदि ७ को किसी पंडित ने पुस्तकाकार नकल की थी, जो हमें मिल गई है । उससे पाया जाता है कि पहले ४० श्लोको में बप्प (बापा) वशी महाराणा हमीर से महाराणा मोकल तक का वर्णन है । तदनन्तर फिर एक से श्लोक का आरम्भ कर १८७ श्लोको में प्रशस्तिकार तथा उसके वश का परिचय है । उक्त लिपि के लिखे जाने के समय भी कुछ शिलाए नष्ट हो चुकी थी, जिससे कुभा के वर्णन के श्लोक ४३—१२४ तक जाते रहे, तिस पर भी जो कुछ अंश प्रशस्ति में कुम्भकर्ण के युद्धो, का शिल्पकार्यों, विद्या सम्बन्धी कार्यों आदि का बहुत कुछ वर्णन मिलता है, जो अन्य साधनो से ज्ञात नही हो सकता ।

ऊपर लिखी हुई समस्त मूर्तियो के ऊपर या नीचे उनके नाम भी खुदे हुए है; जिससे हिन्दूओ के पौराणिक अनेक देवताओं की मूर्तियो का ज्ञान सपादन करने वालो के लिए यह अद्वितीय साधन है । गणपति आदि की मूर्तिया बाहर की तरफ खुदी हुई है। भारत भर के तमाम अजायबघरो में भी इनमें से केवल थोड़ी ही मूर्तिया सुरक्षित है। प्रतिमा परिचय के इस अलभ्य सग्रह को देखकर भारतवर्ष के पुरातत्त्व विभाग ने इन सब मूर्तियो के फोटो का एक ग्रन्थ प्रकाशित करने का विचार किया और उदयपुर राज्य ने उसके लिए पर्याप्त सहायता भी देना स्वीकार

बराबर नही जमी । यह त्रुटि वास्तव मे खटकती है । †

सम्पादकीय-टिप्पण

† इस कीर्तिस्तम्भ की दीवारो मे दरारे होकर ऊपरी भाग झुक गया था और ऊपर की मंजिल के गिर जाने का भय था । अतएव उदयपुर के महाराणा फतहसिंह के राज्य काल के पिछले वर्षो मे इसके जीर्णोद्धार का कार्य आरम्भ होकर वर्त्तमान महाराणा भूपालसिहजी के शासन काल मे समाप्त हुआ, जिससे महाराणा कुम्भा की कीर्ति रक्षित होगई है, एव चित्तौड का दुर्ग देखने वाले यात्रियो को वह उक्त महाराणा की शिल्पकला-प्रियता का आदर्श बतलाता है । इस बार के जीर्णोद्धार मे ऐसी भूले नही की गई है, जिनका श्री० ओझाजी ने उल्लेख किया है ।

किया, परन्तु उन सबका फोटो लेना असम्भव जानकर उक्त विभाग ने इन तमाम मूर्तियों के चित्र तैयार करवा लिए हैं, जिनके पुस्तकाकार प्रकाशित होने पर भारत के विद्वानो के लिए पोराणिक मूर्तियो की अपूर्व सामग्री उपस्थित होजायगी । मैंने कई बार इस कीर्तिस्तम्भ में बैठकर प्राचीन मूर्तियो के सम्बन्ध की अपनी शङ्काएँ निवृत्त की है ।

इसकी दूसरी मजिल में उत्तर या पूर्व की जाली पर दो पक्तियों का एक लेख खुदा हुआ है, जिसका आशय यह है कि वि० स० १४६६ फाल्गुनसुदि २ महाराजाधिराज राणा श्री कुंभकर्ण के विजय राज्य के समय सूत्रधार जैता और उसके पुत्र नापा और पूंजा श्री समिद्धेश्वर को प्रणाम करते है। इस लेख से निश्चित है कि नीचे की वेदी और कीर्ति-स्तम्भ की दो मंजिलें उक्त संवत् तक बन चुकी थी । अतएव उसका आरम्भ वि० स० १४६५ या १४६६ से हुआ होगा । उक्त स्तम्भ की समाप्ति वि० सं० १५०५ माघसुदि १० को हुई थी[1] ।

भारतवर्ष में इसके बराबर ऊँचा कोई दूसरा स्तम्भ या मिनार नहीं है । इस स्तम्भ के भीतर और बाहरी हिस्से में सचित्र सुन्दर खुदाई का काम है और इसके महत्त्व का इसके साक्षात् देखे बिना अनुमान ही नहीं किया जा सकता । इसके बनाने में कई करोड रुपये व्यय हुए होगे। इतिहास प्रेमियो, भारत के प्राचीन शिल्प के अनुरागियो और हिन्दू जाति के गौरव का अभिमान रखने वालो से हमारा सविनय अनुरोध है कि वे एक बार चित्तोड़ की वीर भूमि में पदार्पण कर राजपूत जाति के गौरव के इस एक मात्र अवशेष महाराणा कुभा के अपूर्व अश्रुत और दर्शनीय स्मारक-कीर्तिस्तम्भ को देखकर जीवन सफल करें।

(मनोरमा, काशी वर्ष ३, भाग २, सख्या ५, पृ० ५५४–५८ सम्मेलनांक-
फरवरी १९२७, वि० सं० १९८३) ।

---

1 पुण्येपंचदशेशते व्ययगते पंचाधिकेवत्सरे ।
माघेमासिवलक्षपक्ष दशमी देवेज्यपुष्यागमे ।
कीर्तिस्तम्भमकारयन्नरपतिः श्री चित्रकूटा चले
नानानिर्मित निर्जरावतरणै मेरोर्हंसंतंश्रियं ।।१८५।।
(कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति अप्रकाशित)

प्रकरण चौथा

विविध

१—यूनानी राजदूत और वैष्णव धम

प्राचीन शिलालेख और पुस्तक आदि से हिन्दुस्तान में बसने वाले प्राचीन काल के यूनानियो (ग्रीक) लोगो में से कितने एक के बौद्ध धर्म ग्रहण करने के उदाहरण तो मिल जाते है, परन्तु भारतवर्ष के प्राचीन शोध के अध्यक्ष मि० मार्शल साहब के यत्न से गत वर्ष एक शिलालेख मिला, जिससे पाया जाता है कि तक्षशिला के यूनानी राजा ऐंटि आल्किडस (Antıalkıdas) का दूत हेलिआंडारस् (Helıodors) वैष्णव धर्म के भागवत सम्प्रदाय का अनुयायी था। उस लेख के भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिए विशेष उपयोगी होने के कारण हम इसका परिचय कराते हैं।

सेंट्रल इंडिया के ग्वालियर राज्य के भेलसा जिले का मुख्य स्थान भेलसा (भिलसा) है जो बौद्धो के पवित्र प्राचीन स्तूपो के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ के स्तूपो के विषय में जनरल कनिंग्हाम साहिब ने 'भिलसा टोप्स' नाम का एक बहुमूल्य ग्रथ प्रकाशित किया है। इसी भेलसा से थोड़ी दूर पर बेस नगर नाम का एक छोटा सा गांव है, जिसके निकट दूर-दूर तक प्राचीन काल के इतिहास प्रसिद्ध विदिशा नगरी के खंडहर है, जिनकी छानबीन जनरल कनिंग्हाम साहब ने सन् १८७७ ईस्वी में की, जिसका विस्तृत वर्णन उन्होंने अपनी प्रकट की हुई 'आर्किआलॉजिकल् सर्वे' रिपोर्ट की दूसरी जिल्द (पृ० ३६–४६) मे किया है। वहाँ पर उन्होने बेतवा और बेस नदियों के संगम के पास प्राचीन एक विशाल स्तम्भ का पता लगाया, जिसका सुन्दर चित्र ऊंचाई के नाप के साथ उक्त रिपोर्ट की प्लेट १४ वीं (प्रथम चित्र) में उन्होंने दिया है। वह स्तम्भ वहां पर 'खम्भा बाबा के नाम से प्रसिद्ध है और उसको पवित्र समझते हैं। कई यात्री उसके लिए वहां जाते है उसके आगे जानवरो का बलिदान करते है और उस पर सिंदूर चढ़ाते हैं। जिस समय कनिंग्हाम साहब ने इस स्तम्भ की जाच की, उस समय सारे स्तम्भ पर सिंदूर का गहरा रंग जमा हुआ था और लोग उसको पवित्र मान कर पूजते थे, इस कारण सिंदूर को उखाड़ कर पूरी जांच करना संभव न हुआ। उसकी ऐसी स्थिति पर से भी उन्होने यह अनुमान किया कि वह गुप्तों के

समय का होना चाहिए और सिंदूर के नीचे उसके बनाने वाले का नाम समय आदि प्रकट करने वाला लेख होना चाहिये, परन्तु जब वहाँ के पुजारियो ने उनसे यह कहा कि उस पर कोई लेख नही है, तब वे निराश होकर वहाँ से लौटे। दैवयोग से वह सिंदूर का रग अधिक मोटा होने के कारण कुछ वर्ष हुए स्वय उखड़ गया और पत्थर निकल आया, परन्तु लोग फिर उस पर सिंदूर लगाते ही रहे। गत वर्ष के जनवरी मास में मिस्टर मार्शल साहब वहाँ पर पहुँचे, उस समय ग्वालियर राज्य के इजीनियर मि० लेक साहब ने उस स्तम्भ के हिस्से पर अक्षरो के निशान देखे और थोड़ा सा सिंदूर हटाते ही अक्षर स्पष्ट दिखलाई दिये। फिर मि० मार्शल साहब ने उस स्तम्भ को साफ करवाया तो उस पर दो लेख निकल आये, जिनके लिए वे सारे शिक्षित समाज के धन्यवाद के भागी है। ये लेख गुप्तों के समय के नही, किन्तु उससे बहुत पहले के अर्थात् ईस्वी सन् के पूर्व की दूसरी शताब्दी की प्राचीन लिपि में खुदे हुए है, जो मौर्य वशी राजा अशोक के शिलालेखो की लिपि से बहुत ही मिलती है। इन दो लेखो में हमारा यह लेख है। मिस्टर मार्शल साहब ने उस लेख की छाप तैयार कर एक तो डॉक्टर ब्लाक (Dr. Thes Block) के पास भेजी तथा दूसरी छाप तथा उसका फोटो डॉ० फ्लीट साहब के पास इग्लैड भेजा। डॉ० ब्लाक साहब का तैयार किया हुआ उक्त लेख का रोमन अक्षरातर तथा अग्रेजी भाषान्तर मि० मार्शल साहब ने "भारतीय प्राचीन शोधसम्बन्धी टिप्पणियां (Notes on Archaeological exploration on India, 1908-9) नामक अपने लेख में छपवाया (रायल एशियाटिक सोसाइटी के सन् १९०९ जर्नल की अक्टोबर की सख्या में, पृ० १०५५-५६) और साथ ही उसका फोटो भी प्रकट किया। डॉ० फ्लीट साहब ने भी अपना तैयार किया हुआ, उसका रोमन अक्षरान्तर तथा अंग्रेजी अनुवाद सहित उसी संख्या (पृ०१०७७–९२) में छपवाया।। फिर मि० देवदत्त भंडारकर ने उक्त छपे हुए फोटो पर से उसका रोमन अक्षरान्तर तथा अंग्रेजी भाषान्तर बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल (अंक २३, (ठीक-ठीक पाठ)पृ० १०३) में प्रकाशित किया। परन्तु इन तीनो अक्षरान्तरों में एक में भी अंतिम पक्ति का फोटो तथा छाप मे उक्त पंक्ति के कुछ अक्षरों का स्पष्ट न होना ही था। फिर इस वर्ष मे मि० लेक साहब ने उक्त स्तंभ को साफ करवा कर उस लेख की एक उत्तम छाप प्रोफेसर वेनिस साहब के पास भेजी जिसमे अंतिम पक्ति के अक्षर स्पष्ट पढे गये और मख्य कठिनाई दूर हो गई।

उक्त लेख का नागरी अक्षरान्तर तथा भाषान्तर नीचे लिखा जाता है—

अक्षरान्तर

(१) देव देवस वा [सु] देवस गरुड ध्वजे अय
(२) कारितोइ [अ] होलिओ दोरेण भाग-
(३) वेतन दिअस पुत्रेण तखसिला केन
(४) योन इतेन आगतेन महाराज स
(५) अतिलि कितस उपता सकासं रजो
(६) कासी पुत्तस [भा] ग भद्रस त्रातारस
(७) वसेनस चतुरसेन राजेन बधमानस

भाषान्तर

"देवताओ के देवता वासुदेव का यह गरुड ध्वज तक्षशिला के रहने वाले (Dion) के पुत्र भागवत, हेलिओदोर (Heliodors) नामक यवनदूत ने यहां पर बनवाया, (जो) महाराज अंतलिकित (Antialkidas) के यहां से त्रातार राजा काशी पुत्र भागभद्र के पास (उसके) प्रवर्द्धमान राज्य वर्ष १४ वे में आया था।"

टिप्पणी

भाषा— इस लेख की भाषा प्राकृत है, परन्तु सस्कृत से बहुत ही मिलती हुई है।

हिन्दुस्तान के यूनानी (ग्रीक) राजाओ के सिक्को पर के खरोष्ट्री (गाधार) लिपि के लेखो की भाषा भी इसी प्रकार की है।

गरुडध्वज—यह स्तम्भ गरुड ध्वज ही था। विष्णु मन्दिरो मे सामने कभी-कभी बडा स्तम्भ बनाकर उसके सिर पर गरुड की मूर्ति बिठलाते है। ऐसे स्तम्भो को गरुडध्वज कहते है। गुप्त राजाओ के सिक्को मे ऐसे स्तम्भो के चिन्ह पाये जाते है।

तक्षशिला—पजाब का एक प्राचीन नगर, जिसका खण्डहर सिंधु और झेलम नदियो के बीच शाह ढेरी के पास होना जनरल कनिग्हाम प्रकट करते है। सिकन्दर बादशाह इस नगर में रहा था। यहा के राजा ने हिन्दू राजाओ मे सबसे पहले बिना लडे सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की थी। पीछे से इसी नगर मे यूनानी राजाओ की राजधानी रही थी और ग्रीक राजा ऐंटिआल्कि की राजधानी भी जान पडती है, यही थी।

दीअ—यह यूनानी नाम डीऑन (Dion) का सूचक है। जब एक भाषा के नाम दूसरी भाषा में लिखे जाते हैं, उस समय उनमे कुछ परिवर्तन हो ही जाता है। अशोक के लेखो मे ऐंटिओकस के स्थान पर अतियक, अतियोक या अतियोग लिखा मिलता है। ऐसे ही टॉलमी के तुरमाम ऐंटिगानस्ट को अतकिनि या अंतोकिनस, मेगस को मक या मग और अलेकजैन्डर को अलिकसन्दर लिखा है। मुसलमानो के समय के संस्कृत लेखो ने भी अमीर के स्थान पर हमीर और सुलतान के स्थान पर सुरत्राण लिखा है और अब भी ऐसा होता है।

भागवत—वैष्णवो के अनेक सम्प्रदायों मे सबसे प्राचीन भागवत सम्प्रदाय, जिसके अनुयायी भगवद्भक्ति के कारण भागवत् कहलाते हैं। वे वेद विहित यज्ञादि कर्मो को गौण भगवद् भक्ति को ही मुख्य मानते हैं।

हेलिओदोर—यह यूनानी (ग्रीक) नाम 'हेलिऑडारस के वास्ते लिखा गया है।

अंतलिकित—यह यूनानी नाम 'ऐंटि आल्किडस' का प्राकृत रूप है। ऐंटीआल्किडस पजाब का राजा था ओर वह ई० स० से पूर्व की दूसरी शताब्दी मे हुआ। उसकी राजधानी तक्षशिला थी। हेलिऑडारस इसी का दूत था, जो इसका भेजा हुआ विदिशा के राजा भागभद्र के पास गया था। इस राजा के कई चादी के सिक्के मिले हैं। जिनके एक तरफ प्राचीन ग्रीक लिपि मे ग्रीक भाषा का लेख है ओर दूसरी ओर खरोष्ट्री लिपि मे "महरजस जयधरस अंति अलिकिदस" लेख है। यूनान के बादशाह अलेकजैन्डर (सिकन्दर) ने ई० स० से ३२६ वर्ष पहले हिन्दुस्तान पर चढाई कर पंजाब तथा सिन्ध का बहुत कुछ भाग अपने अधीन किया था। उस पर तो यूनानियो का अधिकार नौ वर्ष के भीतर ही उठ गया, परन्तु हिन्दुकुश से उत्तर में बाक्ट्रिया का यूनानी राज्य (जिसे सिकन्दर ने ही कायम किया था) दृढ हो गया था। वहा के राजा युथिडिमस के पुत्र डिमिट्रिअस ने ईसा के लगभग १९० वर्ष पहले हिन्दुस्तान पर चढाई कर अफगानिस्तान, पजाब आदि पर फिर यूनानियो का राज्य जमा दिया, जो कई सौ वर्ष तक बना रहा।

इस समय के पच्चीस से अधिक राजाओ के सिक्के मिले हु, जिन पर के लेखो से उनके नाम तथा उपाधि आदि का पता लगता है। इन राजाओ मे से एक का भी नाम पहले किसी शिलालेख मे नही मिला था। बेस नगर का लेख ही पहला लेख है, जिसमे पजाब के यूनानी राजा का नाम मिलता है।

त्रातार—(सस्कृत त्रात् से बना है) इसका अर्थ 'रक्षक' होता है, परन्तु यहा पर यह उक्त अर्थ का सूचक नही है, किन्तु उपाधि है। यह उपाधि किसी हिन्दु राजा के नाम के साथ लगी हुई पहले नही मिली, परन्तु यूनानी राजा डायामिडस, एयालोडाटस, स्टैये, मिनैडर, जोइलस, डायोनिअस, हिपस्ट्रिटस, हर्मिअस् आदि के सिक्को पर प्राकृत लेखो मे मिलती है और यूनानी उपाधि 'सोटर' (Soter) का प्राकृत अनुवाद है। उपर्युक्त लेख एक यूनानी राजदूत का खुदवाया हुआ होने से उसमे राजा की उपाधि यूनानी राजाओ की सी हो तो कोई आश्चर्य की बात नही, परन्तु वह उपाधि बहुत बडे राजाओ की थी, जिससे अनुमान होता है कि भागभद्र भी जिसके नाम से स्तम्भ लगा हुआ है, प्रबल राजा था।

काशीपुत्र—राजा भागभद्र के नाम के साथ उसकी माता काशी के नाम का उल्लेख किया गया है। प्राचीन लेखो मे कई राजाओ के नामो के साथ उनकी माताओ के नाम लिखे मिलते है, जिसका कारण कदाचित यह हो कि उस समय के राजाओ के अनेक रानियाँ होती थी, इससे कौन सी राणी के विशेष गुण या योग्यता के कारण पुत्र के नाम के साथ उसके नाम का भी उल्लेख किया जाता रहा हो। आध्रभृत्य (सातवाहन) वश के राजा शात कर्णं को गौतमी पुत्र, पुलुभाई को वसिष्ठ पुत्र, शकस को माढरी पुत्र लिखा है। ऐसे ही अनेक उदाहरण सिक्को तथा लेखो मे मिलते हैं। संस्कृत शिक्षा मे प्रसिद्ध वैयाकरणिक पाणिनि को दाक्षि पुत्र बतलाया है और प्रसिद्ध कवि भवभूति अपने को (जातुकर्णी पुत्र) लिखता है।

भागभद्र यह राजा किस वंश का था इस विषय में कुछ भी लिखा नहीं है। इसकी राजधानी विदिशा नगरी होना सभव है। महाकवि कालिदास के रचे हुए 'मालविकाग्निमित्र नाटक' से पाया जाता है कि सुगंवंश के संस्थापक राजा पुष्यमित्र के समय उसका पुत्र अग्निमित्र विदिशा नगरी में राज करता

था । भागभद्र का समय पुष्पमित्र के समय से बहुत दूर नहीं हो सकता । अतएव यह सभव है कि यह भी उसी वश से सम्बन्ध रखता हो ।

डॉक्टर ग्रियर्सन साहब ने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के सन् १९०७ के जर्नल में (पृ० ३११–३६) एक लेख* लिख कर यह बतलाने का यत्न किया था, कि "इसाई लोगो की एक बस्ती प्राचीन काल मे मद्रास हाते में स्थापित हुई थी, जहा के इसाईयो द्वारा हिन्दुओ में भक्ति मार्ग चालू हुआ है और दक्षिण से सारे हिन्दुस्तान में फैल गया हो' परन्तु उपर्युक्त बेसनगर के लेख से जो इसाई धर्म के प्रादुर्भाव से करीब दो शताब्दी पूर्वका है, स्पष्ट पाया जाता है कि उस समय भी हिन्दुस्तान में भक्ति मार्ग को मानने वाली भागवत सम्प्रदाय विद्यमान था और यूनानी लोग भी उसके अनुयायी बनते थे ।

मर्यादा प्रयाग, दिसम्बर १९१० ।

२–माघ कवि का समय

भारतवर्ष का प्राचीन लिखित इतिहास न होने के कारण यहां के अनेक विद्वानों आदि की जीवन-लीला के सम्बन्ध में हम कुछ भी नही जान सकते। इतना ही नही, किन्तु उनका समय भी अज्ञात ही है । हमारे यहाँ के विद्वान् निरभिमानी और निःस्वार्थी होने के कारण अपने ग्रंथों में बहुधा अपना नाम नही दिया करते थे; अपनी जीवन-लीला का वर्णन करना वे आडम्बर समझते थे । कभी-कभी किसी ने अपने वश का कुछ परिचय या अपने ग्रंथ की समाप्ति का समय भी दिया है, परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते है ।

माघ कवि का प्रसिद्ध ग्रंथ "शिशुपाल-वध" काव्य संस्कृत के प्रेमी बड़े उत्साह से पढ़ते है; क्योकि यह प्रसिद्धि चली आती है कि कालिदास के ग्रंथों में उपमा, भारवी के किरातार्जुनीय में अर्थ-गौरव और दण्डी के ग्रथो में पद-लालित्य की विशेषता है; परन्तु माघ का शिशुपालवध इन तीनों गुणों से परिपूर्ण है‡ । ऐसे विद्वद्रत्न का जीवनचरित्र तो दूर रहा, निश्चित समय भी अज्ञात ही है ।

---

* Modern Hinduism and its debt to the Nestorians.

‡ उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दंडिन: पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणा: ।।

(प्राचीन पद्य)

माघ कवि ने शिशुपालवध काव्य के अन्त में अपना वंश वर्णन किया है, जिसका आशय यह है—"राजा वर्मलात का सर्वाधिकारी (प्रधान मंत्री) सुप्रभदेव हुआ। राजा अपने हित की इच्छा से उस (सुप्रभदेव) के शुद्ध कथन को भगवान् बुद्धदेव के कथन के समान मानता था। सुप्रभदेव का पुत्र दत्तक हुआ जो क्षमाशील और धर्मपरायण था। उस सत्पुरुष के गुणो से रंजित होकर लोगो ने उसको सर्वाश्रय की उपाधि (उपनाम) प्रदान की थी। उस (दत्तक) के पुत्र (माघ) ने 'शिशुपालवध काव्य' की रचना की'*। माघ का दिया हुआ यह परिचय उसका समय निर्णय करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

शिशुपाल वध की भिन्न-भिन्न हस्त-लिखित पुस्तको में वर्मलात के स्थान पर "वर्मलाख्य, वर्मनाम, चर्मलात, धर्मनाभ, धर्मनाथ, धर्मलाभ, धर्मदेव, घर्मलात और निर्मलान्त" पाठ मिलते हैं†। प्राचीन नागरी लिपि में 'ध' और 'व' में अन्तर केवल यही था कि 'ध' के ऊपर सिर की आड़ी लकीर नही लगाई जाती थी, किन्तु 'व' में लगाई जाती थी। इस प्रकार 'ध' और 'व' का वास्तविक भेद न जानने के कारण नकल करने वालो ने वर्मलात को धर्मनाभ, धर्मनाथ धर्मलाभ, और धर्मदेव आदि लिख दिया हो, यह संभव है। ऐसे ही 'ध' को 'घ' पढ़कर "घर्मलात" और 'व' को 'च' पढ़कर "चर्मलात" लिख दिया हो।

---

* सर्वाधिकारी सुकृताधिकार, श्रीवर्मलातस्य बभूव राज्ञ ।।
असक्तदृष्टिर्विरजा सदैव देवोऽपर सुप्रभदेवनामा ।।१।।
काले मितं तथ्यमुदर्कपथ्यं तथागतस्येव जन सचेता ।।
विनानुरोधात्स्वहितेच्छयैव महीपतिर्यस्य वचश्चकार ।।२।।
तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्त' क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः ।।
य वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहिजनै प्रतीये ।।३।।
सर्वेण सर्वाश्रय इत्यनिन्द्यमानन्दभाजा जनित जनेन ।।
यश्च द्वितीय स्वयमद्वितीयो मुख्य सता गौणमवाप नाम ।।४।।
श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु ।।
तस्यात्मज सुकविकीर्तिदुराशयाद'
काव्य व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ।।५।।
(शिशुपाल-वध काव्य के अत का कवि-वंश वर्णन)

† महामहोपाध्याय पडित दुर्गाप्रसादजी लिखित शिशुपालवध काव्य का उपोद्घात, पृ० ६ (निर्णयसागर सस्करण) उक्त सब पाठो में से शुद्ध पाठ 'वर्मलात' है, जैसा कि उसी राजा के वि० स० ६८२ के शिलालेख मे मिलता है।

भिन्न २ युरोपियन विद्वानो ने माघ का समय भिन्न२ माना है। प्रोफेसर हर्मन जैकोबी ने ईस्वी सन् की सातवी शताब्दी* से पूर्व, डाक्टर फ्लीट ने ई० सन् की नवीं शताब्दी† के अन्त में, प्रोफेसर मेक्डोनल ने ईस्वी सन् की दसवी शताब्दी ‡ के पूर्व और डॉक्टर कीथ ने ईस्वी सन् ७०० के आस-पास उसका समय बतलाया है¶। महामहोपाध्याय पडित दुर्गाप्रसादजी का कथन है कि माघ पडित का समय ईस्वी सन् की नवी शताब्दी से पीछे किसी प्रकार नही माना जा सकता §। अब यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि वास्तव में माघ कवि कब हुआ ?

वि० सं० की ११ वी शताब्दी के पीछे जैन विद्वानो ने इतिहास की तरफ ब्राह्मणो की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया, जिससे उनके यहा कई चरित्र-ग्रथो की रचना हुई। उनमे जैन एव जैनेत्तर राजाओ, विद्वानों आदि के चरित अकित किए गए है, परन्तु उनमें भी पहले के राजाओ, विद्वानों आदि के सम्बन्ध में जो कुछ परम्परागत जनश्रुति से उन्होंने सुना, वही सग्रह किया है। इसलिये अपने से अधिक समय पहले के विद्वानों आदि के संबंध में जो कुछ उन्होने लिखा है, वह सब का सब प्रमाणयुक्त है, यह नहीं कहा जा सकता।

अब तक पहले के तीन सस्कृत लेखकों का माघ कवि के सम्बन्ध का कथन उपलब्ध हुआ है, जिसमें से दो जैन है; और उनमे भी सब से पहला जैन लेखक चन्द्रप्रभ सूरि है। उसने वि० सं० १३३४ में प्रभावक-चरित नामक चरितावलि लिखी, जिसके १४ वें श्रृङ्ग या प्रबन्ध में सिद्धर्षि का वृत्तान्त लिखा है। वह माघ के सम्बन्ध में उपयोगी है, इस कारण उसका आशय नीचे दिया जाता है।

"गुर्जर (गुजरात) देश के समृद्धिवान् श्रीमाल नगर के राजा वर्मलात का मन्त्री सुप्रभदेव था। उसके दो पुत्र दत्त (दत्तक) और शुभंकर हुए। दत्त (दत्तक) का पुत्र माघ हुआ, जिसका बाल-मित्र विद्वान् राजा भोज था। माघ ने 'शिशुपाल-वध काव्य' की रचना की, जिसकी सतत प्रशंसा हो रही है। माघ का चचा शुभंकर श्रेष्ठी (व्यापारी) बड़ा दानी हुआ। उसकी सती

---

* वियेना ओरिएण्टल जर्नल, जि० ३, पृ० १४१।

† वही; जि० ४, पृ० ६१ और आगे, तथा पृ० २३६ और आगे।

‡ मैक्डॉनल, ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, पृ० ३२९।

¶ कीथ; क्लासिकल् संस्कृत लिट्रेचर, पृ० ५४।

§ शिशुपालवध का उपोद्घात, पृ० ५।

स्त्री लक्ष्मी, विष्णु-पत्नी लक्ष्मी जैसी थी। जिससे सिद्ध नामक पुत्र हुआ। सिद्ध का विवाह एक कुलवती कन्या से हुआ था। पर वह दुराचरण में पडकर व्यभिचारी और जुआरी हो गया। अपनी माता के कठोर वचन सुनकर वह एक रात्रि को जैन उपाश्रय में जा रहा। वहां जैन साधुओ की तपस्या और निर्मल आचरण देखकर उसने जैन धर्म की दीक्षा लेकर साधु होना निश्चित किया। पिता ने उसको बहुत कुछ समझाया, परन्तु वह अपने निश्चय से नही डिगा। अत में उसने गर्गर्षि नामक जैन साधु से दीक्षा ग्रहण कर ली। फिर वह विद्याध्ययन कर बडा विद्वान् हो गया और सिद्धर्षि नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने 'उपमितिभवप्रपचा महाकथा' नामक बड़े ग्रंथ की रचना की। हरिभद्र सूरि का ग्रन्थ (ललित विस्तर) पढने से उसके चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा था, जिससे वह उनको भी गुरुवत् मानता था।"*

'प्रभावक चरित' मे सत्य का अंश अवश्य है; क्योकि माघ कवि ने स्वय अपने वंश का जो कुछ परिचय दिया है, वह ज्यो का त्यो उसमें भी पाया जाता है। वर्मलात भी गुर्जर देश¶ की राजधानी श्रीमाल (भीनमाल) नगर का राजा अवश्य था। चीनी यात्री हुएन्त्संग ने भी गुर्जर देश की राजधानी भीनमाल‡ होना लिखा है।

चन्द्रप्रभसूरि ने माघ या राजा वर्मलात का कोई समय नहीं दिया। परन्तु यदि वास्तव में सिद्धर्षि माघ का चचेरा भाई§ हो, तो माघ के समय का कुछ अनुमान हो सकता है; क्योंकि सिद्धर्षि ने अपनी "उपमितिभवप्रपंचा कथा" की समाप्ति संवत्सर '९६२ ज्येष्ठ सुदी ५, पुनर्वसु नक्षत्र और गुरुवार'

---

* चन्द्रप्रभसूरि-प्रणीत 'प्रभावकचरितम्' निर्णयसागर संस्करण, पृ० १९६-२०५ मे सिद्धर्षिसूरि प्रबन्ध।

¶ इस समय गुर्ज्जर अर्थात् गुजरात देश उसी प्रदेश को कहते है, जहाँ गुजराती भाषा बोली जाती है। परन्तु प्राचीन काल मे जोधपुर राज्य के उत्तरी हिस्से से लेकर दक्षिण तक का सारा प्रदेश तथा उससे मिला हुआ गुजरात का भडौच तक का सारा प्रदेश गुर्ज्जर देश या गुजरात कहलाता था। अब तो केवल उसका गुजरात का अंश ही उक्त नाम से प्रसिद्ध है। गुर्ज्जर देश के विशेष वर्णन के लिये देखो—नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ० ३४१—४६।

‡ बील; 'बुद्धिस्ट रेकर्ड्ज ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड,' जि०२, पृ० २७०।

§ माघ को सिद्धर्षि का चचेरा भाई मानने के लिये कोई प्राचीन लिखित प्रमाण नही है और न सिद्धर्षि ने अपनी 'उपमितिभवप्रपंचा कथा' मे इस विषय का कोई उल्लेख किया है। चन्द्रप्रभसूरि ने माघ से अनुमान ६०० वर्ष पीछे यह बात लिखी है, इसलिये यह विश्वसनीय नही प्रतीत होती।

के दिन होना लिखा है* । सिद्धर्षि ने इसमें केवल संवत्सर शब्द का प्रयोग किया है; परन्तु यह स्पष्ट नही लिखा कि यह शब्द विक्रम संवत् का अथवा शक सवत् का सूचक है । तो भी उसके साथ मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र और वार दिए हैं, जिससे गणित के द्वारा उसका निर्णय हो सकता है । सवत्सर ९६२ शक सवत् तो हो नही सकता, क्योंकि उक्त शक संवत् में ज्येष्ठ सुदि ५ को पुनर्वसु नक्षत्र और गुरुवार नहीं, किन्तु अश्लेषा नक्षत्र और सोमवार था । यदि वह विक्रम संवत् हो, तो यह भी निश्चय करना आवश्यक है कि वह चैत्रादि (उत्तरी गणना का) अथवा कार्तिकादि (दक्षिणी गणना का) विक्रम सवत् है । चैत्रादि विक्रम संवत् ज्येष्ठ सुदी ५ को भी पुनर्वसु नक्षत्र और गुरुवार नही, किन्तु पुष्य नक्षत्र और रविवार था । कार्तिकादि विक्रम संवत् ९६२ ज्येष्ठ सुदि ५ को पुनर्वसु नक्षत्र भी था और गुरुवार भी, ऐसा गणित से पाया जाता है । अतएव 'उपमितिभवप्रपंचाकथा' की समाप्ति कार्तिकादि विक्रम सवत् ९६२ (चैत्रादि ९६३) में होना निश्चित है । परन्तु माघ का इस संवत् के आस-पास होना हम स्वीकार नही कर सकते, जिसका कारण आगे लिखा जायगा ।

वि० सं० १३६१ § में वर्द्धमान (वढ़वाण, काठियावाड) में मेरुतुंगाचार्य ने अपनी 'प्रबन्धचिन्तामणि' नामक पुस्तक समाप्त की थी । उक्त पुस्तक में माघ पण्डित के विषय में जो कुछ लिखा है, उसका सारांश नीचे लिखा जाता है ।

"मालवे के प्रसिद्ध विद्यानुरागी राजा भोज ने माघ पंडित की विद्वत्ता का हाल सुनने पर उसको श्रीमाल (भीनमाल) नगर से बड़े सम्मानपूर्वक अपने यहाँ बुलाकर उसके विनोद तथा सुख का सब प्रबन्ध किया और रात्रि में वह उससे वार्तालाप करता रहा । दूसरे दिन प्रातःकाल ही माघ ने राजा से अपने घर जाने की आज्ञा मांगी । राजा ने विस्मित होकर पूछा कि क्या आपके भोजन आच्छादन आदि में कुछ त्रुटि रह गई है ? इस पर माघ ने खाने पीने की बात छोड़कर कहा कि मैं तो शीत-रक्षार्थ

---

* संवत्सरतनवके द्विषष्ठिसहिते लघिते चास्याः ।
ज्येष्ठे सितपञ्चम्यां पुनर्वसौ गुरुदिने समाप्तिरभूत् ॥

(उपमितिभवप्रपचा कथा)

§ बम्बई की छपी हुई (संवत् १९४४) 'प्रबन्ध चिन्तामणि' पृ० ३२३ ।

रजाइयों के ही बोझ से मर रहा हूँ । इस पर राजा ने खिन्न होकर उसे अपने घर जाने की आज्ञा दे दी और शहर के बाहर के बगीचे तक वह उसे पहुँचाने भी गया । वहां माघ पंडित ने राजा से प्रार्थना की कि आप भी कृपाकर मेरे यहाँ पधारें । जब राजा ने इस बात को स्वीकार किया, तब वह स्वदेश को लौटा । फिर कुछ समय के बाद राजा भोज माघ का वैभव आदि देखने के लिये श्रीमाल नगर को गया । माघ पडित उसकी पेशवाई कर उसे अपने घर ले आया । राजा उसका अतुल वैभव देखकर चकित हो गया और कुछ दिन वहाँ ठहरकर मालवे को लौट गया । कुबेर जैसी संपत्तिवाला माघ विद्वानो और याचको को उनके इच्छानुसार द्रव्य दे देकर वृद्धावस्था में दरिद्र हो गया, जिससे अपने देश में रहना उसने उचित न समझा । उसने 'शिशुपालवध महाकाव्य' की रचना की और अपनी स्त्री सहित जाकर धारा नगरी में निवास किया । उसने द्रव्य-प्राप्ति की आशा से अपना ग्रंथ (शिशुपालवध महाकाव्य) अपनी स्त्री को देकर उसे राजा (भोज) के पास भेजा । भोज ने उस स्त्री की वह दशा देखकर उस पुस्तक को खोला, तो प्रातःकाल के वर्णन का 'कुमुदवनमपश्रि*' से प्रारम्भ होने वाला एक श्लोक दृष्टिगोचर हुआ । उस श्लोक का भाव देखते ही उसने मुग्ध होकर कहा कि काव्य का तो कहना ही क्या, यदि उक्त श्लोक के लिये ही सारी पृथ्वी दे दी जाय तो भी कम होगा । फिर उसको एक लाख रुपये देकर बिदा किया । घर जाते हुए याचको नें उसे माघ की पत्नी जानकर याचना की, जिस पर उसने वह सारा द्रव्य उन लोगों को दे दिया । घर पहुँचकर उसने यह सारा हाल

---

* शिशुपालवध काव्य मे यह पूरा श्लोक इस तरह है—

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्ड
त्यजति मुदमुलूक प्रीतिमाश्चक्रवाक ।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीताशुरस्ते
हतविधिलसिताना ही विचित्रो विपाक ॥
सर्ग ११, श्लोक ६४ ।

आशय—सूर्य के उदय और चन्द्र के अस्त होने पर कुमुद (रात्रि में खिलनेवाले कमलो) की शोभा नष्ट हो जाती है और अम्भोज (दिन मे खिलनेवाले कमल) सुशोभित होते है, उल्लू निरानन्द और चक्रवाक सानन्द होते हैं । (इससे प्रतीत होत. है कि) भाग्यहीन और भाग्यव.न् के लिये कर्म की गति अवश्य विचित्र होती है ।

अपने पति से कहा। उसने उत्तर दिया कि तू मेरी मूर्तिमती कीर्ति ही है। फिर याचक लोग जब उसके पास माँगने को गए, तो अपने पास कुछ न देखकर उसको यहाँ तक दुःख हुआ कि उसका प्राणान्त हो गया। प्रातकाल जब राजा को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ, तब उसने सोचा कि श्रीमाल नगर मे स्वजाति के धनवानो के होते हुए भी माघ जैसा पुरुषरत्न भूख से मरा; इसलिये उसने श्रीमाल नगर का नाम 'भिल्ल-माल') भीलो का नगर) रक्खा *।"

मेरुतुंग ने यह वृत्तान्त किसी अन्य जनश्रुति के आधार पर लिखा है और उसने चन्द्रप्रभसूरि का प्रभावक चरित देखा हो, ऐसा पाया नही जाता; क्योंकि इन दोनों का वृत्तान्त परस्पर नही मिलता। प्रभावक चरित में यह स्पष्ट नही बतलाया गया कि माघ का बालमित्र भोज कहाँ का राजा था, परन्तु मेरुतुन्ग ने उसे मालवे का प्रसिद्ध राजा भोज† मान लिया है। मालवे का राजा भोज वि० सं १०७६ से १०९९[4] तक तो अवश्य विद्यमान था, ऐसा उसके दानपत्रो तथा ग्रंथादि से निश्चित है। भोज का देहान्त वि० सं० १०९९ और १११२ के बीच किसी समय

* मेरुतुग-रचित प्रबन्ध-चिन्तामणि (बम्बई संस्करण) पृ० ८३–८८।

† प्रभावक चरित मे विद्वान राजा भोज को माघ कवि का बालमित्र कहा है। यदि इस कथन मे कुछ सत्य हो, तो भी मालवे का राजा भोज उसका समकालीन नही हो सकता, क्योकि वह तो माघ से अनुमान ३४० से भी अधिक वर्ष पीछे हुआ था। माघ के समय के आस-पास भोज नाम का मौर्य (मोरी) वशी राजा चित्तौड और उसके आसपास के प्रदेश पर राज्य करता था, ऐसा चित्तौड के निकट के पूठोली गाव के पास मानसरोवर नामक तालाब पर लगे हुए, उक्त भोज के पुत्र राजा मान के वि० स० ७७० (ई० सन् ७१३)[5] के शिलालेख से पाया जाता है, परन्तु उसका कुछ भी संबन्ध भीनमाल से रहा हो, ऐसा मानने के लिये कोई कारण नही मिलता। ऐसी स्थिति मे यही अनुमान होता है कि प्रभावक चरित के कर्ता ने पुरानी जन-श्रुति के आधार पर माघ का भोज से सम्बन्ध बतलाया हो, जैसा कि मेरुतुग और बल्लाल पंडित ने बतलाया है।

4 (सम्पा० टि०) भोज के पिता सिंधुराज की मृत्यु वि० सं० १०६६ (ई० स० १००९) के लगभग मानी गई है। अतएव भोज के राज्याभिषेक का समय वि० सं० १०६६ (ई० स० १००९) से मान सकते हैं। (स० टि०)

5 यह शिलालेख कर्नल टॉड को मिला था, जो अब तक अप्रकाशित है।

हुआ था‡। मेरुतुंग के अनुसार माघ का समय 'उपमितिभवप्रपंचा कथा' की रचना से सौ वर्ष से भी अधिक पीछे मानना पड़ता है, जो संभव नहीं। ऐसे ही भोज ने माघ के मरने पर श्रीमाल का नाम भिल्लमाल नाम रक्खा, यह भी मानने योग्य नहीं है; क्योंकि भिल्लमाल नाम प्राचीन है और वि० सं० की सातवीं शताब्दी के अन्त के लगभग चीनी यात्री हुएन्त्सग ने गुर्जर देश की राजधानी का नाम 'भीनमाल' लिखा है, जो विशेष विश्वास योग्य है।

‡ मेरा लिखा हुआ, 'राजपूताने का इतिहास,' पहला खंड, पृ० १६१।

वह अब कहाँ पर है, यह भी कोई नही जानता; क्योकि उसके विषय मे अब तक किसी विद्वान् ने अपना मंतव्य प्रकट नही किया है। यदि वह सुरक्षित होता तो श्री ओझाजी तथा अन्य विद्वान् उस पर विशेष रूप से प्रकाश डालते हुए कोई अभिमत भी प्रकट करते।

टॉड ने उसका अग्रेजी अनुवाद अपने एनॉल्स एंड एंटीक्विटीज़ ऑफ राजस्थान में दिया है और उसका भाषानुवाद महामहोपाध्याय कवि राजा श्यामलदास के वीरविनोद नामक ग्रथ के प्रथम भाग के शेष संग्रह में छपा है।

इस ही आधार पर इतिहास के पाठको को चितौड पर आठवी शताब्दी मे मौर्यो का अधिकार होने का पता लगता है। उक्त भाषान्तरो में मौर्यवंशी राजा मान की चार पीढी का उल्लेख करते हुए (मान) को अवन्ती प्रदेश (उज्जैन, मालवा) का राजा होना बतलाया है, एवं भोज का पुत्र मान होने का वर्णन है, जिसने चितौड के समीप मानसरोवर नामक तालाब बना कर उपरोक्त वि० सं० ७७० (ई० स० ७१३) का शिलालेख लगाया।

प्रभावक चरित्र के रचयिता चन्द्रप्रभसूरि ने माघ कवि को राजा भोज का बाल्यमित्र होना बतलाया है। यहा भोज का आशय किसी भोज नामक विद्वान् राजा से है। मालवे का प्रसिद्ध परमार राजा भोज तो उसका समकालीन नही हो सकता, क्योकि वह उसके तीनसौ वर्ष पीछे हुआ था। रघुवंशी प्रतिहारो तथा गुहिलवंशियो में भी भोज या भोजदेव और काल भोज नामक राजा हुए है, एवं चित्तौड के शिलालेख में मौर्यवंशियो में राजा मानका पिता भोज लिखा है। माघ के समय-काल को देखते गुहिलवन्शी भोज

वल्लाल पडित रचित भोज-प्रबन्ध से पाया जाता है कि पडित माघ गुर्ज्जर देश से मालवे के राजा भोज की राजधानी धारा नगरी में गया और उसने अपनी स्त्री को एक पत्र देकर राजा भोज के पास भेजा। भोज ने उस पत्र को पढा, तो उसमें प्रातःकाल के वर्णन का उपर्युक्त "कुमुदवनमपश्रि" से प्रारम्भ होने वाला श्लोक देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ और माघ की पत्नी को तीन लाख रुपये देकर कहा कि माता! यह तो आपके भोजन के लिए है। कल प्रातःकाल आपके पति के दर्शन कर उनका मनोरथ पूर्ण करूँगा। आगे माघ की स्त्री के वह धन मार्ग में याचकों को दे देने और माघ के मर जाने का वृत्तान्त प्रबन्ध-चिन्तामणि के अनुसार ही है। भोजप्रबन्ध से इतना और अधिक पाया जाता है कि माघ की पत्नी अपने पति के साथ सती हुई और राजा भोज ने पुत्रवत् उन दोनों का अतिम सस्कार किया*।

वल्लाल पंडित का भोजप्रबन्ध कब बना, यह अनिश्चित है; परन्तु अनुमान होता है कि वह प्रबन्धचिन्तामणि से पीछे का बना हुआ होगा; क्योकि उसमें ऐतिहासिक तत्व कुछ भी नही है। उस (वल्लाल पडित) को तो यह भी मालूम नही था कि मुंज बड़ा भाई था और सिधुल छोटा, जिससे यह लिख दिया कि सिंधुल ने मरते समय अपने बालक पुत्र भोज को अपने छोटे भाई मुंज के सपुर्द कर दिया, जिसने राज्य के लोभ से भोज को मारने की आज्ञा दे दी आदि। सच बात तो यह है कि मालवे का

* भोज प्रबन्ध (बैल्वेडियर प्रेस का सस्करण) पृ० ६७–६९।

और रघुवशी प्रतिहार राजा भोजदेव माघदेव के समकालीन नही हो सकते। गुहिलवशी काल भोज (बापा रावल) और मौर्यवंशी भोज का समय माघ से मिलता है। इनमे से मौर्य राजा भोज का माघ से सम्पर्क रहा हो, यह सभव है। मौर्य राजा भोज का प्रत्यक्षत भीनमाल से कोई सबन्ध होना पाया नही जाता और न मालवे के परमार राजा भोज का। परन्तु वैवाहिक सम्बन्ध तथा अन्य रिश्तेदारी से मौर्यवशी राजा भोज का भीनमाल से संपर्क हो सकता है, क्योकि भीनमाल भी एक राज्य था। इसके अतिरिक्त राजा विद्यानुरागी, उदार और मिलनसार हो तो चाहे कितना ही दूर का विद्वान् हो, उससे सम्बन्ध हो जाता है। माघकवि का परमार राजा भोज के दरबार में जाने का, प्रबन्ध-चिंतामणि के कर्ता मेरुतुङ्ग का कथन इतिहास से विरुद्ध है, और वह स्वीकार योग्य नही है।

राजा मुंज (वाक्पतिराज, अमोघवर्ष) बड़ा विद्वान् था, जिसने अपने भतीजे भोज पर अधिक प्रीति होने तथा उसके योग्य होने के कारण उसी को अपना उत्तराधिकारी (गोद लेकर) बना दिया था । परन्तु वि० सं० १०५०-१०५४ के बीच कर्णाटक के राजा तैलप के साथ की लड़ाई में कैद होकर मारे जाने के कारण उसका छोटा भाई सिंधुल (सिंधुराज, नवसाहसांक) और उसके पीछे उसका पुत्र भोज मालवे का राजा हुआ था* । इसी तरह वल्लाल पंडित ने "भवभूति, बाण, कालिदास, मयूर, शंकर कवि, गोविंद पंडित, सीता पंडिता, वररुचि, लक्ष्मीधर, माघ" आदि जितने कवियों के नाम उसको मालूम हो सके, उन सबका भोज के दरबार में होना लिख दिया है, जो सर्वथा अविश्वसनीय है ।

इन तीनों ग्रंथकारों ने माघ को गुर्ज्जर देश का रहनेवाला बतलाया है, और पहले दो ने गुर्ज्जर देश की राजधानी भीनमाल का उल्लेख किया है, जो ठीक है । स्वयं माघ ने तथा प्रभावक चरित के कर्ता ने भी माघ के दादा को राजा वर्मलात का प्रधान मंत्री लिखा है; अतएव यदि राजा वर्मलात का ठीक समय ज्ञात हो जाय, तो माघ के समय का भी ठीक ठीक निश्चय हो सकता है ।

ई० सन् १९०४ (वि० सं० १९६१) में सिरोही राज्य का इतिहास लिखते समय उक्त राज्य में प्राचीन शिलालेखों की खोज करते हुए वहाँ के बसंतपुर (आबू पर्वत से थोड़े ही अन्तर पर) नामक प्राचीन नगर से राजा वर्मलात का वि० सं० ६८२ का शिलालेख मुझे मिला, जिसका आशय इस प्रकार है--"बड़े बलशाली और विजयी राजा वर्मलात का भृत्य (सामंत) वज्रभट, (सत्याश्रय) अर्बुद (आबू) का स्वामी था, जिसका पुत्र राज्जिल हुआ । उस समय बटाकर (वट, वसिष्ठपुर, वसंतपुर) स्थान में पितामह के पुत्र सत्यदेव वणिक (महाजन) ने अन्य कई गोष्ठिकों (मंदिरादि में चन्दा देनेवालों का समुदाय) सहित क्षेमार्या (क्षेमंकरी, खीमेल माता) नामक देवी का मन्दिर बनवाया † ।"

---

* मेरा लिखा हुआ 'राजपूताने का इतिहास,' पहला खंड, पृ० १८६–८७, और 'सोलंकियों का प्राचीन इतिहास,' प्रथम भाग, पृ० ७५-७७ और उनकी टिप्पणियां ।

† एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द ९, पृ० १९१–९२ ।

इस लेख से यह निश्चय हो गया कि वि० सं० ६८२ में आबू का प्रदेश वर्मलात नामक बड़े राजा के सामंत वज्रभट (सत्याश्रय) और उसके पुत्र राज्जिल के अधिकार में था। उक्त लेख में वर्मलात का नाम देखकर मैंने यह निश्चय किया कि माघ का दादा सुप्रभदेव जिस वर्मलात राजा का मंत्री था, वह यही राजा होना चाहिए, क्योंकि उसकी राजधानी भीनमाल आबू से केवल ४० मील उत्तर-पश्चिम में है। इस प्रकार माघ के दादा का समय निश्चित हो जाने पर उस (माघ) का समय भी सहज ही ज्ञात हो सकता है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास के सम्बन्ध में वह शिलालेख बहुत महत्व का था, इससे मैंनें उसकी सूचना सन् १९०५ ई० में अपने विद्वान् मित्र वियेना (आस्ट्रिया) निवासी डॉक्टर कीलहॉर्न को दी और उसकी एक छाप भेजकर यह भी सूचित किया कि इस लेख से माघ कवि का समय निश्चित हो जायगा। उक्त विद्वान ने १९०६ ई० में Gottingen Nachrichten नामक पत्रिका के दूसरे खंड में 'एपिग्राफिक नोटस्' नाम की अपनी भारतीय पुरातत्व सम्बन्धी लेख माला की संख्या १९ में उक्त लेख का आशय प्रकट कर माघ कवि का समय इसवी सन् की ७ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होना माना; और साथ में यह भी लिखा कि मिस्टर ओझा का मानना ठीक है†। डाक्टर कीथ ने ई० सन् ७०० के आस पास माघ का होना अनुमान किया है, जिसका आधार भी यही लेख है।

'उपमितिभवप्रपंचा कथा' चैत्रादि विक्रम संवत् ९६३ में समाप्त हुई थी। उसके कर्ता सिद्धर्षि को प्रभावक चरित के कर्ता चन्द्रप्रभ सूरि ने माघ का चचेरा भाई माना है, जो संशय युक्त ही है; क्योंकि माघ का वि० सं० की दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होना संभव नहीं।

माघ ने शिशुपालवध काव्य में राजनीति का वर्णन करते हुए श्लेषालंकार में राजनीति की समता शब्द-विद्या (व्याकरण शास्त्र) के साथ

† When Mr. Ojha first informed me of the discovery of this inscription, by a letter of the 24 th December 1905, he suggested that it would perhaps 'settle the date of the poet Magha'. My subsequent examination having confirmed this view······(Gottingen Nachrichten, 1906, Heft 2, P. I.)

की है, जिसका आशय यह है—"पद २ पर नियम का पालन करनेवाली अर्थात सब व्यवहार-वाली (अनुत्सूत्रपदन्यासा) सेवको को यथा योग्य जीविका देनेवाली (सद्वृत्ति) और स्थायी जीविका देनेवाली (सन्निबन्धना) होने पर भी यदि राजनीति गुप्त दूत रहित (अपस्पशा) हो, तो शोभा नही देती, जैसे कि सूत्रो के पदो को न छोड़नेवाले न्यासवाली (अनुत्सूत्र-पदन्यासा) सुन्दर वृत्तिवाली (सद्वृतिः) और भाष्य (महाभाष्य) वाली (सन्निबन्धना) शब्द-विद्या (व्याकरण विद्या) यदि उपोद्घात रहित (अपस्पशा) हो, तो शोभा नही देती*।" उपर्युक्त श्लोक के दूसरे भाग में वृत्ति†, न्यास‡ और पस्पश ¶ शब्द व्याकरण शास्त्र के सांकेतिक रूप

---

* अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्ति सन्निबन्धना ।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा । ।११२।।
(शिशुपालवध काव्य, सर्ग २)

† पाणिनि के सूत्रो पर जयादित्य और वामन की काशिकावृति, आचार्य रामचन्द्र की 'प्रक्रिया कौमुदीवृत्ति' और भट्टोजी दीक्षित की 'सिद्धान्त कौमुदीवृत्ति' प्रसिद्ध है । इसी तरह उनके पूर्व भी कुर्ण, चुल्ली, भट्टी और निर्ल्लूर के प्राचीन वृत्ति ग्रंथ भी थे, जो अब उपलब्ध नही है, किन्तु उनका उल्लेख व्याकरण के ग्रंथो मे मिलता है । कुर्ण की वृत्ति तो महाभाष्यकार पतंजलि के समय भी विद्यमान थी, ऐसा 'एङ् प्राचा देशे' (११७५) सूत्र की व्याख्या मे कैयट और नागोजी सूचित करते है । (महाभाष्य पर कैयट और नागोजी की टीका; बनारस संस्करण; पृ० ३६३) । इसी तरह पीछे से हेमचन्द्रसूरि ने 'सिद्धहैम शब्दानुशासन, नामक नवीन व्याकरण रचा । उस पर 'बृहद्वृत्ति' नामक विवरण और बृहद्वृति पर न्यास नाम का ग्रन्थ भी स्वयं लिखा था ।

‡ काशिका वृत्ति पर जिनेन्द्रबुद्धि ने टीका लिखी जो न्यास नाम से प्रसिद्ध है । पहले भी न्यास ग्रथ अवश्य होगे; क्योकि बाण भट्ट ने, जो माघ से पूर्व हुए, अपने हर्षचरित मे वृत्ति और न्यास का उल्लेख किया है—उपाया इव सामप्रयोगललितमुखा, गणपति, अधिपति, तारापति', श्यामल इति पितृव्यपुत्रा भ्रातर प्रसन्नवृत्तय गृहीतवाक्या', कृतगुरुपदन्यासा, न्यायवादिन सुकृत संग्रहाभ्यासगुरव लब्धस, धुशब्दा । लोक इवं व्याकरणेऽपि ······(बाण भट्टरचित 'हर्षरचित' निर्णयसागर-संस्करण, पृ० ८६-८७) । वृत्ति और न्यास दोनो प्रकार के ग्रंथो का उल्लेख स्वयं पाणिनि ने उक्थादि गण में किया है । (सिद्धान्तकौमुदी, निर्णयसागर प्रेस बम्बई मे छपी हुई, चतुर्थ संस्करण, पृ० ६५२) ।

¶ पतंजलि के महाभाष्य का प्रथम आह्निक, जो उस ग्रंथ का उपोद्घात है, पस्पश नाम से प्रसिद्ध है ।

है। व्याकरण के मूल सूत्रों की व्याख्या (टीका) रूप ग्रथो की वृत्ति २ के टीका रूप ग्रथों को न्यास ओर ग्रंथारम्भ के उपोद्‌घात रूप अश को पस्पश कहते है।

उक्त श्लोक की टीका करते हुए मल्लिनाथ ने व्याकरण के सम्बन्ध में वृत्ति को काशिका वृत्ति और न्यास को उक्त वृत्ति पर का न्यास (जिनेन्द्रबुद्धि का) मान लिया हे जो उपलक्षण मात्र है। वृत्ति और न्यास काशिका वृत्ति से पूर्व भी अनेक थे और पीछे भी बने, ऐसा पहले (टिप्पणी में) बताया जा चुका है।

चीनी यात्री इत्सिग अपने यात्रा-विवरण की पुस्तक मे भारतीय पठन-पाठन का वर्णन करते हुए काशिका-कार जयादित्य की मृत्यु अपनी पुस्तक के लिखे जाने से ३० वर्ष पूर्व अर्थात ई० सन् ६६१—६२ (वि० स० ७१८—१६) के आस-पास होना सूचित करता ह* और जिनेन्द्रबुद्धि या उसके न्यास का उल्लेख नही करता; अतएव जिनेन्द्रबुद्धि का इत्सिग के ग्रंथ की रचना अर्थात् ई० सन् ६६१—६२ (वि० सं० ७५२—५३) के पीछे ‡ होना अनुमान किया जा सकता है।

ई० सन् १६०७—८ में श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने राजा वर्मलात के समय के वसन्तगढ के उक्त शिलालेख का संपादन करते समय मल्लिनाथ के कथनानुसार "वृत्ति" को काशिकावृत्ति और "न्यास" को जिनेन्द्रबुद्धि का न्यास समझकर माघ का उन दोनो ग्रंथकारों के पीछे अर्थात् ईस्वी सन् की आठवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होना माना है† जो सर्वथा उपेक्षणीय है; क्योकि जयादित्य और जिनेन्द्रबुद्धि के पहले भी वृत्ति और न्यास के कई ग्रंथ थे, जैसा कि हम ऊपर बता चुके है।

माघ का दादा सुप्रभदेव भीनमाल के राजा वर्मलात का मंत्री था; और वर्मलात वि० सं० ६८२ (ई० सन् ६२५) में विद्यमान था; अतएव माघ का समय उसने अनुमानतः ५० वर्ष पीछे अर्थात् वि० सं० ७३२ (ईसवी ७ वीं शब्तादी के उत्तरार्द्ध) के लगभग होना निश्चित है।

ना० प्र० (त्रै० न०) काशी भाग ५; संख्या २, वि० सं० १६८३,
ई० स० १६२६।

---

* टाकाकूसू; इत्सिग की यात्रा का विवरण (अंग्रेजी) पृ० १७५-७६।

‡ टाकाकूसू; इत्सिग के यात्रा-विवरण की भूमिका पृ० ५३, ५४।

† एपिग्राफिया इंडिका, जि० ६, पृ० १६०।

३–कवि राजशेखर की जाति

काव्यमीमांसा , कर्पूरमंजरी, विद्धशालभंजिका, बालरामायण, बालभारत आदि[1] ग्रंथो का रचयिता प्रसिद्ध संस्कृत कवि राजशेखर किस जाति या वर्ण का था, इसका ठीक-ठीक निर्णय अब तक नही हुआ। काव्यमाला के सुप्रसिद्ध सम्पादक महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसादजी (स्वर्गवासी) ने ईस्वी सन् १८८७ की काव्यमाला में राजशेखर के कर्पूरमजरी और बालभारत नाटको का बडी योग्यता के साथ सम्पादन किया, और कर्पूरमंजरी की विस्तृत संस्कृत भूमिका में राजशेखर का बहुत कुछ परिचय दिया था। उन्होने उक्त कवि की जाति का निर्णय करते हुए लिखा था—"राजशेखर ब्राह्मण था वा क्षत्रिय, यह संदिग्ध है । बालरामायण आदि में वह 'उपाध्याय', 'गुरु' आदि शब्दो से अपना परिचय देता है, जिससे उसका ब्राह्मणत्व स्पष्ट प्रतीत होता है; क्योकि क्षत्रिय को अध्यापनादि का अधिकार नहीं है। 'राजशेखर' नाम का समास (विग्रह) 'राजाओं का शेखर (शिरोमणि)' करना भी उचित नहीं है। उचित समास तो यही है कि 'राजा अर्थात् चन्द्र है शेखर जिसका'; क्योंकि कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना में राजशेखर नाम का पर्याय 'रजनीवल्लभ-शिखंडः, मिलता है, जिसका अर्थ—'रजनीवल्लभ' (चन्द्र) है, शिखड जिसका' होता है। कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना में राजशेखर कवीन्द्र की गेहिनी (स्त्री) को चाहमान कुल की मौलिमाला (सिर पर धारण करने की पुष्पमाला) कहा है। चाहमान कुल 'चौहान' नाम का प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल है, जिसमें हमीर, पृथ्वीराज आदि राजा हुए हैं। उस कुल की कन्या इस युग में ब्राह्मण की स्त्री कैसे हो सकती है ? अतएव 'राजशेखर क्षत्रिय था' ऐसा मानना भी विशेष अनुचित प्रतीत नहीं होता[2] ।"

ई० स० १९०१ में क्रिस्टिआनिआ युनिवर्सिटी (नार्वे) के प्रसिद्ध पुरातत्व-बेत्ता और संस्कृत के विद्वान् स्टीनकॉनो ने 'हार्वर्ड ओरिएंटल् सीरीज' नाम की ग्रन्थमाला में राजशेखर की कर्पूरमंजरी का अनेक हस्तलिखित प्रतियों के

---

1 राजशेखर के ऊपर लिखे हुए पाँच ग्रथ ही प्रसिद्धि मे आये है, परन्तु हेमचन्द्राचार्य ने अपने काव्यानुशासन विवेक मे राजशेखर के 'हर-विलास' का नाम भी दिया है (स्वनामाकता यथा राजशेखरस्य हरविलासे) (पृ० ३३५) और उसमे से दो श्लोक भी उद्धृत किये है। उज्ज्वलदत्त ने भी हरविलास से आधा श्लोक उद्धृत किया है (२।२८); परन्तु अब तक वह ग्रथ प्रसिद्धि में नही आया।

2 कर्पूरमजरी की सस्कृत भूमिका, पृ० २–३।

आधार पर एक उत्तम संस्करण प्रकाशित किया था। उसमें राजशेखर का बहुत कुछ परिचय दिया है, जहाँ उसको यायावर ब्राह्मण मानकर लिखा है–– "भारत के अधिकाश ग्रंथकर्ताओ की अपेक्षा राजशेखर अपना तथा अपने कुल का विशेष परिचय देता है। बालरामायण (१. ६ १३) और विद्धशालभजिका (१. ५.) के अनुसार वह यायावर कुल का था। हॉल (पृ० १४, टिप्पणी) यायावर शब्द का अर्थ 'यज्ञ की अग्नि का रक्षक' करता है, और नारायण दीक्षित ने विद्धशालभजिका की टीका (१. ५.) में देवल का वचन उद्धृत कर बतलाया है कि यायावर का अर्थ 'एक प्रकार का गृहस्थ' है। "द्विविधो गृहस्थो यायावरः शालीनश्च"। गृहस्थ दो प्रकार के––यायावर और शालीन––होते हैं। परतु संभवतः यायावर एक कुटुम्ब का नाम है। यायावर ब्राह्मण है। आप्टे (पृ० १८) ने ठीक कहा है––"राजशेखर को भी ब्राह्मण मानना चाहिए; क्योंकि उसको भवभूति का अवतार माना है[3]। दूसरी बात यह भी है कि क्षत्रिय का 'उपाध्याय' या 'गुरु' होना उचित नही। इसके विरुद्ध राजशेखर की पत्नी अवन्तीसुन्दरी को कर्पूरमंजरी (१ ११.) में चौहान कुल की मौलिमालिका कहा है[4]; अतएव वह राजपूत कुल की राजकन्या थी[5]"।

ई० स० १९१६ में श्रीयुत सी० डी० दलाल एम्० ए० ने 'गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज' में राजशेखर की काव्यमीमांसा का सम्पादन करते समय उसकी अंग्रेजी भूमिका में राजशेखर की जाति का निर्णय करने के प्रसंग में लिखा है––"हमें यह ज्ञात हुआ है कि राजशेखर यायावर कुल का था, परन्तु यह निश्चित नहीं है कि वह ब्राह्मण था, या क्षत्रिय। यदि राजा महेन्द्रपाल का उपाध्याय होना उसके ब्राह्मण होने का समर्थन करता है, तो उसका राजशेखर नाम तथा उसकी स्त्री का चौहान वंश

---

3 बभूव वल्मीकभव· पुरा कविस्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखर.॥
बालभारत, १।१२

4 चाहुआणकुलमोलिमालिआ राजसेहरकइन्दगेहिणी।
भत्तुणो किइमवन्ति सुन्दरी सा पउञ्जइउमिच्छइ॥

कर्पूरमजरी १।११; और मेरे राजपूताने के इतिहास का पहला खंड, पृ० १३ टिप्पण १।

5 डॉ० स्टीन कॉनो सम्पादित कर्पूरमंजरी, पृ० १८०।

में उत्पन्न होना, ये उसको क्षत्रिय मानने की ओर प्रवृत्त कराते हैं[6]।"

उपर्युक्त तीनों ग्रन्थ-सम्पादकों के लेखों से राजशेखर की जाति का सन्तोषजनक निर्णय नहीं होता।

राजशेखर अपने नाटकों में अपना विशेष परिचय देता है। विद्धशालभंजिका और बालभारत में वह अपने को यायावर[7] बतलाता है, और बालरामायण में लिखता है—"जिस यायावर कुल में अकालजलद, सुरानन्द, तरल, और कविराज (या तरल कविराज) आदि विद्वान् हुए, उसी कुल में यह महाभाग (राजशेखर) उत्पन्न हुआ है[8]।" अतएव निश्चित है कि हमारे लेख का नायक यायावर कुल में उत्पन्न हुआ था। अब यह निर्णय करने की आवश्यकता है कि यायावर कुल किस जाति या वर्ण से सम्बन्ध रखता है। ऊपर बतलाया जा चुका है कि नारायण पंडित देवल का वचन उद्धृत कर यायावर नाम को गृहस्थ का सूचक बतलाता है; परन्तु उससे कवि की जाति या वर्ण का निर्णय नहीं हो सकता।

आश्रमोपनिषद् में ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिव्राजक ये चार आश्रम मानकर प्रत्येक आश्रम के चार-चार भेद किए हैं[9]। गृहस्थ

---

6 काव्यमीमांसा की अंग्रेजी भूमिका, पृ० १४।

7 सूत्रधार.—(आकर्ण्य) अये यायावरेण दौहित्रिना कविराजशेखरेण विरचिताया विद्धशालभजिकानाम्न्या नाटिकाया वस्तुपक्षेपो गीयते।

विद्धशालभजिका (कलकत्ता संस्करण) पृ० ७।

(विमृश्य च) अहो मसृणेद्धता सरस्वती यायावरस्य।

बालभारत, पृ० १।

8 स मूर्तो यत्र सीद्गुणगण इवाकालजलदः
सुरानन्द सोऽपि श्रवणपटुपेयेन वचसा।
न चान्ये गण्यन्ते तरलकविराजप्रभृतयो
महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले॥

बालरामायण, १।१३।

9 अथातश्चत्वार आश्रमाः षोडश भेदा भवन्ति। तत्र ब्रह्मचारिणश्चतुर्विधा भवन्ति····।१। गृहस्था अपि चतुर्विधा भवन्ति····।२। वानप्रस्था अपि चतुर्विधा भवन्ति····।३। परिव्राजका अपि चतुर्विधा भवन्ति····।४।

माइनर उपनिषद्ज ऑटो श्रडर, पी० एच० डी० (Otto Schrader, Ph. D) सम्पादित जिल्द प्रथम, सन्यास उपनिषद्ज, ई० स० १६१२ के संस्करण (व्यडिआर लाइब्रेरी के द्वारा प्रकाशित) में आश्रमोपनिषद्, पृ० ७७।

के चार भेद—वार्तीक वृत्तिवाले, शालीन वृत्तिवाले, यायावर और घोर सन्यासिक बतलाए हैं[10]। साथ में प्रत्येक भेद की व्याख्या भी है, जिसका आशय नीचे लिखा जाता है—

(अ) वार्तीक वृत्तिवाले वे गृहस्थ हैं जो अगर्हित कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य करते हैं[11] (अर्थात् वैश्य हैं)।

(आ) शालीन वृत्तिवाले यज्ञ करते हैं, परन्तु कराते नही, अध्ययन करते हैं, कराते नही[12] (अर्थात् क्षत्रिय हैं)।

(इ) यायावर लोग यज्ञ करते हैं और कराते हैं, अध्ययन करते और कराते है तथा दान देते और लेते हैं[13] (अर्थात् ब्राह्मण हैं)।

(ई) घोर सन्यासिक वे लोग हैं जो (अपने हाथ से) लाए हुए शुद्ध जल से कार्य करते हैं और प्रति दिन उंछ वृत्ति[14] से निर्वाह करते हैं[15] (यह भी ब्राह्मणो का एक भेद होना चाहिए)।

आश्रमोपनिषद् से ऊपर उद्धृत किए हुए गृहस्थ के चार भेदों में से तीसरे भेदवालो अर्थात् यायावरो के वे ही छः कर्म बतलाए गए हैं, जो मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि धर्मशास्त्रो में केवल ब्राह्मण के लिये ही नियत किये गये हैं[16]। अतएव यायावरो का ब्राह्मण होना निर्वि-

---

10 गृहस्था अपि चतुर्विधा भवन्ति वार्ताकवृत्तयः शालीनवृत्त यायावरा घोरसंन्यासिकाश्चेति। आश्रमोपनिषद्।

11 वार्तीकवृत्तयः कृषिगोरक्षवाणिज्यमगर्हितमुपयुजानाः शतसवत्सराभि. क्रियाभिर्यजन्त आत्मान प्रार्थयन्ते। आश्रमोपनिषद्

12 शालीनवृत्तयो यजन्तो न याजयन्तोऽधीयाना नाध्यापयन्तो ददतो न प्रतिगृह्णन्त. शत० (वही)।

13 यायावरा यजन्तो याजयन्तोऽधीयाना अध्यापयन्तो ददत प्रतिगृह्णन्त शत० (वही)

14 अन्न की फसल काट लेने के बाद खेतों में पड़ी हुई अन्न की बालियों आदि को अथवा भूमि पर बिखरे हुए अन्न के दानों को चुनकर उसी पर अपना निर्वाह करने के व्रत को उछ वृत्ति कहते हैं। महाभारत के नकुलो-पाख्यान में एक उंछ वृत्तिवाले कुटुम्ब का अच्छा वर्णन है।

15 घोरसन्यासिका उद्धृतपरिपूताभिरद्भिः कार्यं कुर्वन्त प्रतिदिवसमा-हृतोच्छवृत्तिमुपर्युजाना. शत० आश्रमोपनिषद्।

16 अध्यापनमध्ययन यजन याजनं तथा।
दानं प्रतिगृह चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ मनुस्मृति, १।८८।
इज्याध्ययनदानानि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च।
प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा॥ याज्ञवल्क्यस्मृति, ५।१२८

वाद है ।

श्रीमद्भागवत मे ब्राह्मणो की चार वृत्तियो में से एक यायावर वृत्ति भी मानी गई है[17] । इससे भी आश्रमोपनिषद् के कथन की पुष्टि होती है ।

अब यह जानना भी आवश्यक है कि यायावर उपनामवाले ब्राह्मणो की मूल वृत्ति या जीविका किस प्रकार की थी और वे यायावर क्यों कहलाए । या-या-वर शब्द का अर्थ 'जा जा कर याचना करना या (अन्नादि की) भिक्षा माँगना' है। प्राचीन लेखको ने भी उक्त नाम का यही आशय माना है।

श्रीमद्भागवत् की टीका में श्रीधर ने लिखा है—'यायावर शब्द प्रति दिन अन्न की याचना करने का सूचक है'[18] ।

विजयध्वजतीर्थ का कथन है—'यायावर एक प्रकार का भिक्षाचरण है, अर्थात् सचय न करना और एक दिन में व्रीहि आदि जो अन्न मिले, उसको उसी दिन काम में लाना सूचित करता है[19]' ।

वीर राघवाचार्य का मत है—'यायावर शब्द प्रवासी का सूचक है और उसके कर्म को 'यायावर्यम्' कहते हैं, जो प्रवास आदि से याचना-पूर्वक संग्रह करना बतलाता है'[20] ।

इन कथनो का निष्कर्ष यही है कि प्रारम्भ में जो ब्राह्मण फिर-फिर कर भिक्षावृत्ति मात्र से ही निर्वाह करते, एक दिन के निर्वाह जितना अन्न मिलने पर सन्तुष्ट रहते और सग्रह नही करते थे, वे यायावर कहलाते

---

17 वार्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोछनम् ।
विप्रवृत्तिश्चतुर्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा ।।
श्रीमद्भागवत, ७।११।१६।

18 यायवरा । यायावर प्रत्यहं धान्ययाचा ।
श्रीमद्भागवत पर श्रीधर की टीका।

19 यायवरं भैक्षचर्यविशेष । असचय एकाहित्व तत्तदिनार्जित व्रीह्या-देस्तद्दिन एव व्यय ''' वार्ता यायावर ज्ञेयमेकाहित्वमसचय इति ।
श्रीमद्भागवत की टीका मे उद्धृत विजयध्वज का कथन ।

20 यायावर्यम् । यायावर. प्रवासी । तस्य कर्म यायावर्यम् । प्रवासादिना याचापूर्वकमर्जनम् ।
श्रीमद्भागवत की टीका मे उद्धृत वीरराघवाचार्य का कथन (७।११।१६) ।

शिलालेख में, जो राजपूताना म्यूज़ियम (अजमेर) में सुरक्षित है, मंडोर के प्रतिहारों के मूल पुरुष हरिश्चन्द्र के विषय में लिखा है—'उसकी दो स्त्रियों में से एक ब्राह्मण कुल की और दूसरी क्षत्रिय वर्ण की थी।'[23]

(आ) घटियाला (जोधपुर राज्य में) से मिले हुए वि० सं० ६१८ के प्राकृत भाषा के शिलालेख में, जो प्रतिहार राजा कक्कुक के राजत्वकाल का है, उस (कक्कुक) के पूर्व पुरुष ब्राह्मण हरिश्चन्द्र की स्त्री भद्दा (भद्रा) का क्षत्रिय वर्ण की होना लिखा है।[24]

(इ) घटियाले से ही मिले हुए वि० स० ६१८ के एक संस्कृत शिलालेख में भी वैसा ही उल्लेख है[25]।

ये उदाहरण उत्तरी भारत (उत्तरापथ) से सम्बन्ध रखते हैं; पर (दक्षिणापथ) के शिलालेखों में भी ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं। प्रसिद्ध अजंटा की गुफाओ से कुछ ही मीलो के अन्तर पर गुलवाड़ां गांव के पास की बौद्ध गुफा की पिछली दीवार में एक बड़ा लेख खुदा हुआ है, जिसके नीचे का बहुत कुछ अंश नष्ट होने पर भी ऊपर का बहुत सा हिस्सा सुरक्षित है। उक्त लेख से पाया जाता है—"दक्षिण में उत्तम ब्राह्मणो का एक वंश वल्लूर नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस वंश में (भृगु, अत्रि, गर्ग और आंगिरस के समान यज्ञ) प्रकाश उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र देव हुआ जो कई राजाओ के राज्यो का स्वामी हुआ। उसका पुत्र सोम हुआ, जिसने कई ब्राह्मण और दो क्षत्रिय कन्याओ से विवाह किया। क्षत्रिय कन्या से उसके रवि

---

23 विप्र श्रीहरिचन्द्राख्य पत्नी भद्रा च क्षतृ(त्रि)या।
''। तेन श्रीहरिचन्द्रेण परिणीता द्विजात्मजा।
द्वितीया क्षतृ(त्रि)या भद्रा महाकुलगुणान्विता॥
प्रतीहारा द्विजा भूता ब्राह्मण्या येऽभवन्सुता।
राज्ञो भद्रा च यान्सूते ते भूता मधुपायिन.॥
राजपूताना म्यूजिअम (अजमेर) मे रक्खे हुए मूल लेख से।

24 विप्पो सिरिहरिअंदो भज्ज आसित्ति खत्तिआ भद्दा।
घटियाले के शिलालेख की छाप से।

25 आसीत्प्रतीहारवन्श (वंश) गुरु सद्धि(द्वि)जः श्रीहरिचन्द्रः। अनेन राज्ञी क्षत्रियभद्राया जातः श्रीमान्सुतः श्री रज्जिल'। एपिग्राफ़िया इंडिका, जि० ६, पृ० २७६।

नामक पुत्र हुआ जो सारे मलय प्रदेश का स्वामी बना। ब्राह्मण कन्याओं से जो उत्पन्न हुए, वे वेदों में पारंगत थे। उन ब्राह्मणो का निवासस्थान अब तक वल्लूर नाम से प्रसिद्ध है। रवि का पुत्र प्रवर, उसका राम, राम का कीर्ति और उसका हस्तिभोज हुआ जो वाकाटक वंशी राजा देवसेन के समय विद्यमान था[26]।" आगे लेख अधिक बिगड़ा हुआ है, जहा हस्तिभोज के वंशजों के कुछ और नाम भी थे, जिनमें से निश्चय के साथ देवराज का नाम पढ़ा जाता है। यह शिलालेख वि० सं० की ६ वीं शताब्दी के लगभग का अनुमान किया जा सकता है।

इस प्रकार वि० स० की ६ वी तथा १० वीं शताब्दी के शिलालेखों से पाया जाता है कि उस समय से कुछ पूर्व तक भी ब्राह्मणों के विवाह क्षत्रिय कन्याओं के साथ होते थे और प्राचीन प्रणाली का समूल उच्छेद नही हुआ था। ऐसी दशा में ब्राह्मण राजशेखर का क्षत्रिय कन्या के साथ विवाह होने के कारण ही उसको क्षत्रिय अनुमान करना निर्मूल है। वास्तव में राजशेखर यायावर कुल का ब्राह्मण ही था।

भारत के प्राचीन विद्वानों तथा राजाओं का लिखित इतिहास न रहने के कारण सस्कृत के पडितो ने कही-कही नामो की समानता देखकर उनके सम्बन्ध मे भ्रमपूर्ण कल्पनाएं करके उनके इतिहास में और भी उलझन डाल दी है। ऐसा ही भ्रम राजशेखर के विषय मे भी हुआ है। माधवाचार्य ने अपने शंकर विजय में लिखा है—'केरल के राजा राजशेखर ने

---

26 अस्ति प्रकाशो दिशिदक्षिणस्या वल्लूरनाम्ना द्विजसत्तमाना[।]··[॥]
तस्मिन्नभूदाहृतलक्षणाना द्विजन्मना प्राथमकल्पकानाम् [।]
भृग्वत्रिगर्गाङ्गिरसा समानो द्विजर्षभो यज्ञ··प्रकाशः [॥]
तदात्मजो देव इवास देव· कृती गृहस्थो नयवान्क्रियावान्[।]
सराजक राष्ट्रमुपेत्य यस्मिन्धर्म्या क्रियाः पार्थ इव प्रचक्रे [॥]
सोमःस्तत. सोम इवापरोऽभूत्स ब्राह्मणः क्षत्रियवशजासु [।]
[श्रुतिस्मृतिभ्या] विहितार्थकारी द्वयीसु भार्यासु मनो दधार [॥]
स क्षत्रियाया कुलशीलवत्या मुत्पादयामास नरेंद्रचिन्ह [।]
सुत सुरूप रविनामधेय कृनाविपत्यं मलये समग्रे [॥]
द्विजासु चान्यासु सुनानुदारान् स (सोम?) वेदेषु समाप्तकामान् [।]
वल्लूरनाम्ना दिशि दक्षिणस्यामद्यापि येषाम्वसतिर्द्विजाना [॥]
रवेः सुतोऽभूत्प्रवराभिधानः श्री (रा) मनामाथ वभूव तस्मात [।]
तदात्मजः कीर्तिरभूत्सकीर्तिर्ब्बभूव तस्मादथ हस्तिभोजः [॥]
वाकाटके राजति देवसेने गु (णैषिकोशो) भुवि हस्तिभोजः [॥]

डॉ० जेम्स बर्जेस और पंडित भगवानलाल इद्रजी सपादित इन्स्किप्शन्स फ्रॉम दी केव टेम्पल्स ऑफ वेस्टर्न इडिया, पृ० ८८–८६।

अपने रचे हुए तीन नाटक शंकराचार्य को भेंट किए[27]। उक्त पुस्तक में उन नाटकों का नामोल्लेख नही है। ई० सन् की १६ वीं शताब्दी के लेखक सदाशिव ब्रह्मेंद्र ने कामकोटि पीठ (कुभकोणम् मठ) के शंकराचार्यों के वृत्तान्त की पुस्तक 'जगदगुरुरत्नमालास्तव' में केरल के उक्त राजा के विषय में लिखा है—'एक सट्टक और तीन नाटको के रचयिता अंधे यायावर राजशेखर का अंधत्व, वृत्तिगगाधर[28] ने अपनी मंत्र शक्ति से मिटा दिया[29]। फिर उसी (सदाशिव) के गुरु-भाई आत्मबोधेंद्र सरस्वती ने उक्त पुस्तक की टीका में केरल के उक्त राजा को कर्पूरमजरी सट्टक और बालरामायण, प्रचंडपाडव (बालभारत) और विद्धशालभजिका इन तीन नाटको का कर्ता मानकर[30] केरल के राजा राजशेखर तथा हमारे इस लेख के नायक कवि राजशेखर को एक मान लिया, जो भ्रम ही है। वास्तव में ये दोनो भिन्न व्यक्ति थे।

जैसे आजकल के अनेक बंगाली लेखकों में यह धुन समाई हुई है कि प्राचीन काल के प्रसिद्ध२ विद्वानो को जैसे बने वैसे बगाल निवासी सिद्ध करना और महाकवि कालिदास को भी वे अपनी हठधर्मी से बंगाली बताने लग गए है। ऐसी ही हठधर्मी त्रावणकोर राज्य के पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष श्रीयुत् टी० ए० गोपीनाथराव (स्वर्गवासी) ने कवि राजशेखर को केरल का राजा बतलाने में की है, और वह भी बहुत ही भद्दी तरह से । उनका कथन कवि राजशेखर की जाति से सम्बन्ध रखता है जिससे उसका सक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

त्रावनकोर राज्य के पुरातत्त्व विभाग के पडित वी० श्रीनिवास शास्त्री (स्मृतिविशारद) को चगनाशेरि के निकट के तलमन् इल्ल गांव से एक ताम्र-

---

27 ट्रावनकोर आर्कियालॉजिकल् सीरीज, जि० २, पृ० ६–१० ।

28 अभिनवशंकर, वृति गंगाधर को उक्त मठ का तीसरा शंकराचार्य बतलाता है। वही, पृ० १० ।

29 कृतसट्टकस्त्रिनाट्यबन्धव्रतयायावरराजशेखरान्धम् ।
हृतवन्त पनन्तमन्त्रशक्ति व्रतिगङ्गाधरमाश्रयेऽर्थसूवितम् ॥
जगद्गुरुरत्नमालास्तव (वही, पृ० १०) ।

30 कृतेति कृतं सट्टकं कर्पूरमञ्जरीनामरूपक येन कृतसट्टक त्रिनाट्यबन्धे बालरामायणप्रचण्डपाण्डवविद्धसालभञ्जिकाख्य रूपकत्रयविरचनेन यो व्रत: नियमस्तेन सहितास्त्रिनाट्यबन्धव्रत. स च य यायावरराजशेखर तदाख्य· कविस्तस्यान्ध्यमपाटवमक्ष्णोरागन्तुकत्वादिति ज्ञेयम् (वही, पृ० १०)।

पत्र वहां के राजा राजशेखर का मिला, जिसमें उक्त राजा के नाम के साथ 'श्रीराज,' 'राजाधिराज,' 'परमेश्वर' और 'भट्टारक' विरुद है । उसका संपादन करते समय श्रीयुत गोपीनाथ राव ने लिखा—"उक्त ताम्रपत्र का मिलना केरल के तथा सस्कृत साहित्य के इतिहास के लिये बहुत बडे महत्व का विषय है"[31] वह ताम्रपत्र उक्त राजा के १२ वें राज्य वर्ष का है। उसमें कोई सं० नही दिया, परन्तु उसकी लिपि के आधार पर उन्होने उसका समय ईसवी सन् ७५० और ८५० के बीच का स्थिर कर लिखा है—'इस राजा को तथा सस्कृत के प्रसिद्ध कवि राजशेखर को एक ही व्यक्ति मानने के प्रश्न का—जैसा कि संस्कृत के विद्वानो का मानना है—हम विचार किए बिना नहीं रह सकते[32]' । फिर राजशेखर के ग्रंथों में मिलनेवाली उसके सम्बन्ध की कुछ बातें अशुद्धता के साथ उद्धृत कर उन पर अपनी ओर से टीका टिप्पणी की है । उनमें से जिन २ बातो का सम्बन्ध हमारे इस लेख से है, उनको उक्त विद्वान् की टीका के साथ नीचे उद्धृत कर साथ ही उनके कथन की जांच की जाती है ।

(१–२) वह (राजशेखर) निर्भय (निर्भयनरेंद्र) उपनाम वाले महेंद्रपाल का गुरु था । उसको 'गुरु' 'उपाध्याय' आदि कहा है, और ये (गुरु आदि) विरुद बहुधा ब्राह्मणो के होते हैं, जिससे उसका ब्राह्मण होना माना जाता है; परन्तु उसको चाहमान कुल का भी कहा है, अतएव उसको क्षत्रिय ही मानना चाहिए[33] ।

इस पर टीका टिप्पणी करते हुए उन्होने लिखा है—"चाहमान नाम चेरमान के लिये अवश्य भ्रम से लिखा गया होगा । द्रविड़ के प्राचीन और मुख्य राजवंश चेरमान का पिछले समय में विस्मरण हो गया और अधिक नवीन एवं समुन्नत राजपूतों के चौहान वंश का नाम प्रसिद्धि में रह गया, जिससे उक्त भ्रम का होना अनुमान किया जाता है । उस (राजशेखर) को गुरु, उपाध्याय और यायावर कहा है; परन्तु ये कथन उसको क्षत्रिय तथा केरल का राजा मानने में बाधक नहीं है; क्योंकि बहुत प्राचीन काल से ही केरल के राजा ब्राह्मणों का सा जीवन व्यतीत करते, शास्त्रो का अध्ययन करते, जो शिष्य उनके पास अध्ययन करने को आते, उनको वे शास्त्र पढ़ाते और नियत (वृद्ध) अवस्था में अपने पुत्रादि को राज्य सौंपकर वानप्रस्थ या यायावर हो जाया करते थे[34]" ।

---

31 वही, पृ० ९ ।
32 वही, पृ० ९ ।
33 वही, पृ० १० ।
34 वही, पृ० १०–११ ।

गोपीनाथ राव का यह सारा कथन बहुधा कल्पित है और राजशेखर के ग्रंथों का अध्ययन सावधानी से न करने का ही फल है; क्योकि राजशेखर ने तो अपनी स्त्री अवंतीसुदरी को चौहान वंश की बतलाया है, अपने को सर्वज्ञ यायावर या यायावर कुल का कहा है; कहीं भी चौहान नही कहा। जब कि राजशेखर चौहान वंश का नही था, तो फिर चौहान नाम का भ्रम से चेरमान के स्थान में लिखा जाना[35] और उसको केरल के चेरमान राजवंश का मानना कैसे युक्तियुक्त कहा जा सकता है ?

(३) राजशेखर महोदय को अपनी राजधानी बतलाता और कन्याकुब्ज (? कान्यकुब्ज) और गाधिपुर नामों का उल्लेख करता है, जो महोदय के पर्याय है[36]।

इस पर टिप्पणी करते हुए उन्होने लिखा है––"राजशेखर की राजधानी महोदय के लिये हमें उसके राज्य को टटोलने को अन्यत्र (अर्थात्) उत्तरी भारत में जाने की आवश्यकता नही है महोदय तिरुवंजैक्कळम् अर्थात् कोडुगोळूर (वर्तमान क्रांगनौर) का प्राचीन नाम है, जैसा कि मध्ययुगीन तामिळ साहित्य और बहुत से शिलालेखादि में मिलता है। राजशेखर कन्या-कुब्ज और गाधिपुर को उत्तरी भारत के महोदय नगर के पर्याय बतलाया है जो ठीक है; क्योकि जो स्थान उत्तर (उत्तरी भारत) के महोदय नगर से अधिक महत्व के है[37] उनमें अपने नायक राम का दक्षिण की यात्रा को जाते हुए पहुँचना स्वाभाविक है[38]"।

उक्त महाशय का यह कथन तो बिलकुल ही निर्मूल है और कवि राज-शेखर को केरल का राजा राजशेखर ठहराने की हठधर्मी से ही लिखा गया है, जिसमें इतिहास का गला घोटने में भी कुछ कमी नही की गई। कवि राजशेखर अपने ग्रथों में कही भी अपने को महोदय (कन्नौज) का राजा नहीं

35 प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता स्टीन कॉनो ने तेरह हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर कर्पूरमन्जरी का सस्करण प्रकाशित किया, जिसमे तीन हस्त-लिखित प्रतियाँ तंजौर से प्राप्त की गई थी। परन्तु उनमे से एक मे भी 'चाहुआण' (चौहान) के स्थान पर चेरमान पाठ नही था। यह गोपी-नाथराव की हठधर्मी ही है।

36 ट्रावनकोर आर्कियालॉजिकल् सीरीज, जि० २, पृ० १०।

37 राजशेखर के कन्याकुब्ज (? कान्यकुब्ज) और गाधीपुर दोनो महोदय (कन्नौज) के ही पर्य्याय है न कि महोदय से भिन्न तथा अधिक महत्व के नगर थे जैसा कि गोपीनाथराव ने माना है।

38 ट्रावनकोर आर्कियालॉजिकल् सीरीज, जि० २, पृ० ११।

कहता और न महोदय को अपनी राजधानी बतलाता है। वह तो अपने तईं महोदय (कन्नौज) के राजा महेंद्रपाल का, जिसका उपनाम निर्भयनरेंद्र था, गुरु या उपाध्याय कहता है[39]। महेंद्रपाल कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहार (पडिहार) सम्राट् भोजदेव (आदिवराह) का पुत्र था[40]। महेंद्रपाल के पीछे कन्नौज के राज-सिहासन पर उसका पुत्र महीपाल (क्षितिपाल) बैठा[41], जिसके समय में भी कवि राजशेखर महोदय में रहा था, और उसके रचे हुए बाल-भारत नाटक का अभिनय महीपाल के दरबार में हुआ था। इतना ही नहीं, किंतु वह उक्त नाटक में महीपाल को रघुवंशी, आर्यावर्त का महाराजाधिराज तथा मुरल के राजा का सिर नीचा करानेवाला, मेकल के राजा के लिये हस्ति ज्वर, युद्ध में कलिंग के राजा को रोकनेवाला, केरल के राजा के आनंद का नाश करनेवाला, कुलुतवालो को जीतनेवाला, कुतलवालो के लिये कुठार रूप और हठात् रमठ के राजा की राजलक्ष्मी को छीननेवाला बतलाता है[42]। वास्तव में महीपाल आर्यावर्त का महाराजाधिराज और प्रबल राजा था,

---

39 पारिपार्श्विकः। अध इ। सट्टअं णच्चिदव्वं
स्थापक·। को उणतस्स कईं।
परिपार्श्विक।
भाव कहिज्जउ एअं को भणइ रअणिवल्लहसिहण्डो।
रहुउतचूडामणिणो महिन्दवालस्स को अ गुरु ॥५॥
स्थापक। (विचिंत्य) अए पण्होत्तर खु एदं (प्रकाशम्) राअसेहरो।··
बालकईं कइराओ णिब्भरराअरस्सतह उवज्झाओ····सो अस्स कईं
सिरिराअसेहरी··।··कर्पूरमंजरी, प्रस्तावना।

40 मेरे राजपूताने के इतिहास का पहला खंड, पृ० १६२—६३।

41 वही, पृ० १६३।

42 कथमेते महोदयमहानगरलीलावतंसा विद्वासः सामाजिका। तदेवं विज्ञापयामि। (अञ्जलिंबध्वा)· ····
नमितमुरलमौलिः पाकलो मेकलाना
रणकलितकलिङ्गः केलितट् केरलेन्दो·।
अजनि जितकुलूतः कुन्तलाना कुठारो
हठहृतरमठश्रीः श्रीमहीपालदेव· ॥७॥
तेन च रघुवंशमुक्तामणिना आर्यावर्तमहाराजाधिराजेन श्रीनिर्भयनरेन्द्र-नन्दनेनाधिकृताः सभासदः·····
बालभारत की प्रस्तावना।

जिसके अधीन राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़, मध्यभारत एव सतलज से लेकर बिहार तक का प्रदेश था। यदि गोपीनाथराव के कथनानुसार कवि राजशेखर केरल का राजा था, तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि कन्नौज के राजा महेंद्रपाल और महीपाल के यहाँ क्या वह नौकरी करने गया था? यदि राजशेखर केरल का राजा होता, तो कन्नौज के राजा महीपाल को वह "केरल के राजा के आनन्द का नाश करनेवाला कहे" यह कैसे संभव हो सकता है? वास्तव में हमारे कवि राजशेखर का उक्त नाम के केरल के राजा से कुछ भी सम्बन्ध न था।

गोपीनाथ राव नें कन्नौज के राजा महेंद्रपाल का, जिसका राजशेखर गुरु या उपाध्याय था, कुछ भी परिचय नहीं दिया। ऐसे ही उस (महेंद्रपाल) के पुत्र महीपाल के विषय में भी मौन धारण किया; जिसका कारण यही है कि यदि वे इन दोनो राजाओ को महोदय के राजा या आर्यावर्त के महाराजाधिराज कह देते, जैसा कि कवि राजशेखर ने अपने नाटको में लिखा है, तो फिर राजशेखर को महोदय का राजा कहने की कोई गुंजाइश ही उनके लिये न रहती।

इसी तरह उक्त महाशय का महोदय को कन्नौज न मानकर केरल का क्रांगनोर नगर मानना भी किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि राजशेखर बालरामायण में उक्त नगर का गंगा के तट पर होना बतलाता है, इतना ही नहीं किन्तु सीता को महोदय नगर बतलाने के प्रसग में उसी नगर को गाधिपुर और कान्यकुब्ज भी कहा है और कान्यकुब्ज के साथ फिर गंगा नदी का उल्लेख किया है[43]। यदि गोपीनाथ राव राजशेखर के नाटको को ठीक-ठीक पढ़ते, तो उनको अपना दुराग्रह स्वयं प्रतीत हो जाता।

(४) राजशेखर अपने प्रपितामह अकालजलद को महाराष्ट्रचूड़ामणि और अपने एक पूर्वपुरुष सुरानंद को चेदिमंडल का बतलाता है[44]।

---

43 इदं पुनस्ततोऽपि मन्दाकिनीपरिक्षिप्त महोदय नाम नगरं दृश्यते।

शश्वत् सुधामवसुधामहितं द्विषद्भि-
नो गाहित भवति गाधिपुरं पुरस्तात्।
वैदेहि देहि शफरीसदृश दृश त-
दस्मिन्नितम्बिनि नितम्बवहद्युसिन्धौ॥
इदं द्वयं सर्वमहापवित्रं परस्परालंकरणैकहेतु।
पुर च हे जानकि कान्यकुब्ज सरिच्च गौरीपतिमौलिमाला॥
बालरामायण, १०।८८–८९।

44 ट्रावनकोर आर्कियालॉजिकल् सीरीज, जि० २, पृ० ११।

इस पर अधिक विवेचन करते हुए उन्होने लिखा है—"भिन्न वंशो के इन दो राजाओ को राजशेखर ने अपना पूर्वज बतलाया है, जो असंगत प्रतीत होता है; और इसका समाधान तभी हो सकता है जब कि हम उनको उसके ननिहाल पक्ष के पूर्वपुरुष मानें[45] ।" राजशेखर को तो उन्होने केरल का राजा मान ही लिया था; इसलिये उसके पूर्वपुरुषों को भी राजा बतलाने की उनको आवश्यकता हुई । परन्तु केरल के राजा में अकालजलद, सुरानन्द आदि के नाम न मिलने से राजशेखर के बतलाए हुए उसके पूर्वपुरुषो के नामों को असगत कहना पड़ा और उनको भी कही न कही के राजा बतलाने की आवश्यकता हुई । महाराष्ट्र के राष्ट्रकूट (राठौड) वशी राजा कृष्णराज (प्रथम) का विरुद अकालवर्ष मिल जाने से अकालजलद को तो महाराष्ट्र का राठोड़ राजा अकालवर्ष (कृष्णराज) और सुरानंद को चेदि देश का कलचुरि (हैहय) वशी रणविग्रह (शंकर गण) अनुमान कर अपने चित्त को शात करना पड़ा । परंतु उनका यह कथन भी सर्वथा कल्पित एव अरण्यरुदन के समान है; क्योकि राजशेखर ने बालरामायण में अपने कुल का परिचय देते हुए अकालजलद, सुरानन्द, तरल और कविराज को अपना पूर्व पुरुष बतलाया है[46] और उनको कवि तथा यायावर कहा है, न कि कहीं का राजा । अकालजलद को महाराष्ट्र चूडामणि कहा है जिसका अर्थ महाराष्ट्र देश का राजा नही, किंतु वहा के विद्वानो या कवियो का शिरोमणि है । इससे यह भी अनुमान हो सकता है कि शायद वह महाराष्ट्र का निवासी हो। जल्हण पंडित ने अपनी सूक्तिमुक्तावलि में अकालजलद के सम्बन्ध का एक श्लोक राजशेखर का कहकर उद्धृत किया है, जिसका आशय यह है—"कविचकोर अकालजलद की वचन-चन्द्रिका का नित्य पान करते है, तो भी उसमें न्यूनता नही आती[47]" । यह तो उसकी उत्तम कविता की प्रशंसा ही है । वह उत्तम कवि था न कि राठौड़ राजा ।

अकालजलद और अकालवर्ष नामों मे कुछ सादृश्य तो अवश्य है, परन्तु सुरानन्द और रणविग्रह नामो में सादृश्य का सर्वथा अभाव होने पर भी गोपीनाथ राव ने सुरानंद को चेदि का कलचुरिवंशी राजा रणविग्रह

45 वही, पृ० ११ ।

46 देखो ऊपर १९४ टिप्पणी † ।

47 अकालजलदेन्दोः सा हृद्या वचनचन्द्रिका ।
नित्यं कविचकोरर्या पीयते न च हीयते ।।

सूक्तिमुक्तावलि ।

कैसे ठहरा लिया, यह बतलाना भी आवश्यक है। जल्हण पंडित ने सूक्ति-मुक्तावलि में सुरानंद की प्रशंसा में राजशेखर का एक श्लोक उद्धृत किया है, जिसका अभिप्राय यह है—"नदियों में नर्मदा, राजाओं में रण-विग्रह और कवियों में सुरानन्द ये तीनों चेदि मंडल (देश) के भूषण हैं[48]। उक्त श्लोक से ही सुरानन्द का चेदि देश से सम्बन्ध पाया जाता है, परन्तु उसमें तो उस (सुरानन्द) को उत्तम कवि एवं वहां के राजा रणविग्रह से भिन्न पुरुष कहा है। परन्तु गोपीनाथ राव ने रणविग्रह और सुरानन्द के नाम पास-पास आए देखकर सुरानन्द को चेदी का राजा रण-विग्रह मान लिया; क्योंकि उनको तो सुरानन्द को भी कहीं न कहीं का राजा ठहराना ही था। खेद की बात तो यह है कि इस प्रकार व्यर्थ ही बहुत कुछ हाथ पैर मारने पर भी वे तरल और कविराज को कहीं के राजा न बना सके और इसी से उनके नामों का उन्होंने उल्लेख तक नहीं किया।

गोपीनाथ राव का कवि राजशेखर की जाति के सम्बन्ध का ऊपर लिखा हुआ सारा कथन प्रमाणशून्य, निस्सार और दुराग्रहपूर्ण होने से किसी प्रकार आदरणीय नहीं है, क्योंकि न तो कवि राजशेखर चाहमान (चौहान) वंश का था, न चाहमान पाठ चेरमान के स्थान में भ्रम से लिखा जाना मानने के लिये कोई कारण है, न राजशेखर, महोदय या केरल का राजा था, न उसने महोदय नाम का प्रयोग केरल के क्रांगनोर नगर के लिये किया है, न उसका प्रपितामह राठौड़ वंश का राजा अकालवर्ष था और न सुरानन्द, चेदि का कलचुरिवंशी राजा रणविग्रह था। कवि राजशेखर कहीं का राजा नहीं, किंतु महोदय (कन्नौज) के प्रतिहार सम्राट् महेंद्रपाल का गुरु (उपाध्याय) और यायावर कुल का ब्राह्मण ही था*।

ना० प्र० स० (त्रै० न०) काशी भाग ६, स० २
वि० स० १९८२ ई० स० १९२५

---

48 नदीनां मेकलसुता नृपाणां रणविग्रह ।
कवीनां च सुरानन्दश्चेदिमण्डलमण्डनं ।।
सूक्तिमुक्तावलि।

सम्पादकीय टिप्पण

* स्वर्गीय डाक्टर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने कवि राजशेखर की जाति पर विचार करते हुए भिन्न २ तर्क और कल्पनाओं के आधार पर उसको

यायावर जाति का ब्राह्मण माना है। जयसलमेर के बडे भंडार के सग्रह (बस्ता स० २३८) मे राजशेखर कृत 'छन्दशेखर' नामक छन्द शास्त्र पर सस्कृत मे लिखा हुआ ग्रथ विद्यमान है, जिसके पाँचवे अध्याय के अन्त मे वि० सं० ११७६ (ई० स० ११२७) उक्त ग्रथ चित्रकूट महादुर्ग (चित्तौडगढ) मे लिखे जाने का निर्देश है। वही उसका कुछ परिचय भी दिया है, जो निम्नलिखित है—

यस्यासीत्प्रपितामहोयसइति श्रीलाहटस्त्वयिक—
स्तात्ष्ठक्कुरदुद्दक: सजननी श्रीनागदेवी स्वयम् ॥
सश्रीमानिह राजशेखरकवि. श्रीभोजदेवीप्रियं
छन्द:शेखर महितोऽप्यरचयत्प्रीत्यै सभूयात्सताम ॥२३८॥

इति राजशेखरकृतेछन्द शेखरे शीर्पकोत्साहादि पट्चतुर्द्विपदीध्रुवकाणि पंञ्चमोध्याय: ॥

इत्याहतश्रीराजशेखरकृतंछन्द शेखर नामछन्द: शास्त्रपरिसमाप्त मिति ॥ संवत् ११७९ ज्येष्ठ सुदि ५ शुक्रेह अद्येह श्री चित्रकूटमहादुर्गे प्राकृतच्छन्द लिखित मिति ॥

श्री एच० डी० वेलकर ने जर्नल आंफ दि वॉम्बे ब्राच ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के जिल्द २२ (१९४६ ई०) पृ० १ मे छन्द शेखर ऑफ राजशेखर कवि शीर्षक लेख मे इस विषय पर विचार करते हुए राजशेखर को जैन बतलाकर उसके परदादा का नाम यश, दादा का नाम लाहट, और पिता का नाम दूदक तथा माता का नाम नागदेवी माना है, जैसा कि उपरोक्त श्लोक संख्या २३८ मे उल्लिखित है। इसके साथ ही उसको ठक्कुरवंशी (क्षत्रिय ?) और मालवे के परमार राजा भोज का समकालीन माना है।

स्पष्ट है कि डॉ० ओझा वर्णित कवि राजशेखर और छन्द: शेखर का रचयिता राजशेखर भिन्न २ व्यक्ति है, जो प्रतिहारवशी राजा भोजदेव के आश्रित कवि राजशेखर के लगभग २५० वर्ष पीछे हुआ।

४–कविराजशेखर का समय

प्रसिद्ध संस्कृत कवि राजशेखर की जाति के सम्बन्ध का एक लेख मैंने इसी वर्ष की नागरीप्रचारिणी पत्रिका (अंक २, पृ० १६२–२०६) में प्रकाशित किया है। इस लेख के द्वारा यहां के पाठको के सन्मुख उक्त कवि के समय-निर्णय की चर्चा की जाती है। प्राचीन काल के भारतीय विद्वानो का लक्ष्य निवृति मार्ग की ओर होने से उनमें से बहुत ही कम ने अपने ग्रन्थों में अपना तथा वश आदि का परिचय दिया है, और अपने ग्रन्थो की रचना का समय तो और भी कम विद्वानों ने अंकित किया है, जिससे अनेक विद्वानों का ठीक ठीक समय निर्णय करना एक कठिन समस्या हो गई है। ऐसी दशा में उनके समय निर्णय के लिये उनके ग्रंथो में दी हुई कुछ बातें ही कभी कभी सहायक होती है, जिससे उनका समय निर्णय करने का यत्न करने वाले विद्वानो में बहुधा मतभेद हुआ करता है। राजशेखर के समय के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ है। अब तक हिन्दी साहित्य में प्राचीन भारतीय कवियो एवं विद्वानों के समय निर्णय के सम्बन्ध में बहुत ही कम लिखा गया है। अतएव यदि कभी कभी इस विषय की चर्चा होती रहे, तो हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक अश की अणुमात्र वृद्धि होने के अतिरिक्त हिन्दी के अनुरागियों को अपने यहां के प्राचीन काल के प्रसिद्ध विद्वानो की जीवन-लीला का ठीक समय जानने का कुछ कुछ साधन भी उपलब्ध हो जाय।

भिन्न भिन्न विद्वानो ने काव्यमीमासा, कर्पूरमंजरी, बालारामायण, बालभारत, विद्धशालभजिका आदि ग्रथो के प्रसिद्ध कवि राजशेखर का समय भिन्न-माना है, जिसका परिचय नीचे दिया जाता है।

(अ) प्रोफेसर मैक्समूलर ने ईसवी १४वी शताब्दी में राजशेखर का होना माना है[1]।

संस्कृत लेखको में राजशेखर नाम के एक से अधिक विद्वान् हुए है, जिनमें से चतुर्विशतिप्रबन्ध कर्ता जैन राजशेखर[2] ने अपना ग्रथ वि० स० १४०५ (ई० स० १३४८) में समाप्त किया, यह उक्त ग्रंथ के अंत में दिए हुए संवत्

---

1 मैक्समूलर, 'इण्डिआ, व्हाट कैन इट टीच अस्' ? पृ० ३२८।

2 जैन राजशेखर प्रश्न वाहन कुल के कोटिकगण के मध्यम शाखान्तर्गत हर्षपुरीयगच्छ के अभय देवसूरि (मलधारी) की शिष्यपरपरागत तिलकसूरि का शिष्य था। उसने दिल्ली मे रह कर जगतसिंह के पुत्र साह महणसिह की प्रेरणा से वि० सं० १४०५ मे चतुर्विशति प्रबन्ध (प्रबंधकोष) की रचना की थी।

से ज्ञात होता है[3] । इसी से प्रोफेसर मैक्समूलर ने जैन राजशेखर को तथा कर्पूरमंजरी आदि के इस नाम वाले कर्ता को एक मान कर हमारे लेख के नायक का समय भी ईसवी १४वी शताब्दी स्थिर किया, जो किसी प्रकार माननीय नही हो सकता, क्योकि उन दोनो के बीच में कई शताब्दियों का अन्तर है । इतना ही नहीं, किन्तु दोनो की भाषा मे भी कोई समानता नहीं है । जैन राजशेखर की भाषा वैसी परिमार्जित और सरस नही है, जैसी कर्पूरमंजरी आदि के कर्ता की है ।

(आ) हेमन हॉरेसे विल्सन ने उक्त कवि का जीवन काल ईसवी ११वीं शताब्दी के अंत या १२ वी के प्रारम्भ में स्थिर किया है[4] ।

(इ) डॉक्टर रामकृष्ण गोपाल भाडारकर ने ईसवी १०वीं शताब्दी में[5] प्रॉफेसर स्टीन कॉनो ने ई० स० ९०० (वि० सं० ९५७) के आसपास[6] सी० डी० दलाल ने ई० स० ८८० (वि०सं० ९३७) और ९२० (वि०सं० ९७७) के बीच[7], और डॉ० कीलहॉर्न ने सीयडोनी[8], से मिले हुए शिलालेख का सपादन करते समय प्रसंगवशात् कवि राजशेखर का ईसवी दसवीं शताब्वी के प्रारंभ में होना बतलाया है[9] ।

(ई) राजशेखर ने अपने को भवभूति का अवतार कहा है, जिसके आधार पर वामन शिवराम आपटे ने इन दोनो के बीच अनुमान सौ वर्ष का अंतर होना मानकर राजशेखर का ईसवी ८वीं शताब्दी के अत में होना स्वीकार किया है[10] ।

---

3 शरगगनमुनिमिताब्दे (१४०५) ज्येष्ठामूलीय धवलसप्तम्यां निष्पन्नमिद शास्त्रं श्रोत्रध्येत्रो सुखं तन्यात् ।।

(चतुर्विंशति प्रबन्ध के अंत मे)

4 विल्सन्; 'हिन्दू थियेटर', जि० २, पृ० ३६२ ।

5 डॉ० रामकृष्ण गोपाल भाडारकर 'हस्तलिखित सस्कृत पुस्तको की खोज की ई० सं १८८२–८३ की अंग्रेजी रिपोर्ट' पृ० ४४ ।

6 स्टीन कानो, हार्वर्ड ओरिएंटल सीरीज में संपादित कर्पूरमजरी, पृ० १७९

7 सी० डी० दलाल, 'गायकवाड ओरिएंटल सीरीज मे मुद्रित काव्य मीमासा की अंग्रेजी भूमिका,' पृ० १५ ।

8 सीयडोनी (सीरोण खुर्द) गाव संयुक्त प्रदेश के ललितपुर जिले मे ललितपुर नगर से दस मील उत्तर पश्चिम की ओर है ।

9 'एपिग्राफिया इंडिका,' जि० १ पृ० १७१ ।

10 वामन शिवराम आपटे, 'राजशेखर, हिज़ लाईफ ऐंड राइटिंग्ज;' पृ० ४

(उ) राजशेखर के शिष्य महोदय (कन्नौज) के राजा महेन्द्रपाल के दिघ्वादुबौली [11], गांव से मिले हुए वि० स० ९००, ५०, ५ (९५५) के दानपत्र का सपादन करते समय डॉ० फ्लीट ने उसके सवत् को, जो प्राचीन शैली के अनुसार अक्षर संकेत से दिया हुआ था, १००, ५०, ५ (१५५) पढा, उक्त सवत् को हर्ष सवत् मानकर राजा महेंद्रपाल का ई० स० ७६१ (वि० सं० ८१८) मे होना स्थिर किया[12] डॉ० फ्लीट के इस अशुद्ध पढे हुए सवत् के आधार पर प्रोफेसर पीटर्सन और महामहोपाध्याय पडित दुर्गाप्रसादजी (काव्यमाला के सपादक) ने वल्लभदेव की सुभाषितावली की अग्रेजी भूमिका में राजशेखर का ई० स० ७६१ (वि० स० ८१८) के लगभग विद्यमान होना अनुमान किया है[13] ।

(ऊ) ए० बोरुहा ने ईसवी ७वी शताब्दी में उक्त[14] कवि का अस्तित्व माना है ।

इस प्रकार भिन्न भिन्न विद्वानो ने अपनी अपनी गवेषणा के अनुसार ईसवी ७ वी शताब्दी से लेकर १४ वी तक के भिन्न भिन्न समय उक्त कवि के लिए स्थिर किये हैं । अतएव हमें यह निर्णय करना आवश्यक है कि वास्तव में राजशेखर कब हुआ ?

उक्त कवि ने अपने ग्रथो में से किसी में भी उसकी रचना का सवत् नही दिया । तो भी उनमें मिलने वाले आभ्यंतरिक प्रमाण उसका समय निर्णय करने में अवश्य सहायक होते है ।

कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना में वह अपने को महोदय (कन्नौज) के राजा रघुकुल चूडामणि महेन्द्रपाल का जिसका उपनाम निर्भयनरेंद्र था, गुरु या उपाध्याय बतलाता है[15], और बालभारत की प्रस्तावना मे आर्यावर्त के महाधिराज, रघुवश मुक्तामणि एवं निर्भयनरेंद्र के पुत्र महीपाल के समय उसकी राजधानी महोदय (कन्नोज) नगर में अपनी विद्धशालभजिका नाटिका का अभिनय होना सूचित करता है[16] ।

11 दिघ्वादुबौली गाव बिहार प्रात के सारन जिले के गोपालगंज विभाग के गोपालगज नगर से पचीस मील अग्निकोण मे है ।

12 इडियन् 'ऐंटिक्वेरी', जि० १५, और पृ० ११० और ११२–१३ ।

13 सुभाषितावलि की अग्रेजी भूमिका, पृ० १०१ ।

14 भवभूति एण्ड हिज प्लेस इन सस्कृत लिट्रेचर, पृ० १७ ।

15 नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ६, पृष्ठ २०५ की टिप्पणी* ।

16 वही भाग ६, पृ० २०६ की टिप्पणी* ।

महेंद्रपाल (निर्भयनरेंद्र) और उसका पुत्र महीपाल दोनो कन्नोज के प्रतिहार (पड़िहार) वंशी सार्वभौम राजा थे, जिनके दरबार में राजशेखर विद्यमान था[17]। अतएव यदि इन दोनों राजाओ के समय का ठीक ठीक निर्णय हो जाय, तो राजशेखर का ठीक समय भी निश्चित हो जायगा।

अनेक पुरातत्व वेत्ताओं के श्रम से असख्य प्राचीन शिलालेख, दानपत्र आदि प्रसिद्धि में आए हैं, जो भारतवर्ष के भिन्न भिन्न विभागों पर राज्य करने वाले अनेक राजवशों के अंधकार में पड़े हुए प्राचीन इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश डालते है। इतना ही नही, किन्तु कई राजाओं, कवियों आदि के निश्चित समय भी उनसे ज्ञात हो जाते हैं।

कन्नोज का प्रतिहार वशी राजा महेंद्रपाल, राजा भोजदेव (आदि वराह मिहिर) का पुत्र (उत्तराधिकारी) था। उक्त भोजदेव के पाँच लेख अब तक उपलब्ध हुए है, जिनमें सबसे प्रथम दौलतपुरा (जोधपुर राज्य) से मिला हुआ वि० सं० ९०० फाल्गुन सुदी १३ का दानपत्र है, जो राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) में सुरक्षित है। उसका सबसे पिछला शिलालेख पेहोआ से मिला है, जो हर्ष सवत् २७६ (वि० स० ९३८) वैशाख सुदी ७ का है। इन दोनो से निश्चित है कि वि० सं० ९०० से ९३८ तक तो कन्नौज का स्वामी भोजदेव था, और सभव है कि वि० स० ९३८ के पीछे भी कुछ वर्षों तक जीवित रहा हो।

भोजदेव के पीछे उसका पुत्र महेंद्रपाल कन्नोज के राज-सिंहासन पर बैठा, जिसका गुरु (उपाध्याय) राजशेखर था। उसके समय के दो शिलालेख और तीन ताम्रपत्र मिले हैं। जो वि० सं० ९५०–९६४ तक के है। उनमें सब से पहला वल्लभी संवत् ५७४ (वि० सं० ९५०) का ऊना (काठियावाड़ के जूनागढ़ राज्य में) गाँव से मिला हुआ दान-पत्र और सबसे पिछला वि०

---

17 राजपूताने का इतिहास, पहला खड पृष्ठ ६२–६३ और १६७।

सं० ६६४ का मीयडोनी का शिलालेख है[18]। महेन्द्रपाल के पीछे उसका पुत्र महीपाल (क्षितिपाल) कन्नौज के राज-सिंहासन पर बैठा। उसके समय में भी राजशेखर कन्नौज में ही रहता था। महिपाल के समय का एक दानपत्र शक सं० ८३६ (वि० सं० ६७१)[19] का हड्डाला गाँव (काठियावाड) और एक शिलालेख वि० स० ६७४[20] का अस्नी गाँव से मिला है।

कनौज के इन तीन राजाओ के शिलालेखो और दानपत्रो के आधार पर हम यह कह सकते है कि राजशेखर वि० स० ६५० के लगभग से लेकर ६७० के लगभग तक कन्नौज में रहा था, और यही उसका कविता काल भी स्थिर किया जा सकता है।

हमारे इस कथन की पुष्टि राजशेखर की विद्धशालभंजिका' नाटिका से भी होती है। उसकी प्रस्तावना से पाया जाता है कि उसका अभिनय श्री युवराजदेव की राजसभा में हुआ था[21]। प्रो० विलसन ने श्री युवराजदेव शब्द का अर्थ राजा का ज्येष्ठ पुत्र माना है, जो ठीक नही है; क्योंकि प्रारंभ का 'श्री' और अन्त का 'देव' अश उसका राजा होना बतलाता है, न कि राजकुमार। वास्तव में युवराजदेव त्रिपुरी (चेदी देश की राजधानी) के हैहय (कलचुरी, करचुली) वशी राजा का नाम है[22]। उक्त वश में युवराजदेव नाम के दो राजा हुए, जिनमें से विद्धशालभंजिका का युवराजदेव इस नाम का पहला राजा था, जिसका उपनाम केयूरवर्ष (कर्पूरवर्ष)[23] भी मिलता है। विद्धशाल-

18 वही, पृष्ठ १६२, टिप्पणी ३।

19 वहीं; पृष्ठ १६३ टिप्पणी २।

20 वही, पृष्ठ १६३, टिप्पणी ३।

21 सूत्रधार –(आकर्ण्य) अय ! यायावरेण दौहिकिना कविराजशेखरेण विरचिताया विद्धशालभञ्जिका नाम नाटिकाया वस्तूपक्षेपो गीयते (विभाव्य) तन्मन्ये तदभिनये श्रीयुवराजदेवस्य परिषदाज्ञा। तदहमपि मन्त्रिणो भागुरायणस्य प्रतीकवृत्या शिष्यैर्विहितचारुनाम्नोऽन्ते वासिनो हरदासस्य भूमिका सम्पादयामि।

22 युवराजदेव के लिए देखो–खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, का छपा हुआ, हिन्दी टॉड राजस्थान, प्रथम खड, पृष्ठ ४६४–६७, जहाँ मैंने उसके वंश की पूरी वंशावली दी है।

23 शिलालेखो मे युवराजदेव का उपनाम (खिताब) केयूरवर्ष मिलता है; परन्तु कलकत्ते की छपी हुई विद्धशालभंजिका मे कर्पूरवर्ष पाठ है, जो शायद केयूरवर्ष का ही बिगडा हुआ रूप हो। शुद्ध पाठ केयूरवर्ष ही होना चाहिए।

भंजिका की प्रस्तावना से पाया जाता है कि युवराजदेव का मंत्री भागरायण था। उसी नाटिका के चौथे अक में कुरङ्गक नाम का एक पुरुष राजा के सेनापति श्रीवत्स का पत्र लाकर राजा कर्पूरवर्ष (केयूरवर्ष) के सामने रखता है और मंत्री भागुरायण उसे लेकर पढता है। पत्र लम्बा चोडा है, जिसमें सेनापति की विजय आदि का वृत्तान्त है। उसके प्रारभ मे ही सेनापति ने नमदा (तुहिनकरसुता) के तट-स्थित त्रिपुरी के राजा कर्पूरवर्ष (केयूरवर्ष) को प्रणाम लिखा है और आगे इसको करचुली (कलचुरि) तिलक कहा है[24]। नर्मदा तट पर की नगरी त्रिपुरी हैहय (कलचुरी, करचुली) वंशी राजाओ की राजधानी थी। विद्धशालभंजिका से निश्चित है कि युवराजदेव (प्रथम) और कर्पूरवर्ष (केयूरवर्ष) एक ही राजा के नाम और उपनाम है। अतएव राजशेखर का त्रिपुरी के राजा युवराज देव (प्रथम) का समकालीन होना भी निश्चित है।

युवराजदेव (प्रथम) के समय का कोई शिलालेख या दानपत्र अब तक नही मिला, जिससे उसका ठीक ठीक समय निर्णय किया जा सके। परन्तु बिल्हारी से मिली हुई युवराजदेव (दूसरे) के समय की बड़ी प्रशस्ति से पाया जाता है कि युवराजदेव (प्रथम) के प्रपितामह कोकल्लदेव ने उत्तर (कन्नोज) में भोजदेव और दक्षिण में कृष्णराज (राठौड) रूपी दो कीर्तिस्तभ

---

24 तत प्रविशति कुरङ्गक। (प्रणम्य) जेदु जदु भट्टा (लेख पक्षिपति) भागुरायण। गृहीत्वा वाचयति

स्वस्ति श्रीमत्रिपुर्य्यां तुहिनकरसुतावीचिवाचालितायां
देवं कर्पूरवर्षं विनयनतशिरा सर्वसेनाधिनाथ।
श्रीवत्सोवत्सलत्वान्मुरलजनवधूलोचनैरर्च्यवान
पादद्वन्द्वारविन्दे क्षणमभिरचयत्यञ्जलिं मूर्ध्नि भक्त्या॥ १८॥

श्रेयोन्यत् कार्य्यं च लिख्यते। करचुलितिलकस्य पार्थिवस्य तव प्रतापेन महामन्त्रि भागुरायणस्य मतिवैशद्येन मादृशाना च पदातिलवानामादर्शनिर्बंहणेन प्राचीप्रतीच्युदीची दिग्विभागे सर्व एव राजानश्चण्डवृत्तयो दण्डापनता स्थिता. केवलमवाचीक्षितिपतयो दृश्यन्ते स्म।

विद्धशालभंजिका (कलकत्ता संस्करण) पृष्ठ १४५--४६।

कलकत्ते के उक्त संस्करण में त्रिपुर्यां के स्थान म नूपुर्यां छपा है, जो अशुद्ध पाठ है, क्योकि नर्बदा तट पर की कलचुरियों की राजधानी का नाम शिलालेखो में त्रिपुरी मिलता है, न कि नूपुरी।

स्थापित किये थे[25] । अर्थात् कोकल्लदेव, कन्नौज के प्रतिहार भोजदेव और दक्षिण के राठोड कृष्णराज का समकालीन था । भोजदेव कन्नौज के प्रतिहार वंशी राजा महीपाल (क्षितिपाल) का दादा महेन्द्रपाल का पिता था, जैसा कि उपर बतलाया गया है । अतएव कन्नौज का महीपाल और त्रिपुरी का युवराजदेव (प्रथम) ये दोनों भी समकालीन होने चाहिए। इन दोनों के यहाँ राजशेखर रहा था, ऐसी दशा मे हमारा ऊपर निर्णय किया हुआ राजशेखर का समय अयुक्त नहीं है ।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के प्रमाणो के अतिरिक्त बाह्य प्रमाण भी हमारे कथन की पुष्टि करते हैं । राजशेखर काव्यमीमासा में वाक्पतिराज[26] उद्भट[27] और आनन्द (आनन्दवर्धन)[28] के मत उद्धृत करता है । गउडवहो का कर्ता वाक्पतिराज कन्नौज के राजा यशोवर्मा के (जिसको काश्मीर के राजा ललितादित्य ने परास्त किया था) समय अर्थात् विक्रमी ८ वी शताब्दी मे हुआ । उद्भट काश्मीर के राजा जयापीड (वि० स० ८०८–३६ के लगभग) का सभापति था और आनन्द (आनन्दवर्धन) काश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा (वि० स० ६१२–४० के लगभग) के समय विद्यमान था । अतएव राजशेखर का इन तीनों के पीछे होना निश्चित है ।

अब यह भी देखना चाहिए कि राजशेखर का उल्लेख उसके पिछले निकटवर्ती ग्रन्थकारों में से किस किसने किया है । सोमदेव के शक संवत् ८८१

25 जित्वाकृत्स्ना येन पृथ्वीमपूर्व-
ड्कीर्त्तिस्तम्भद्वन्द्व मारोप्यते स्म ।
काम्भोद्भव्यान्दिग्योसौ कृष्णराजः
कोवेर्याञ्च श्रीनिधिर्भोजदेव ॥ १७ ॥
एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द १, पृष्ठ २५६ ।

26 "पुराणकविक्षुण्णे वर्त्मनि दुरापमस्पृष्टं वस्तु ततश्च तदेव संस्कर्तुं प्रयतेत" इति आचार्याः ।
"न" इति वाक्पतिराजः काव्यमीमासा, पृष्ठ ६२ ।

27 पदानामभिधित्सितार्थग्रन्थनाकर सन्दर्भोवाक्यम् । तस्य च त्रिधाऽभिधा व्यापारः" इत्यौद्भटाः । काव्यमीमासा, पृष्ठ २२ ।

28 "प्रतिभाव्युत्पत्त्यो प्रतिभा श्रेयसी" इत्यानन्द ।
काव्यमीमासा, पृष्ठ १६ ।

(वि० सं० १०१७) के बने हुए यशस्तिलकचम्पू[29] में, तथा वि० सं० १०४७ के लगभग की बनी हुई सोढ्ढल कवि की उदयसुन्दरी कथा[30] में राजशेखर का उल्लेख मिलता है। अतएव राजशेखर का वि० स० १०१७ के पूर्व होना भी निश्चित है। इनसे पीछे के तो अनेक विद्वानो ने राजशेखर की काव्यमीमासा से अपने ग्रथो मे कुछ कुछ अंश उद्धृत किए है, जिनके उल्लेख की हमें आवश्यकता नही। इन सब प्रमाणों को देखते हुए राजशेखर का कविता-काल वि० स० ६५० और ६७० के लगभग माना जा सकता है।

ना० प्र० प० (ग्रं० न०) काशी भाग ६, संख्या ४
वि० सं० १६८२ ई० स० १६२५

---

29 प्रोफेसर पीटर्मन की संस्कृत पुस्तको की खोज की दूसरी रिपोर्ट, पृ०४५

30 यायावरः प्राज्ञवरो गुणज्ञै–
राशंसितः सूरिसमाजवर्यैः ।
नृत्यत्युदारं भणिते गुणस्था
नटीव यस्योद्रसा पदश्री ।।

उदयसुन्दरी कथा, पृष्ठ १५४ (गायकवाड ओरिएंटल सीरीज, ग्रन्थ संख्या ११)

सोढ्ढल ने अनेक नाटको के प्रसिद्ध लेखक राजशेखर की प्रशसा करते हुए राजशेखर का नाम न देकर उसको यायावर ही कहा है, जिसका कारण यह है कि राजशेखर यायावर नाम से ही अधिक प्रसिद्ध था। वह अपनी काव्य-मीमासा के प्रारंभ ही अनेक नामो के साथ यायावरीय शब्द जोड़कर अपना परिचय देता है—

यायावरीयः सङ्क्षिप्य मुनीना मतविस्तरम् ।
व्याकरोत्काव्यमीमासा कविभ्यो राजशेखरः ।।

काव्यमीमांसा. पृष्ट २.

और आगे अनेक स्थलो मे जहाँ-जहाँ अपना मत उद्धृत करता है, वहाँ वहाँ 'इति यायावरीय.' (यह मेरा मत है) ही कहता है। अपना नाम कहीं नही देता।

५–गुजरात से मिले हुए प्रतिहारों तथा राजपूताना से मिले हुए सोलंकियों के दानपत्र और शिलालेख

प्राचीन काल मे "गुर्जर" नामक एक राजवंश था, जिसके मूल पुरुष के नाम से उसके वंशधर "गुर्जर" कहलाये और उनके अधीन का देश गुर्जर देश अथवा गुर्जरत्रा (गुर्जरो से रक्षित देश) नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्राचीन काल में यह देश बड़ा विस्तृत था और वर्तमान जोधपुर राज्य के सारे उत्तर-पूर्वी भाग से लगाकर भडोच राज्य (गुजरात में) तक उसका विस्तार था। इस समस्त गुर्जर देश की प्राचीन राजधानी भीनमाल (श्रीमाल) थी, जो जोधपुर राज्य के दक्षिणी विभाग में है। गुर्जरों से भीनमाल का राज्य चावड़ा वंशियो ने लिया और उनसे रघुवंशी प्रतिहारो ने।

उनकी वंशावली नागभट से आरभ होती है। उसकी तीन पीढी बाद नागभट (दूसरा) हुआ, जिसने चक्रायुध को परास्त कर कन्नौज का राज्य छीना और उसी के समय से गुर्जर देश के इन प्रतिहारो की राजधानी कन्नौज हुई, जिससे उन्हे कन्नौज के प्रतिहार भी कहते है। उसके पुत्र भोजदेव की ग्वालियर की बृहत् प्रशस्ति से पाया जाता है कि उस (नागभट, दूसरा) ने आन्ध्र, सैंधव, विदर्भ (बरार) आदि के समान आनर्त (दक्षिणी काठियावाड) को भी विजय किया था[1]। कन्नौज के इन प्रतिहारों के अब तक गुजरात से निम्नलिखित चार दानपत्र और एक शिलालेख मिला है।

१–हासोट (भडोंच जिला, बबई अहाता) से मिला हुआ वि० सं० ८१३ ई०स० ७५६ का चौहान राजा (भर्तृवड्ढ भर्तृवृद्ध) दूसरे का दानपत्र। ३६ पंक्तियों का यह दानपत्र दो पत्रो पर खुदा हुआ है। इससे पाया जाता है कि चौहान वश में महेश्वरदास हुआ, जिसका पुत्र भीमदास था। भीमदास का पुत्र भर्तृवड्ढ प्रथम और पौत्र हरदास हुआ। हरदास का पुत्र धुभटदेव और उस (धुभटदेव) का पुत्र भर्तृवड्ढ (दूसरा) था, जिसने भृगुकच्छ (भड़ोंच) में रहते समय सूर्यग्रहण के अवसर पर अक्रुरेश्वर जिले के अन्तर्गत अर्जुनदेवी गांव का एक चतुर्थांश सौज्ञपद्र (?) के निवासी कौण्डिन्य गौत्र के ब्राह्मण तावी के पुत्र भट्टबूट को, एक चतुर्थांश बरमे की (?) गाव के त्रिवेदी ब्राह्मण

---

1 आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इडिया, ई० स० १९०३–४ की रिपोर्ट पृ० १८१।

चर्मशर्मा (?) के पुत्र जब (?) को तथा (शेषांश) सौज्ञपद्र के निवासी ब्राह्मण भट्टुल को दान में दे दिया। इस दानपत्र के अंतिम भाग में लिखा है कि जिस समय यह लिखा गया उस समय वहां (प्रतिहार) नागावलोक (नागभट प्रथम) का राज्य था[1]। इससे निश्चित है कि भड़ोच के चौहान कन्नौज के प्रतिहारों के सामन्त थे।

२--बिना सवत् का काठियावाड़ से मिला हुआ प्रतिहार राजा भोजदेव का शिलालेख। इसमे निश्चित है कि उक्त राजा का अधिकार काठियावाड़ पर होगया था।[2]

३--वलभी सवत् ५७४ (वि० सं० ९५०--ई० स० ८९४) का महासामंत चौलुक्य (सोलंकी) बलवर्मा का ऊना (जूनागढ़ राज्य दक्षिणी काठियावाड़) का दानपत्र। यह दानपत्र तांबे के दो पत्रों पर खुदा हुआ है और इसमें ३६ पंक्तियां हैं। इससे पाया जाता है कि परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर महेन्द्रायुधदेव के महासामंत अवनिवर्मा (प्रथम) के पुत्र चौलुक्य बलवर्मा ने नविशसपुर में रहते समय माघसुदि ६ (ता० १७ जनवरी ८९४ई०) को वहाँ की चोरासी का जयपुर गांव कणवीरिका नदी के तट पर स्थित तरुणादित्यदेव के सूर्य-मंदिर को दान दिया[3]।

इस दानपत्र में आया हुआ महेंद्रायुधदेव कन्नौज का प्रतिहार राजा महेंद्र-पाल (प्रथम) था।

४--वि० सं० ८५६ (ई० स० ८९९) का उपर्युक्त ऊना गांव का अवनि-वर्मा (द्वितीय) का दानपत्र। यह दानपत्र तीन पत्रों पर खुदा हुआ है, जिनमें से दूसरा पत्रा दोनों तरफ खुदा है, शेष दोनों केवल एक ही तरफ। सब मिलाकर इसमें ६८ पंक्तियां हैं। इससे पाया जाता है कि चौलुक्य (सोलंकी) वंश में कल्ल और महल्ल नामक दो बड़े राजा हुए। कल्ल के पौत्र (नाम अस्पष्ट है, संभवतः बाहुकधवल) ने धर्म नाम के किसी राजा को परास्त किया, अनेक बड़े राजाओं को जीता और कर्णाट (दक्षिण के राठोड़ों) की सेना को हराया। उसका पुत्र अवनिवर्मा (प्रथम) हुआ, जिसके पुत्र बलवर्मा ने बीषढ़ को हरा कर उसके दो नगारे छीन लिये और जज्जप को मार कर

1 एपिग्राफिया इण्डिका; जिल्द १२, पृ० २०२--४।
2 नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ६, पृ० ३२५।
3 एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द ९, पृ० ४।

पृथ्वी को हूणों से मुक्त किया। उसका पुत्र अवनिवर्मा (द्वितीय) हुआ, जिसने यक्षदाम की सेना को हराया, अपने राज्य पर आक्रमण करने वाले राजाओं को परास्त किया, तथा धरणीवराह को भगाया। इसी अवनिवर्मा (द्वितीय) ने, जो परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर भोजदेव के, उत्तराधिकारी परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर महेंद्रपाल देव का सामंत था, धीइक की अनुमति से सौराष्ट्र मंडल (सोरठ, काठियावाड़) के अन्तर्गत नक्शिसपुर की चौरासी का अंबुलक (अंबुलक) गांव जयपुर गांव के निकट कड़वीरिका के तट पर स्थित तरुणादित्य के मन्दिर को दान दिया[1]।

इस दानपत्र में आया हुआ महेंद्रपालदेव ऊपर के दानपत्र में आया हुआ प्रतिहार महेंद्रायुध ही है। धीइक प्रतिहारों की तरफ से नियुक्त काठियावाड़ का शासक होना चाहिये।

५–हड्डाला (पूर्वी काठियावाड) से मिला हुआ शक संवत् ८३६ (वि० सं० ९७१ पौष सुदि ४) (ई० स० ९१४ ता० २३ दिसम्बर) का चाप (चावडा) वंशी धरणी वराह का दानपत्र। ५२ पंक्तियों का यह दानपत्र दो पत्रों पर खुदा हुआ है। इससे पाया जाता है कि चाप (चावड़ा) वंश में विक्रमार्क नामका राजा हुआ, जिसका पुत्र अड्डक था। अड्डक का पुत्र पुलकेशी और पुलकेशी का ध्रुवभट हुआ। ध्रुवभट का छोटा भाई धरणीवराह था, जो महीपालदेव का सामत था और वर्द्धमान में रह कर अण्डणक देश पर राज्य करता था। उसने उत्तरायण पर्व के अवसर पर अर्मद्दक के वंश के देवाचार्य के पुत्र महेश्वराचार्य को कंथिका की स्थली से मिला हुआ विकल गाव दान में दिया[2]।

उक्त दान में आये हुए महीपालदेव को, जिसका सामंत धरणीवराह था, पहले विद्वानो ने गिरनार-जूनागढ़ के चूडासमा का वंशधर मान लिया था, पर अब निश्चित प्रमाणो से यह सिद्ध होगया है कि वह कन्नौज के प्रतिहार राजा नागभट के वंशज महेंद्रपालदेव का पुत्र महीपालदेव था।

---

1 एपिग्राफिया इण्डिका; जि० ९, पृ० ६–१०।

2 इंडियन एंटिक्वेरी; जि० १२, पृ० १९०–९५।

कन्नौज के प्रतिहार साम्राज्य की अवनति के समय प्रतिहारों के सामन्त चौहान, सोलंकी आदि स्वतंत्र बन बैठे और वे अपने-अपने राज्यों का विस्तार करने लगे। सांभर के चौहानों की एक शाखा ने मारवाड की तरफ नाडोल तक अधिकार कर लिया। सोलंकियों ने चावडों का अनहिलवाडे का राज्य अधीन कर उत्तर की तरफ पैर बढ़ाये और मारवाड के दक्षिण तक जा पहुँचे। अनहिलवाडे में राज्य स्थापित करने वाले इस सोलंकी वंश की वंशावली मूलराज से प्रारम्भ होती है। मूलराज के पूर्वजों का राज्य पहले कहां था, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। वि० सं० १०४३ माघवदि ३० (ई० स० ९८७ ता० २ जनवरी) रविवार के दानपत्र में वह अपने को महाराजाधिराज श्री राजि का पुत्र लिखता है[1]। मेरुतुंगाचार्य ने वि० सं० १३६१ (ई० स० १३०४) में प्रबन्ध चिंतामणि की रचना की। उसमें मूलराज के प्रबन्ध में वह लिखता है कि भूयराज (भूयडदेव) के वंशज मुंजालदेव के तीन पुत्र राज, बीज और दण्डक हुए। सोमेश्वर (सोमनाथ, दक्षिणी काठियावाड) की यात्रा को लौटते हुए ये तीनों कार्पटिक[2] वेष में अणहिलपुर (अणहिलवाड़ा) पहुंचे। वहां के राजा सामन्तसिंह ने राजा की योग्यता का परिचय पाकर अपनी बहिन लीलावती का विवाह उसके साथ कर दिया। कुछ समय बाद वह गर्भवती हुई और अकाल ही में उसकी मृत्यु होगई। तब मन्त्रियों ने उसका पेट चीर कर गर्भस्थ बालक को निकाला। मूल नक्षत्र और अप्राकृतिक रीति से जन्म होने के कारण उसका नाम मूलराज रक्खा गया। वह जन्म से ही बड़ा होनहार था। अपने पराक्रम से उसने अपने मामा के राज्य की बड़ी वृद्धि की। पीछे से अपने मामा को मार कर[3] वह स्वयं उसके राज्य का स्वामी बन गया[4]। जिन मंडल गणि के वि० सं० १४९२ (ई० स० १४३५) में रचे हुए "कुमारपाल प्रबन्ध" में भी बहुधा इसी कथा की पुनरावृत्ति की है[5]।

1 वही; जि० ६, पृ० १९१।

2 "बॉम्बे गैजेटियर" में कार्पटिक का अर्थ कापडी (जिखरी) किया है जि० १, खंड १, पृ० १५६, जो ठीक नहीं है। कार्पटिक से कावर लेकर चलने वाले यात्री का आशय है।

3 मामा को मार कर राज्य लेना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। राजपूताने में पिता, भाई, जामाता आदि को मार कर राज्य हस्तगत करने के कई उदाहरण मिलते हैं।

4 पृ० ३८–९ (ई० स० १८८८ का संस्करण)।

5 पत्र २–३ (वि० सं० १९७१)।

उपर्युक्त ग्रन्थो में आये हुए राज, बीज ओर दंडक नाम तो ठीक है[1], परन्तु उनमें दी हुई मूलराज के सम्बन्ध की अन्य बातें कल्पना मात्र है। सामत-सिह का, जिसे अन्य स्थल पर भूमटदेव भी लिखा मिलता है, राज्य केवल सात वर्ष तक रहा था। ऐसी दशा[2] मे अनहिलवाडा पहुचने पर राजि के साथ सामंतसिह की बहिन का विवाह होना, उस (बहिन) के मरने पर उसका पेट चीर कर मूलराज का निकाला जाना, मूलराज का अपने मामा का राज्य विस्तार करना और फिर अपने मामा को मार कर उसका सारा राज्य स्वयं हडप लेना कैसे सम्भव हो सकता है* ।

1 दडक का नाम हेमचन्द्र-रचित "द्वयाश्रय महाकाव्य" मे भी मिलता है (सर्ग ३, श्लोक ६६), जो वि० स० १२०० से भी पूर्व का है । "प्रबन्ध-चितामणि" से पीछे के बने हुए ग्रन्थो मे राज, बीज और दंडक के पूर्वजो की शृखला मे भूयडराज, कर्णादित्य, चन्द्रादित्य तथा समा-दित्य नाम दिये है । इनमे भूयडराज के अतिरिक्त अन्य नाम कल्पित प्रतीत होते है ।

2 जिन मडन गणि-रचित "कुमारपाल प्रबन्ध" पत्र २, रत्नमाला पृ० २२। "प्रबन्ध चितामणि" की किसी-किसी प्रति मे उसका २७ वर्ष राज्य करना लिखा है (हिन्दी प्रबन्ध चितामणि [मुनि जिन विजयजी सपादित] पृ० १८), जो ठीक नही प्रतीत होता।

सम्पादकीय टिप्पण

इस ही प्रसङ्ग मे ऊपर श्री ओझाजी ने प्रबन्ध चितामणि और कुमार-पाल का वर्णन करते हुए वहा अपने दिये हुए टिप्पण मे उल्लेख किया है कि 'मामा को मार कर राज्य लेना कोई आश्चर्य की बात नही है। राजपूताना मे पिता, भाई, जामाता आदि को मार कर राज्य हस्तगत करने के कई उदाहरण मिलते है, इससे तो यही कहा जायगा कि मूलराज, सामतसिह का भागिनेय पुत्र था और उसने अपने मामा अणहिलवाडा के अन्तिम चावडावंशी राजा सामतसिह (भूयगडदेव) को मार कर वहा का राज्य प्राप्त किया। यहा उन्होने 'प्रबन्ध-चितामणि' और 'कुमारपाल प्रबध' मे दी हुई मूलराज के सम्बन्ध की अन्य बाते कल्पना मात्र बतला कर उनमे दिये हुए राज, बीज और दडक नाम ठीक माने है । किन्तु यह स्पष्ट है कि अनहिलवाडा से चावडो के राज्य का अन्त होने पर ही मूलराज वहा का स्वामी बना।

उपर्युक्त पुस्तकों में आया हुआ राज, तथा मूलराज के वि० सं० १०४३ के दानपत्र में दिया हुआ उसका पिता महाराजाधिराज श्री राजि एक ही व्यक्ति जान पड़ते है। ऐसी दशा में मूलराज, भूयराज (भूयगडदेव) का वंशज ठहरता है। भूयड़, भूयग अथवा भूवड, भूभट के प्राकृत रूप है। भूभट, अव-निवर्मा का पर्याय है, जो कन्नौज के प्रतिहारो का सामंत था और काठियावाड़ में राज्य करता था। "प्रबन्ध चिंतामणि" से लगभग ७५ वर्ष पूर्व बने हुए अरिसिंह विरचित "सुकृत सकीर्तन" नामक ग्रन्थ में मूलराज के सम्बन्ध में लिखा है कि वहअपनी भक्ति के कारण प्रति सोमवार को सोमनाथ के दर्श-नार्थ जाया करता था[1]। अवनिवर्मा (द्वितीय) के जिन दानपत्रों का उल्लेख ऊपर आया है वे ऊना ग्राम से मिले हैं, जो दक्षिणी काठियावाड के अन्तर्गत जूनागढ़ राज्य में सोमनाथ के निकट ही है। इससे तो यही प्रकट होता है कि मूलराज सोरठ की सोलकी शाखा के अवनिवर्मा अर्थात् भूभटदेव अथवा भूयगड़-देव का वंशज था। अवनिवर्मा (द्वितीय) का समय वि० सं० ९५६ और मूलराज का वि० सं० ९९८ से १०४२ तक मिलता है। इस पर विचार करने से भी हमारे अनुमान की पुष्टि होती है। मूलराज के ऊपर आये हुए दानपत्र में उसके पिता श्री राजि को महाराजाधिराज लिखा है, जिससे स्पष्ट है कि वह किसी बड़े राजा का सामंत और छोटे बड़े प्रदेश का स्वामी रहा होगा, जो सोमनाथ के निकट ही होना चाहिये।

काठियावाड़ के इन सोलंकी राजाओं के समय के राजपूताना से अब तक निम्न लिखित शिलालेख और दानपत्र मिल चुके है—

१. वि० स० १०५१ माघसुदि १५ (ई० स० ९९५, ता० १९ जनवरी) का परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर मूलराज का जोधपुर राज्य के सांचोर जिले के बालेरा ग्राम से मिला हुआ दानपत्र। यह दानपत्र तांबे

---

1 पदेऽथ तस्याजनि भागिनेयः चौलुक्यवंशार्णव पूर्णचन्द्र. श्री मूल-राजः·········॥१॥·········॥२॥ सुव्यक्तभक्तिः प्रतिसोमवारम य सोमनाथं प्रणिपत्यवीरः ॥३॥

द्वितीय सर्ग।

के दो पत्रों के एक ही तरफ खुदा हुआ है और इसमें २१ पंक्तियां हैं। इससे पाया जाता है कि उक्त तिथि को अणहिलपाटक (अनहिलवाड़ा, पाटण) में रहते समय परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर मूलराज ने सत्यपुर मंडल का वरणक ग्राम कान्यकुब्ज से आये हुए दुर्लभाचार्य के पुत्र दीर्घाचार्य को दान में दिया[1]।

इस दानपत्र में आया हुआ सत्यपुर मंडल जोधपुर राज्य का वर्तमान सांचोर जिला है।

भीमदेव का कोई दानपत्र अथवा शिलालेख नही मिला है। उसके समय का एक लेख आबू के विमलशाह के मदिर की एक मूर्ति पर खुदा है, जो वि० स० ११११ (ई० स०१०६२) का है उससे पाया जाता है कि उक्त राजा भीमदेव के मंत्री शाति (संपत्कर, सांतू) की स्त्री शिवदेवी ने अपने दो पुत्रो नोन्न (नोना) और गीगा के कल्याण के लिए यह मूर्ति[2] स्थापित की[3]।

भीमदेव (प्रथम)के मंत्री विमलशाह के बनवाये हुए विमल वसति (विमलवसही) नामक जैन मन्दिर के जीर्णोद्धार की वि० स० १३७८ ज्येष्ठ सुदी ९ (ई० स० १३२२, ता० २५ मई) सोमवार की प्रशस्ति में भीमदेव (प्रथम) का कुछ हाल मिलता है। उससे पाया जाता है कि चन्द्रावती के राजा धन्धु (धन्धुक, धन्धुराज) ने उसकी सेवा स्वीकार न की और धारा के स्वामी राजा भोज के पास चला गया। इस पर राजा भीम (भीमदेव) ने विमल (विमलशाह) को आबू का दण्डपति नियत किया। इसने वि० स० १०८८ (ई० स० १०३१) में आबू पहाड़ पर आदिनाथ (विमलवसही) का मन्दिर बनवाया[4]।

सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह का लेख[5] है। वि० स० ११८६ (चैत्रादि

1 एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द १०, पृ० ९८–९।

2 यह मूर्ति विमलशाह के मन्दिर की तेरहवी देवकुलिका मे स्थापित है।

3 अर्बुद-प्राचीन-जैन-लेख सन्दोह, भाग २, पृ० ३७ लेख संख्या ६३। इसमे 'सोमभूपाल' छपा है, जो ठीक नही है। मूल पाठ 'भीमभूपाल' है।

4 मूल लेख की नकल से।

5 मेरा जोधपुर राज्य का इतिहास, खंड १, पृ० ५३।

सम्पादकीय टिप्पण

मूलराज (प्रथम) का वि० सं० १०५१ (ई० स० ९९५) तक विद्यमान होना पाया जाता है। अतएव उसका राज्य काल वि० सं० ९९८-१०५१ (ई० स० ९४१-९९५ तक निश्चित है।

११८७) आषाढ सुदि १५ (ई० स० ११३०, ता० २३ जून) का यह लेख भीनमाल के निकट गोतम तालाब के पास से मिला है।

वि० सं० १२०० (ई० स० ११४३) का बाली से मिला हुआ सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह के समय का शिलालेख। इससे पाया जाता है कि उक्त संवत् में महाराजाधिराज जयसिंह का सामंत आश्वाक था, जिसकी राणी की जीविका में बालाही ग्राम था। उस समय पाल्हा के पुत्र बोपणवस्थमन ने बहु घुणदेवी के उत्सव के निमित्त चार द्रम्म दान दिये। आगे चलकर उसी व्यक्ति द्वारा कुछ अन्य लोगो, कुओं आदि को एक-एक द्रम्म दिये जाने का उल्लेख है[1]।

इस लेख में दिया हुआ बालही ग्राम जोधपुर राज्य का वर्तमान बाली है और बहुघुणदेवी, बहुगुणदेवी अथवा बोलमाता, जिसके मन्दिर मे यह लेख खुदा है बाली में।

साभर के उमरशाह-नामक कुए में से मिला हुआ सोलंकियो का एक शिलालेख। यह लेख दो काले पत्थरो पर खुदा हुआ है और बहुत बिगड़ी हुई दशा में है। इसमें सोलंकी राजा मूलराज की राज्य-प्राप्ति का समय वि० स० ९९८[2] (ई० स० ९४२) दिया है और इससे पाया जाता है कि मूलराज का पुत्र चामुंडराज हुआ, चामुंडराज का वल्लभराज, वल्लभराज का उत्तराधिकारी दुर्लभराज, दुर्लभराज का भीमदेव, भीमदेव का पुत्र कर्णदेव तथा कर्णदेव का जयसिंह हुआ[3]। इसके आगे का भाग बहुत बिगड़ गया है, जिससे यह निश्चित रूपसे नही कहा जा सकता कि यह लेख सिद्धराज जयसिंह के समय का है अथवा उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल के समय का।

इस लेख में एक स्थल पर "शाकंभरी" शब्द आया है जो सांभर का सूचक है।

बासवाड़ा राज्य के तलवाड़ा नामक ग्राम के निकट ही गदाधर का जीर्ण मंदिर है। इसके सभा मंडप में एक गणपति की मूर्ति रक्खी हुई है, जिसके आसन पर बारीक अक्षरों में खुदा हुआ सात पंक्तियों का गुजरात के सोलंकी

1 एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द ११ पृ० ३२।

2 यही संवत् "कुमारपाल प्रबन्ध" (पत्र ३) मे भी मिलता है। पहले मैंने दूसरे ग्रन्थों के आधार पर मूलराज की राजप्राप्ति का समय वि० सँ० १०१७ माना था, पर अब उपर्युक्त शिलालेख के मिल जाने से इस विषय में कोई सन्देह नही रह जाता।

3 इंडियन एंटिक्वेरी, जिल्द ५८, पृ० २१५।

राजा सिद्धराज जयसिह का लेख है, जिसका कितना एक अश प्रतिदिन जल चढ़ने से बिगड़ गया है, फिर भी उसका आशय स्पष्ट है। उससे पाया जाता है कि सोलंकी वंशी राजा कर्ण के पुत्र जयसिह ने, जो 'सिद्धराज' कहलाता था, नरवर्मा (मालवे का परमार राजा) को जीत कर वहा गणपति का मदिर बनवाया[1] ' इसमें कोई संवत् नही दिया है और न यह पता चलता है कि गणपति का मंदिर कौनसा था; परन्तु यह निश्चित है कि यह मूर्ति उसी गणपति के मन्दिर से लाकर यहां रक्खी गई है।

चौलुक्य (सोलंकी) कुमारपाल का वि० स० १२०७ (ई० स० ११५०) का चित्तौड़गढ़ का शिलालेख। यह लेख २८ पक्तियों का है। इससे पाया जाता है कि चौलुक्यवश में मूलराज हुआ, जिसका वंशज सिद्धराज जयसिह था। उसका उत्तराधिकारी कुमारपाल देव हुआ। शाकंभरी (सांभर) के शासक को परास्त कर और सपादलक्ष को उजाडकर वह शालीपुर (शालेरा, उदयपुर राज्य के चितौड़ के निकट) नामक स्थान में पहुचा। वहा अपना डेरा रखकर वह चित्रकूट पर्वत (वर्तमान चितौड़गढ) देखने गया और वहां के समिद्धेश्वर के मन्दिर को उसने एक गाव भेंट किया[2]।

वि० स० १२०९ माघ वदि १४ (ई० स० ११५२ ता० २७ दिसम्बर) शनिवार का सोलंकी राजा कुमारपाल के सामन्त आल्हणदेव का किराडू का शिलालेख। यह लेख २१ पक्तियो का है। इससे पाया जाता है कि उक्त समय में जबकि कुमारपाल राज्य करता था तथा श्री करण[3] आदि समस्त मुद्राए महादेव करता था, उसकी कृपा से किरात कूप, लाठह्रद और शिवा का राज्य पाने वाले महाराज श्री आल्हणदेव ने शिवरात्रि के पर्व पर अपने अधीनस्थ उक्त नगरो के महाजनो, तबोलियो आदि में यह आज्ञा प्रचारित की कि प्रत्येक मास की दोनो पक्षो की अष्टमी, एकादशी एव चतुर्दशी तिथियो को कोई भी व्यक्ति जीव हत्या न करे और न दूसरों को

1 मेरा बांसवाडा राज्य का इतिहास: पृ० १४-६।

2 एपिग्राफिया इण्डिका; जिल्द २, पृ० ४२२-२४।

3 राज्य की अनेक मुद्राओ मे एक मे "श्री" खुदा रहता था, जिसके लगाने को "श्रीकरण" कहते थे। यह मुद्रा मुख्य मानी जाती थी। उदयपुर राज्य मे प्राचीन प्रथा के अनुसार अन्य मुद्राओ के अतिरिक्त एक मुद्रा मे "श्री" भी रहती है, जो रुपयो के सम्बन्ध के कागजो पर लगाई जाती है।

करने दे । इसके विपरीत यदि कोई जीव हत्या का पाप करेगा तो यदि वह साधारण व्यक्ति हुआ तो उस पर पाच द्रम्म और यदि राजा से सम्बन्ध रखने वाला कोई व्यक्ति हुआ तो उस पर एक द्रम्म दण्ड किया जायगा[1] ।

वि० स० १२०९ (चैत्रादि १२१०) द्वितीय ज्येष्ठवदि ४ (ई० स० ११५३, ता० १३ मई, का पाली से मिला हुआ सोलंकी राजा कुमारपाल के समय का शिलालेख[2] । यह लेख बहुत बिगड़ी हुई दशा में है ।

वि० स० १२१० (चैत्रादि १२११) ज्येष्ठसुदि ६ (ई० स० ११५४, ता० २० मई, गुरुवार) का सोलकी राजा कुमारपाल के समय का भाटूंद से मिला हुआ शिलालेख । यह लेख भी बहुत बिगडी हुई दशा में है । इसमें कुमारपाल के नाडोल के दड नायक (हाकिम) श्री वैजाक का उल्लेख है । एक स्थल पर "भट्टुटपद्रनगर" दिया है, जो भाटूंद का सूचक है[3] ।

कार्तिकादि वि० सं० १२१२ (चैत्रादि वि० १२१३) श्रावणसुदि ५ (ई० स० ११५६, ता० २४ जुलाई) सोमवार का सोलकी राजा कुमारपाल का नानाणा से मिला हुआ दानपत्र । यह ताबेके दो पत्रों पर खुदा हुआ है और इसमें ३२ पक्तियां है । इसमे मूलराज से लगाकर कुमारपाल देव तक की इन सोलकी राजाओ की वशावली दी है और कुमारपालदेव के विषय में लिखा है कि उसने अणहिलपाटक (अनहिलवाड़ा पाटण) में रहते समय नाडूलीय चोहान कुंतपाल के वंश की पुत्री लाखणदेवी के बनवाये हुए लाखणेश्वर के मन्दिर को, जो त्रिपुरुषदेव के मन्दिर के अन्तर्गत है, नाडूल की मंडपिका से एक द्रम्म प्रतिदिन दान दिया[4] ।

वि० सं० १२१३ मार्गशिर्षवदि १० (ई० स० ११५६, ता० ९ नवम्बर) शुक्रवार का नाडोल से मिला हुआ सोलंकी कुमारपाल के समय का शिलालेख । इससे पाया जाता है कि उक्त संवत् में, जबकि कुमारपालदेव का राज्य था और उसका मंत्री वहडदेव श्री करण आदि समस्त मुद्रा करता था, उसके सामन्त महामाडलिक प्रतापसिंह ने, जो बोणाना जाति के योगराज का पौत्र ओर वत्सराज का पुत्र था, बदरी की मडपिका की आय

1 एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द ११, पृ० ४४-३ ।
2 मेरा जोधपुर राज्य का इतिहास; खण्ड १, पृ० ५७ ।
3 वही (जोधपुर राज्य का इतिहास); खण्ड १, पृ० ६१–२ ।
4 मूल दानपत्र की छाप से ।

से एक रुपया प्रतिदिन नदूल डागिका के महावीर तथा अरिष्ट नेमी और लवंदडी के अजित स्वामीदेव के मन्दिरों को दान दिया[1] ।

इस दानपत्र में दिया हुआ 'नदूलडागिका' नाडलाई और बदरी बोर्ली है, जो नाडलाई से आठ मील उत्तर में है।

वि० स० १२१६ श्रावण वदि १ (ई० स० ११५६, ता० ३ जुलाई) शुक्रवार का बाली से मिला हुआ सोलकी राजा कुमारपालदेव के समय का शिलालेख। यह वहां के माता के मन्दिर के एक स्तम्भ पर खुदा हुआ है और इसमें उसके दडनायक वैजल का उल्लेख है[2] ।

वि० स० १२१८ आश्विनसुदि १ (ई० स० ११६१, ता० २१ सितम्बर) गुरुवार का किराडू से मिला हुआ सोलंकी राजा कुमारपालदेव क समय का शिलालेख। यह लेख वहाँ के शिव मंदिर से मिला है। यह बहुत बिगड़ी हुई दशा में है और इसका लगभग एक तिहाई हिस्सा नष्ट होगया है। इसके प्रारम्भिक अंश में आबू के अग्निवशी परमारो की उत्पलराज से लगाकर कृष्णराज (द्वितीय) तक वशावली दी है, परन्तु बीच-बीच में कुछ नाम नष्ट होगये हैं। इसके आगे कृष्णराज (द्वितीय) के छोटे पुत्र सोचछराज के वंशजो का हाल है। इससे पाया जाता है कि सोचछराज का पुत्र उदयराज हुआ, जिसने चोड़ गौड़, करणाट और मालवा तक प्रभुत्व स्थापित किया[3] । उसका पुत्र सोमेश्वर हुआ जिसने सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह की कृपा से अपना गया हुआ राज्य प्राप्त किया। वि० सं० १२०५ (ई० स० ११४८) में सोलंकी कुमारपालदेव के समय उसने मन्दिर की प्रतिष्ठा की और वह किराटकूप (किराडू) तथा शिवकूप की रक्षा करता रहा। वि० स० १२१८ (ई० स० ११६१) मे उसने जज्जक[4] नाम के राजा से तणुकोह (तन्नौट)

1 इंडियन एंटीक्वेरी; जिल्द ४१, पत्र २०३।

2 मेरा जोधपुर राज्य का इतिहास, खण्ड १, पृ० ५८।

3 परमार सोलंकियों के सामन्त थे और उन्ही के शामिल रह कर इन स्थानों की लडाइयो में लडे होगे।

4 यह जैसलमेर नगर के सस्थापक भाटी जैसल का दूसरा नाम होना चाहिये। प्राचीन ख्यातो आदि मे वि० सं० १२१२ मे जैसलमेर नगर का जैसल-द्वारा बसाया जाना लिखा मिलता है। वि० सं० १२१८ में उसका विद्यमान रहना सम्भव है। तणुकोह (तन्नौट) जैसलमेर से अनुमान ७५ मील उत्तर-पश्चिम में है और वह जैसलमेर राज्य की पुरानी राजधानी थी। नवसर, वर्तमान नौसर है, जो जोधपुर राज्य के फलोदी परगने में है।

और नवसर (नौसर जोधपुर राज्य) के किले छीन लिये तथा दंड में उसने १७९० घोड़ों और मयूर आदि ८ हाथी लिये। फिर उसको सोलंकी राजा (कुमारपालदेव) की अधीनता स्वीकार करा कर उसका राज्य उसे वापस दिला दिया।

वि० स० १२२१ (ई० स० ११६४) का जालोर का सोलंकी राजा कुमारपाल का शिलालेख। यह लेख वहां की पुरानी मस्जिद में लगा है। इससे पाया जाता है कि उक्त संवत् में गुर्जर देश के स्वामी कुमारपालदेव ने प्रभुदेव सूरी से ज्ञान प्राप्त कर जाबालिपुर में कचनगिरि (सौनलगढ़) के गढ पर पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया, जो 'कुवरविहार' कहलाता है[1]। इस लेख में दिया हुआ जाबालिपुर जोधपुर राज्य का वर्तमान जालोर परगना है।

वि० सं० १२२८ मार्गशीर्षसुदी १३ सोमवार का नारलाई का सोलंकी राजा कुमारपालदेव के समय का शिलालेख। इससे पाया जाता है कि उक्त संवत् में श्री कुमारपाल देव के राज्य काल में नाडूल्य में केल्हण तथा वोरिपद्यक में राणा लखमण का राज्य था और सोनाणा का ठाकुर अर्णसिंह था। इस कार्य में सूत्रधार महिवरा और इन्दराक ने उसकी सहायता की[2]।

इस लेख में दिया हुआ 'नाडूल्य-नाडोल, सोनाणा उसी नाम का गाव और वोरिपद्यक सम्भवतः बोर्ली है, जो सभी जोधपुर राज्य में है।

बिना संवत् का सोलंकी राजा कुमारपाल का चितौड़गढ़ का शिलालेख। यह बड़ा शिलालेख चितौड़ के किले पर एक खेत में पड़ा हुआ मुझे

इससे प्रकट है कि उस समय जैसलमेर राज्य का विस्तार बहुत बडा था और जोधपुर राज्य का फलोदी परगना भी जैसलमेर राज्य के अन्तर्गत था। इतना ही नही किन्तु जोधपुर राज्य के उत्तर में स्थित बीकानेर राज्य का दक्षिण का बहुत-सा अंश जैसलमेर के भाटियों के अधीन था। जब राव बीका ने कोडमदेसर में गढ़ बनवाया तो भाटियो ने उसे नष्ट कर दिया, जिससे उसको और उत्तर मे जाकर बीकानेर नगर को अपनी राजधानी बनाना पडा। भाटियों का प्रभुत्व उस समय बहुत बढा हुआ था। जज्जक से १७०० घोडे और आठ हाथी दण्ड लेना भी उक्त राज्य का विशाल होना प्रकट करता है।

1 मूल लेख की छाप से।

2 एपिग्राफिया; इण्डिका; जिल्द ११, पृ० ४८।

मिला था। खेत वाला खरीफ की मौसिम में खेत की रक्षा के लिए उस पर सौया बैठा करता था, जिससे उसके कई अक्षर घिस गये है, तो भी अधिकाश भाग सुरक्षित है। मैंने इस लेख को उदयपुर के विक्टोरिया हॉल म्यूजियम में रखवाया, जहां अब तक वह सुरक्षित है।

सोलकी वंश में मूलराज हुआ। उसका पुत्र चामुण्ड, चामुण्ड का वल्लभराज, वल्लभराज का दुर्लभराज, दुर्लभराज का भीमदेव और भीमदेव का पुत्र कर्णदेव हुआ। कर्णदेव ने सूदकूप नाम के घाट में मालवो के सुभटो को मारा। उसका पुत्र सिद्धराज जयसिंह देव हुआ, जिसने धारा नगरी में भोज के वश का उच्छेद किया। पुत्र प्राप्ति के लिए वह पैदल सोमनाथ गया और देवता ने भी उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर कहा कि भीमदेव का पुत्र क्षेमराज, क्षेमराज का देवप्रसाद, देवप्रसाद का त्रिभुवनपाल और त्रिभुवनपाल का कुमारपाल है (जो तेरे पीछे राजा होगा)। कुमारपाल न जांगलदेश के वीरों को स्वर्ग पहुचाया, तथा उसकी सेना ने बहुत से विरोधी राजाओ की पृथ्वी अपने अधीन की। उस (कुमारपाल) ने शाकंभरी देश को जीता। वह दिग्विजय करता हुआ चितौड़ में पहुचा। वह दान, शौर्य, सयम, सत्यता तथा देवताओ, ब्राह्मणो और गुरुओं की भक्ति के लिए प्रसिद्ध हुआ। वहा (चितौड में) रहते समय उसने अपने अमात्य (मन्त्री) पद-पर मधुसूदन के पुत्र सोमेश्वर को नियत किया। उसने वहां (चितौड़ में) वराह का मन्दिर बनवाया और उसके निर्वाह के लिए दान दिये[1]।

बिना संवत् का जोधपुर राज्य के रतनगढ़ ताल्लुके से मिला हुआ सोलकी राजा कुमारपाल का शिलालेख। इससे पाया जाता है कि अमावस्या के पर्व पर पुन पाक्ष की स्त्री गिरिजादेवी ने समस्त प्राणियो को अभयदान दिया[2]।

सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरा) के समय का वि० सं० १२३५ कार्तिक सुदि १३ (ई० स० ११७८ ता० २६ अक्टोबर) का किराडू से मिला हुआ शिलालेख। इससे पाया जाता है कि महाराज पुत्र मदन ब्रह्मदव उसका सामन्त था[3]।

---

1 मूल लेख की छाप से।

2 भावनगर ईंस्क्रिपशन्स; पृ० २०६।

3 मूललेख की ाप से।

वि० स० १२४२ कार्तिक सुदि १५ (ई० स० ११८५ ता० ६ नवम्बर) रविवार का बीरपुर (डूंगरपुर † राज्य में) से मिला हुआ सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के समय का दानपत्र । यह दानपत्र तांबे के दो पत्रो के एक ही तरफ खुदा हुआ है और इसमें कुल बयालीस पक्तिया है । इससे पाया जाता है कि परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर सोलकी भीमदेव (द्वितीय) के राज्यकाल में जबकि महामात्य (प्रधान मन्त्री) देवधर श्री-करण आदि समस्त मुद्रा करता था, उसके सामन्त गुहिलदत्त (गुहिलोत) वशी भर्तृपट्टाभिधान (उपनाम) वाले महाराजधिराज विजयपाल के पुत्र महाराजाधिराज अमृतपालदेव का बागड (डूंगरपुर और बांसवाडा राज्यों का सम्मिलित नाम) वटपद्रक मण्डल बडोदा पर राज्य था । उस (अमृतपाल-देव) ने सूर्य ग्रहण के पर्व पर भारद्वाज गौत्र के रामकवाल जाति के ब्राह्मण यज्ञ कर्ता ठाकुर शोभा क पुत्र मदन को षड्पचाशत मडल (छप्पन, उदयपुर राज्य) के गातोड ग्राम का लहसाश्या नाम का एक रहट, बाहर की दो हल-वाह भूमि तथा धान (चावल) का खेत दान दिया । दानपत्र क अन्त में महा-राजा अमृतपालदेव, महाराजकुमार सोमेश्वर तथा पुरोहित पालापक के हस्ताक्षर है[1] ।

वि० सं० १२५३ (ई० स० ११९६) का बडा वीवड़ा (डूगरपुर राज्य) से मिला हुआ सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के समय का लेख । यह वहाँ के शिवमन्दिर की एक मूर्ति के आसन पर खुदा है । इससे पाया जाता है कि महाराज भीमदेव के राज्य समय डव्वणक (वीवड़ा) गाव में श्री नित्यप्रमोदित देव के मन्दिर में महतम एल्हा के पुत्र वैजा ने मूर्ति स्थापित करवाई[2] ।

वि० स० १२६३ श्रावणसुदि २ (ई० स० १२०६ ता० ६ जुलाई) रविवार का आहाड़ (उदयपुर राज्य, मेवाड़ की प्राचीन राजधानियो में से एक) से मिला हुआ सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) का दानपत्र । यह

---

1 मूलदानपत्र की छाप से ।
2 मूललेख की छाप से ।

सम्पादकीय टिप्पण

† यह दानपत्र उदयपुर राज्य के प्रसिद्ध जयसमुद्र (ढेबर) झील के निकटवर्ती बीरपुर गाव से मिला था और बम्बई से प्रकाशित होने वाली भारतीय विद्या (त्रैमासिक) पत्रिका मे प्रकाशित हुआ है ।

दानपत्र तांबे के दो पत्रो पर खुदा हुआ है और इसमें ३८ पंक्तिया है। इसके प्रारम्भ में मूलराज से लगा कर भीमदेव (द्वितीय) तक सोलकी नरेशो की बंशावली दी है। इससे पाया जाता है कि भीमदेव (द्वितीय) ने नवति (नाउटी, उदयपुर राज्य के) कृष्णात्रेय गोत्रीय रायकवाल जाति के ब्राह्मण बीहड़ के पुत्र रविदेव को अपने राज्य के मेदपाट (मेवाड़) मंडल के अंतर्गत आहाड़ में (बभाउवा) नाम का रहंट और कुएं से संयुक्त कड़वा का खेत दान में दिया और यह आज्ञा दी कि उस कुएँ के सयुक्त खेत से हर फसल में पैदा होने वाले अन्न का नवा भाग आहाड़ के श्री भायल स्वामिदेव के मन्दिर को दिया जाय। दानपत्र के अन्त में भीमदेव (द्वितीय) का हस्ताक्षर और और एक कटार का चिह्न है[1] *

कार्तिकादि वि० स० १२६५ (चैत्रादि १२६६) वैशाख सुदि १५ (ई० स० १२०६, ता० २१ अप्रेल) मंगलवार का सोलकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के समय का कनखल (आबू) का शिलालेख। इसके प्रारम्भिक अश में लिखा है कि उज्जेन के शैवमठ के तपस्वी केदार राशि ने, जो तापस की शिष्य परम्परा में था, अचलगढ़ (आबू) के कनखल नामक तीर्थ में, कोटेश्वर आदि के मन्दिरो का जीर्णोद्धार करने के अतिरिक्त शूलपाणि (शिव) के दो नये मन्दिर और कनखल शंभु के मन्दिर के सभामंडप में स्तम्भो की एक पंक्ति बनवाई। इसके अन्तिम अंश से पाया जाता है कि उस समय परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर सोलंकी भीमदेव (द्वितीय) का राज्य था और महंतम ठामू श्री करण आदि समस्त मुद्रा करता था। चन्द्रावती का धारावर्ष उस (भीमदेव, द्वितीय) का सामंत और कुमार प्रहलादन उस धारावर्ष का युवराज था[2]।

वि० स० १२८३ (ई० स० १२२६) का नाणा (जोधपुर राज्य) से मिला हुआ सोलकी राजा भीमदेव (द्वतीय) के समय का शिलालेख। यह उक्त गांव के नीलकठ महादेव के भीतर लगा है और मारवाड़ी भाषा में है।

1 सातवी बड़ोदा ओरिएन्टल कॉन्फरेंस की रिपोर्ट; पृ० ६४५–८।

2 इडियन एंटिक्वेरी; जिल्द ११, पृ० १२१।

सम्पादकीय टिप्पण

* यह दानपत्र श्री० ओझाजी को उदयपुर राज्य की राजधानी उदयपुर नगर से लगभग डेढ मील दूर आहाड गाँव, जिसका प्राचीन नाम 'आघाटपुर' लिखा मिलता है, मिला था जो सातवी ओरियण्टल कान्फरेंस बडोदा की रिपोर्ट मे प्रकाशित होगया है।

इसमें उक्त मन्दिर क जीर्णोद्धार किये जाने का उल्लेख है[1]।

वि० स० १२८७ फाल्गुणवदि ३ (ई० सं० १२३१, फरवरी) रविवार का, सोलकी राजा भीमदेव (द्वितीय) का आबू में तेजपाल द्वारा बनवाये हुए लूणवसही नामक नेमिनाथ के जैनमन्दिर का शिलालेख। इसके प्रारम्भिक अश में तेजपाल के पूर्वजो की चण्डप से पूरी वशावली दी है। इसके बाद अर्बुद (आबू) का वर्णन और चन्द्रावती के परमारों की धूमराज के वशज रामदेव से लगा कर कृष्णराज देव तक की वन्शावली दी है। इसमें कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओ का उल्लेख है, और इससे पाया जाता है कि तेजपाल ने उक्त मन्दिर अपनी पत्नी अनुपमादेवी और पुत्र लावण्यसिह (लूणासिह) के कल्याणार्थ बनवाया था[2]।

उक्त संवत् का सोलकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के समय का आबू का दूसरा शिलालेख। इसमें भी तेजपाम द्वारा नेमिनाथ के मन्दिर के बनवाये जाने का वर्णन और उसके सम्बन्ध में मनाये जाने वाले उत्सवों की निश्चित तिथिया तथा कार्यक्रम दिया है[3]।

अन्तिम दोनों शिलालेखो में दिया हुआ तजपाल सोलकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के पोरवा जाति के मन्त्री वस्तुपाल का छोटा भाई था।

वि सं० १३००(ई० स०१२६३) के आस-पास सोलकियो की बघेला शाखा के वीरधवल के पुत्र वीसलदेव ने गुजरात के अन्तिम सोलंकी राजा त्रिभुवन पाल से गुजरात का राज्य छीन लिया। उसके वश वालो के दो शिलालेख अब तक राजपूताना से मिले हैं।

१–वि. सं. १३२० (ई० स० १२६३) का अजारी गाव (सिरोही राज्य) से मिला हुआ बघेला अर्जुनदेव का शिलालेख। यह वहां के गोपालजी के मन्दिर के फर्श में लगा हुआ है। इसके अनुसार उसके समय तक आबू के परमार किसी प्रकार गुजरात के सोलंकियों के अधीन थे।[4]

२–वि० सं० १३५० माघसुदि १ (ई० स० १२९३, ता० २९ दिसम्बर) मंगलवार आबू से मिला हुआ बघेला सारंगदेव का शिलालेख। यह वहां के विमलशाह के मन्दिर में लगा हुआ है। इससे पाया जाता है कि उस समय

1 मेरा जोधपुर राज्य का इतिहास ; खण्ड १, पृ० ५९।

2 एपिगाफिया इण्डिका; जिल्द ८, पृ० २०८–१०।

3 वही, जिल्द ८, पृ० १२९–२२२।

4 मूललेख की छाप से।

अणहिलपाटक में परमेश्वर परमभट्टारक अभिनव सिद्धराज उपनाम वाले महा-राजा सारंगदेव का राज्य था और मुख्य अमात्य बाधूप श्रीकरण आदि समस्त मुद्रा व्यापार करता था। उस (सारगदेव) की कृपा पर निर्भर रहने वाले (सामन्त) महारावल बीसलदेव ने जो अष्टादशशतमण्डल, चन्द्रावती नगरी और अर्बुद भूमिपर राज्य करता था, विमलवसही और लूणवसही मदिरो की पूजा तथा निर्वाह के लिए कर लगाने की व्यवस्था की और यह आज्ञा जारी की कि यात्रियो से मुंडक, चौकी, रखवाली आदि किसी प्रकार का कर न लिया जावे तथा चन्द्रावती का महारावल अथवा उसका कोई भी अधिकारी महन्त (मन्दिरो का) व कोतवाल यात्रियो से कुछ न ले और कल्याणक (पंच कल्यण) आदि के उत्सवों पर जो सघ आवे उनके चौकी-पहरे का प्रबन्ध करे एव आबू से लौटने तक किसी की कोई वस्तु चौरी जावे तो आबू का स्वामी (ठाकुर) उसकी क्षति-पूर्ति करे[1]।

आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव स्मारक ग्रन्थ गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित, ई० स० १९४४

(समाप्त)

1 मूललेख की छाप से।